













वर्ष ५ ]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गा जयत

Regd. No. P. 3

संख्या १]

श्रीव्यासपूजा संख्या

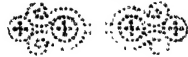
# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

५ गोविन्द

गौराङ्ग

४५२



फाल्गुण कृष्ण ५

संवत्

१८६५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरभ्योक्षजे ।

अहेतुक्यप्रतिहता यथात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

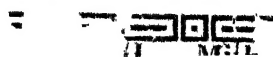
इन्द्रिय तानातीत श्रीकृष्णसे श्रवणादि-लक्षण फलाभिमन्धान - रहिता ऐकान्तिकी

रूपचा भक्ति उद्भूत होती है, यही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है-

इ बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

दक-त्रि एहस्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रीगीमन्गज (कावेरि)

Printed by Sree Bhakti Bindu &



# विषय सूची

| विषय                            | पृष्ठांक | विषय             | पृष्ठांक |
|---------------------------------|----------|------------------|----------|
| श्रीश्रीप्रभुपादपद्म-समर्पण     | २        | श्रीसगम्बती पुजा | १२       |
| वर्षारम्भ                       | ४        | कुमुमाञ्जलि      | १४       |
| विद्विलास                       | ४        | विवाध-संवाद      | १४       |
| नामाचार्य श्रीज ठाकुर हरिदास(२) | ६        |                  |          |

## उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्तिका प्रचार करना

## प्रबन्ध-सम्बन्धी

इस पत्र प्रति मास ५ कृष्णको प्रकाशित  
जायगा।

(२) इस पत्रका डाकन्यय सहित वापक भिजा  
या है।

(३) इस पत्रकी प्रति संख्याकी भिजा (१) है।

## लेख-सम्बन्धी

लेखकोंको केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख  
ही भागवत पत्रमें छापनेके लिये सम्पादक  
“भागवत” के पतामें भेजना चाहिये। जो लेख  
सम्पादकको पसन्द न होगा वह नहीं छपा  
जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

## विज्ञापन-सम्बन्धी

“भागवत” में विज्ञापन छपाईका दर नीचे

लिखा है :—

## साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम ... ८)

आधा ... ५)

चौथाई ... ३)

२ इंच ... १॥)

१ ... १)

स्थायी विज्ञापन और कवरपर विज्ञापन  
छपाईका रेट नीचे लिखे पत्रपर पत्र-व्यवहार  
द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र “व्यवहार” पता -

मैनेजर—“भागवत”

श्रीगौड़ीयमठ,

सीतापुर पटना ४

All communications are to be addressed to

The Manager



४५

कृष्णे स्वधामोपगतं धम्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदशमेषः पुराणाकोऽधुनोदितः ॥

वर्ष ५

श्रीगोदायमठ, मोठापुर ( पटना )

कृष्ण ३३०० १९९५ वि०, ४ फाल्गुनी १९८०

पंक्त्या १

नम ऊँ विष्णुपादाय कृष्णप्रेम्णाय भूतने ।

श्रीमते भक्तिसिद्धान्तसगरवर्तान्तज्ञामिने ॥

श्रीवार्पभानवीदेवीदयिताय कृष्णद्वये ।

कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः ॥

संभार्योऽज्ज्वलप्रेमाढ्य—श्रीरूपानुगभक्तिद ।

रकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तु ते ॥

गौराङ्गणी—श्रीमृतये दीनहारिणे ।

पानुगविरु—श्रीसिद्धान्तध्वान्तहारिणे ॥

# श्रीश्रीप्रभुपादपद्म-स्तवकम्

( श्रीमद्भक्तिकेक श्रीश्री स्वामिपाद विरचितम् )

सृजतुं दिशयितपादपद्म

युगधर्मपरस्परपादपद्म ।

वरदाभयदायकपद्मपदं

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥१॥

भजनाजित-सज्जन-सचपात

पतिताविक कर्माण्येककर्तव्यम् ।

मानवार्जितव्यकर्माणि यपद

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥२॥

अतिक्रम्यकायनदीनतनुं

तनुनिन्दितहंसमग्नानामपदम् ।

मदनार्जितव्यकर्माणि यपद

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥३॥

निजमेवकृतार्कगर्भाविनु

विधुतादितहंसमग्नानामपदम् ।

वरगागनवालिशशतपदं

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥४॥

विपुलाकृतवैभवगौरभुव

भुवनेष विकीर्तितगौरवयम् ।

दयनयिने गौरव गौरपदं

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥५॥

चिरगौरजनाप्रयविश्वगुरुं

गङ्गागिरिकिशोरकदाम्यपरम् ।

परमादितर्कान्तिनादपदं

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥६॥

रश्मिपसुनातनकीर्तिधनं

वरगागनवालिशशतपदं ।

गौरगौरजनाप्रयविश्वगुरुं

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥७॥

कृपया हृदिर्वालिशशतपदं

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥८॥

सज्जनार्जितव्यकर्माणि यपद

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥९॥

शरणागतनाककृतकृतपदं

नरविपकृतार्कगर्भाविनु

वरगागनवालिशशतपदं

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥१०॥

वरगागनवालिशशतपदं

पतिताविक कर्माण्येककर्तव्यम् ।

वर्तिताविक कर्माण्येककर्तव्यम्

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥११॥

कृपमानुभूतादीयलानुभूतं

वरगागनवालिशशतपदं

महदभूतविश्वगुरुं

प्रणमामि सदा प्रभुपादपद्म ॥१२॥



## वर्षारम्भ

भागवतके पांचम वषका आरम्भ हुआ। बालक का पांचवाँ वर्ष होनेसे पितामाताका बहुत ही आनन्द होता है। वे बच्चोंके अग्रगण्य का वन्दोचस्त करने हैं। किन्तु इस बालक होनेपर भी हमको ऐसा नहीं समझना चाहिये। भागवत निरालम्बधर्मका प्रचारक है। नीतिवादियोंके विचार है—

“सन्त्यं वृथात् प्रियं वृथात् वा वृथा मत्प्रियम्”  
अर्थात् केच धोली, वस्त्र वर प्रिय हो: अग्रिय मत्प्रिय मन बोधना। किन्तु धर्म सत्यमे ऐसा विचार नहीं चलता। जीवन्मुक्त प्राप्त करने के लिये कष्ट क्या है? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का भावना जा इन चारों वस्तुओंका प्राप्तिके लिये बहुत ही बड़ा कष्ट है। किन्तु भागवत में कहा गया है:

धर्मः प्रोज्झ्य कैवल्योऽयं परमा हिमन्स्वराणां सत्तां वेद्यं वास्तवमत्र वसतः शिवदत्तापत्रयान्मूलनम्।  
श्रीमदभागवते महाभूमिके कृष्णपरेर्गोश्वरः  
सद्यो हृदयस्थोऽयं भगवान् शृङ्खलामस्तत्त्वज्ञानम्॥

(भागवत १।१२)

महाभूमि के लिये सत्त्व श्रमदभागवतमें हिमा-  
रहित पापुओंका धर्म निर्माण हुआ है। उस धर्म में धर्म, अर्थ, काम या मोक्षकी अभिलाषा भी नहीं है। इस शास्त्रकी आलोचनासे विनाश जड़मे नष्ट हो जाते हैं, और श्रवणकारी मुकुलिमान व्यक्तियोंके हृदयमें हरि कौरव अवस्थित हो जाते हैं। सुतराम, भागवतके सिवा और किसी भी शास्त्रकी जरूरत नहीं है। श्रीमदभागवतका वाणीके प्रचारक इस भागवत-पत्रकी बोली सुते वही है।

गंधर्व प्रोक्तं वाणीको विलकः स्थानं नहीं  
कि भाषितवा कहना है—

यद्वचनं त्रपदं हरेर्यशः

जगत्प्रविशे त्रपदं वहीचित्।  
तदायम नीर्थमुशान्तिं मानमा  
न यत्र हंसा निरमन्त्य शकुजयाः॥  
तदाग्विमर्गा जननाविनाशः  
यस्मिन् प्रतिप्लोकमवद्ववत्यपि।  
नामाऽयनंतस्य यशोऽकृतानि यत  
शृङ्खलानि गायन्ति गृगन्ति साधवः॥

(भागवत १।१२।११)

जा वाक्य या ग्रन्थ विचित्र पदविशिष्ट होकर भी भुवनपावन भगवान्की मर्माका कीर्तन नहीं करना, जानीयोग उसे वाक्यमन्त्रार्थ (कौण्ठिका उक्ति के स्थान जहाँ बहुत ही बड़ा रहता है) अर्थात् कौण्ठिके मुख्य कार्मागणना रतिस्थान कहते हैं, उसमें सत्त्व गुणयुक्त मनमें स्थित रहने वाले मुनि लोगोंको कर्मा भी आनन्द नहीं होता। क्योंकि इन लोगोंका निवास सदा कमलाय प्रलय हो है। परन्तु जिस वाक्य या ग्रन्थमें भगवान् अनन्तदेवके महिमायुक्त नामोंका वर्णन है उसमें सामूली शब्द रहनेपर भी साधुगण उसका श्रवण, कीर्तन तथा गान करने हैं क्योंकि वह शब्द जगत्के पापोंका विनाश करता है। भागवतमें कर्म, ज्ञान, योग तथा अन्याय साधारण धर्मका विचार नहीं किया जाता है। अन्याभिलाषी लोगोंका कोई प्रिय होता भी इसमें नहीं प्रकाशित की जाती। किन्तु भागवत-धर्मके मूल पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य तथा उनके प्रधान पार्षद श्रीरूपगोस्वामी के प्रचारमें यही सिद्धान्त है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनन्तम्।  
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमम्॥

भागवत उसी शुद्ध भक्ति धर्मका प्रचारक है, जिस धर्ममें भगवत्सेवाके अतिरिक्त दूसरी अभि-

लापा नहीं है, और जो ज्ञान, कर्म तथा अन्यान्य साधनोंके द्वारा प्राप्त नहीं है। पर जिन जिन कामोंमें भगवान् के चिन्तन-मनन होते हैं, उन्हीं कामोंको भक्तिके अनुकूल भावसे करनेका या उपदेश करता है।

“सत्यं परं धीमहि” अर्थात् उम्मी परम सत्य भगवानका ही हमलोग ध्यान करने हैं। यही भागवतका मूलमंत्र है। भागवत और हिर्मके चिन्तन वा सेवाकी बातें नहीं उच्चारण करता। भगवान् कृष्णचन्द्र ही एकमात्र नित्यकाल विराजते हैं इसीलिये उन्हें केवल “मन्य” कहा जाता है। न तो भालयमें उनका नाशो होता है न फिर सृष्टिमें जन्मा। परन्तु उनके श्रीमद्भक्तों की वचन है

अहमेवाममेवाग्रं नान्यत्सदसदसम्॥

पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽभ्यहम् ॥

( भागवत २।१३२ )

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि मृष्टिके पहिले मैं ही था, अन्य कुछ नहीं था; मृष्टिके उपरान्त भी मैं रहता हूँ और अन्तमें भी मेरा अवस्थान होगा। मृतराम, उम्मी नित्यवस्तुके उपासकलो। मदा उन्हींकी उपसना करते हैं। वे लोग भी नित्य हैं।

उस सत्यवस्तुकी उपासनामें अर्थ अभिलाषा भी नहीं है। वनियेके समान कोई भाव उसमें आ ही नहीं सकता। आनेपर भी करुणामय भगवान् कृपावश उस अभिलाषाको हटाकर अपना आसन उसके हृदयमें बिछा लेते हैं। अतएव भागवत पत्रके अर्थ यय कता।

## चिद्विलास

( श्राव्यत हा० अथ चिद्विलासकथं, पृष्ठ ७०, पी० पृष्ठ ७० डी० )

मनुष्यमें विचार करनेकी शक्ति है। इसीलिये सांसारिक जीवोंमें उसका दर्जा सर्वोच्च है। परन्तु उसमें एक बहुत बड़ी कमजोरी यह है कि वह प्रत्येक वस्तुको जो किमी न किमी रूपमें उसके विचारक्षेत्रमें प्रवेश करता है अपने दृष्टिकोणमें ही देखनेकी चेष्टा करता है। इस कमजोरीके कारण मनुष्यमें व्यावहारिक क्षेत्रमें तो निस्सन्देह अग्रणी भूलोंकी हैं, किन्तु धर्म तथा ज्ञानक्षेत्रमें भी उसकी अनेक त्रुटियोंका प्रधान कारण यही है। वह भगवानमें नरत्वका आरोप करता है, पारमार्थिक जगत्को जड़जगत्के दश-कालकी सीमाओंमें बांधनेकी चेष्टा करता है और भगवान् और भक्तोंके

चिद्विलासको सांसारिक तथा जड़शरीरधारी जीवोंके भोग-विलासके समान समझता है।

दर्शनशास्त्रमें निर्विशेषवाद और साधनमार्गमें विरागकी उत्पत्ति इसी भूलसे हुई है। सांसारिक वस्तुओंके नाम रूप गुणादि सीमाबद्ध तथा नश्वर हैं। इसीलिये बहुतसे दार्शनिकोंका मत है कि भगवान् जो अनन्त और चिरस्थायी हैं रूप-गुणादि से सम्पन्न नहीं हो सका। उनके बारेमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह निर्विशेष, निगुण तथा निर्लेप हैं। इसीमेका सांसारिक-विषयोंकी नश्वर और दुरुप-देखकर बहुतसे लोग विचार करते हैं कि पारमार्थिक जगत् में विला-

मिताका कोई स्थान नहीं हो सकता । परन्तु पारमार्थिक जगत्में जिस प्रकार निर्विशेष और सविशेषमें कोई विरोध नहीं है उसी प्रकार विलास और विरागमें भी परस्पर विरोध नहीं है । भगवान् अनन्त और अखण्ड होते हुए भी निर्विशेष हैं । और किसी प्रकारके विषयभोगकी इच्छा न रखते हुए भी अपने निम्न पापदोषोंके साथ लीला-विलासमें मगल निरत रहते हैं । उनकी इन्द्रियाँ बद्ध जीवोंकी भाँति नष्ट और प्राकृत नहीं हैं । वह सच्चिदानन्द विग्रह हैं—

इश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

अनादिगतिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

और इसी कारण उनकी इन्द्रियों और क्रियाओंमें एक अद्भुत विचित्रता है—

अज्ञानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति

पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति ।

आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

( ब्र० मं० )

निर्विशेष ब्रह्म जिसमें चिद्विलासका कोई स्थान नहीं, केवल ज्ञानियोंकी कल्पनामात्र है । यह भगवान्का कृत्रिम और असम्पूर्णरूप है । ज्ञानी तभी तक उसकी प्रशंसा किया करते हैं और उसके ध्यानमें लीन रहते हैं जब तक भगवान्की विलास मूर्तिके दर्शनमें वह वंचित रहते हैं । नारायण कविने क्या ही अच्छा कहा है—

चाहे तू याग करि सुकुटी मध्य ध्यान धरि,  
चाहे नाम-रूप भिन्न्या जानिकै निहारि लै ।  
निर्गुन, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रही ।

ऐसे तत्त्वज्ञान निज मनमें तू धारि लै ॥

नानिजने अपनेकी आपही बखाने ॥

‘भाँते वह भिन्न नहीं’ या विधि पुकारि लै ।

जौ लौं तोहि नानिजने-तुम्हारे नाहि दृष्टि पयो,

तब लौं तू बैठि भले ब्रह्मकी विचारि लै ॥

प्राकृत जगत् अप्राकृत जगत्की प्रतिछविके समान है । इसीलिये अप्राकृत जगत्में जो अत्यन्त उत्कृष्ट है वही प्राकृत जगत्में अत्यन्त निकृष्ट है ।

प्राकृत जगत्में विलास दुःखका कारण है परन्तु अप्राकृत जगत्में वह परमानन्दका देने वाला है ।

चतुःमन और शुक्रदेवादि मुनिगण उच्चकोटिके वैरागी थे, परन्तु वह भी चिद्विलासके सौन्दर्यमें आकर्षित हुए थे और उन्होंने शान्त रसकी अपेक्षा, जिसमें जीव मुक्त होकर निरपेक्षतापूर्वक अवेस्थान करना है, वास्य, मय्य, वात्सल्य और माधुर्य रसकी श्रेष्ठता स्वीकारकी थी जिनमें चिद्विलास उत्तरोत्तर पूर्णताको प्राप्त होता है ।

वास्तवमें अप्राकृत जगत्में विलास और विराग परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरेके सहयोगी हैं । माधुर्य रसमें विलास सबसे अधिक प्रस्फुटित होता है और विराग भी यही अपनी पराकाष्ठापर पहुँचना है । जहाँ पर समस्त क्रियाओंका एकमात्र तात्पर्य भगवान्को सुख पहुँचाना है वहाँ ‘विलास’ और ‘विराग’ का पारम्परिक सहयोगी होना स्वभाविक ही है । वहाँ तो भक्त उस प्रेमानन्दका भी निरस्कार करना है जो कृष्ण सेवानन्दमें बाधा डालता है—

“ निज प्रेमानन्दे यदि कृष्ण-सेवानन्द बाधे ।

मे आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे ” ॥

लोकधर्म, वेदधर्म, देहधर्म कर्म ।

लज्जा, धैर्य, देहसुख, आत्मसुख मर्म ॥

दुःखजय आर्द्राशु, निज परिजन ।

स्वजने करये जत ताड़नभर्त्सने ॥



सर्व त्याग करि करे कृष्ण भजन ।

कृष्णमुख हेतु करे प्रेम सेवन ।

इहाके भविष्य कृष्णें दृष्टा यत्प्राये ।

स्वच्छाश्रित वस्त्रं त्रेहं ताति कान दास ॥

गोपियोंके त्रितने से जान है यत् कृष्णके हेतु है । उनका तन, मन, धन सब भगवान्‌का ही समर्पित है । अपने शरीरसे जो उनसे प्राप्त क्त मालूम पड़ती है वह भी भगवान्‌के ही ही है । स्मरण

गोस्वामी गोपियोंके अपनी देहकी रक्षा और शृंगा-  
रादि करनेका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

तत्र जे देविये गोपार निज देहें प्राति ।

मेहों त कृष्णें लागि जानिह निश्चित ॥

एह देह केलु आमि कृष्णें समर्पण ।

तांग धन, तांग एई सम्भोग वाग्न ॥

एहेत दर्शन स्पर्श कृष्ण सन्तोषन ।

ए लोभ करे अङ्गर माज्जन भूपन ॥

## नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदास (२)

जब ठाकुर हरिदासने नवाबसे कहा कि 'मृगद  
दण्ड देहें दे' जाय यदि प्राण । तब आसि बदन  
ना छोड़ि हरिनामि' और उनसे समझाया कि  
पिता-मातासे प्राप्त यह जड़नेह विरमथायी नहीं है ।  
मायिक वस्तु का नाम ( मनुष्यका दिया हुआ )  
कल्पित है । परन्तु वैकुण्ठनाम तथा भगवान् एक  
ही वस्तु है । अतएव नामसेवा परित्यागकर मैं  
शूल तथा सूक्ष्म शरीरसे श्रद्धा-स्थापन नहीं कर  
सकता । श्रौत पथ अवलम्बनकर मैंने वैकुण्ठनाम  
प्राप्त किया है, उस कृष्ण भक्तिके अतिरिक्त मेरा  
और कोई कर्तव्य नहीं है । उसको छोड़कर मैं  
कभी भी मनुष्यकल्पित सामाजिक आचार ग्रहण  
नहीं करूंगा । इसके लिये समाज तथा काजी  
मुझे जो दण्ड दें उसे मैं सहन करूंगा ।

ठाकुर-हरिदासके कहे हुए मिद्धान्तको सुनकर  
नवाबने काजीसे पूछा कि अब क्या करना चाहिये ।  
तब श्रौतपन्थी वैकुण्ठ-शब्दनिष्ठ जगद्गुरु ठाकुर  
हरिदास तथा उनके प्रचारित सत्यका विलोप करने  
के लिये श्रुतिविरोधी अमर काजी बोला कि 'प्यादे-  
लोग हमको श्रौत-वाजोंमें घुमाकर वेतोंमें मार  
जिसमें इसके प्राण निकल जाय, उसमें और कुछ

विचार न किया जाय । यही हिन्दुत्व ग्रहणकर  
हिन्दुओंके प्राणिन आचारको स्वीकारपूर्वक हिन्दुओं  
के देवताओंके नाम-ग्रहणरूप पापका उचित दण्ड  
है । इतनी मार खानेपर भी यदि हादसा जाता  
रहे तब वह निष्कपट तथा सत्यवादी समझा  
जायगा, और यदि वह मार खाने खाने भर जायगा  
तो उसको उपयुक्त दण्ड ही मिला । तब काजी प्यादों  
को पकारकर गरजकर बोला कि इसको बाइस  
वाजोंमें घुमाकर इतनी मार मागना कि इसके प्राण  
निकल जाय । सत्योपासक ठाकुर-हरिदासमें जाति  
वृद्धिकर, उनके शरीरको नष्टकर उनको उद्धार  
करनेका विचार प्रकट करते हुए काजी बोला कि  
यवन होकर यह हिन्दुआनी करता है । अतएव  
प्राणान्त होनेमें यह इस पापसे छुटकारा पायगा ।  
जोलोग यवन-धर्म छोड़कर काफिर हिन्दूका धर्म  
तथा आचार ग्रहण करते हैं, प्राणदण्ड ही  
उनकी उचित सजा है ।

नित्यविरोधी काजीकी बातें सुनकर नवाबकी  
आज्ञामें प्यादे-लोग ठाकुर-हरिदासको पकड़कर ले  
गये और प्रति बाजारमें घुमा घुमाकर क्रोधपूर्वक  
मारने लगे, जो लोग वैष्णवोंके प्रति विद्वेष करते

हैं, उनलोगोंका पाप परिपूर्णता प्राप्त करता है। पाण्डवोंका काजीके ठाकुर-हरिदासके प्रति द्रोह करनेके कारण, वह एवं नवाब तथा उनके अनुचरगण सभी महा-पापके भागी हुए। परन्तु ठाकुर हरिदास निरन्तर "कृष्ण कृष्ण" स्मरण करते हुए नामा-नन्दमें मग्न थे और इसलिये शारीरिक दुःखका अनुभव नहीं करते थे। ठाकुर-हरिदासके प्रति महा अत्याचारकी बातें देख तथा सुनकर, सज्जनगण अत्यन्त दुःखित हुए। उन लोगोंमेंसे किसी किसीने कहा कि वैष्णव-विरोधके कारण देशमें शीघ्र ही महा अमङ्गल होगा। वैष्णव-विद्रोहके कारण ही पृथ्वीमें दुश्मन्, अनायास, महामारी, विषालव, भूकम्प प्रभृति नाना प्रकारके कलेश उत्पन्न होते हैं। भक्त-द्रोहके कारण किसी किसी सन्यासिवासिकों मनमें समग्रदेशके नाश हो जानेकी आशङ्का होने लगी। किसी किसीने कहा कि यह राज्य शीघ्र ही उजड़ जायगा। कोई क्रोधवश राजा तथा वजीरका शाप देने लगे तथा कोई यवन लोगोंका कण्ठ कटने लगा कि इनका मन-कम मारंगे तो मैं तुम्हें इनाम दूंगा। तैसी दृष्टिलोगोंका दया नहीं आती थी और वे प्रति बाजारमें अत्यन्त क्रोधपूर्वक मारते जाते थे। परन्तु कृष्णकी अद्भुत कृपासे हरिदास ठाकुरके श्राव्यंगपर इतना प्रहार पड़नेपर भी उनका प्रह्लादके सदृश लेशमात्र भी कलेश नहीं हुआ।

हिरण्यकशिपुने जिसप्रकार अपने महाभागवत पुत्र प्रह्लादको नाना प्रकारसे कष्ट देकर बध करनेकी चेष्टाकी थी, महापापी यवनगण भी उसी प्रकार हरिदास-ठाकुरका कलेश देकर मारनेकी चेष्टा करने लगे, किन्तु तिसपर भी उन्होंने भक्तराज प्रह्लादकी नाई लेशमात्र भी दुःख-क्लेशका अनुभव नहीं किया। महाभागवतगणोंकी इसप्रकारकी सहिष्णुता

स्वाभाविक होती है। वे भगवन्मेवामे प्रतिक्षण इसप्रकार व्यस्त तथा निरन्तर रहते हैं कि भगवद्ब-हिम्ब-संसारके लोकोक्ति हिम्मा-वृत्ति उनको किसी प्रकारसे नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होती। श्रीमन्महा-प्रभुने इसीलिये शिष्य-प्रक्रमे कहा है कि जो तुल्यके सदृश सहिष्णुता-गुण सम्पन्न हैं वे ही कृष्ण-कथा कीर्तन करनेमें समर्थ होंगे, दूसरे नहीं। यदि साधक सहिष्णुता रहित हों, तो वे हरि-कीर्तन नहीं कर सकेंगे। कारण संसारमें अरुण्य स्थानोंमें देखा गया है कि सब प्रकारके शत्रुदायक सत्य कथा प्रचारक हरिकीर्तनकारोंको ईशविमुख जन अन्याय-पूर्वक आक्रमण करते हैं, एवम् उनके हरिकीर्तन-रत-मुखका वन्द करनेके लिये नानाप्रकारसे चेष्टा करते हैं। कल वा जातिभेद, धनभेद तथा अपरा-धियामदसे प्रसन्न दुष्टवृत्त-समाज एक मात्र वास्तव-सत्यवस्तु हरि संकीर्तनको समस्त रूपसे बाधा देनेके लिये सर्वदा यत्न करत है, यहां तक कि कपटकर वे लोग नाममात्रके हरिसंकीर्तन दलमें योगदान करनेका असद्वृत्तिसे छल करके भी सत्यवस्तु हरि-नामके प्रति अव्यक्त रूपसे विरोध करते हैं।

असुरलोगोंके अत्यन्त प्रहार करनेपर भी हरि-दास-ठाकुरको किसीप्रकारका शारीरिक दुःख नहीं हुआ। यह बात तो दूर रहे उनकी सहिष्णुताका वृत्तान्त स्मरण करनेमें ही भक्तपुत्रके सभीप्रकारके दुःख विनष्ट हो जाते हैं। वे उन पापी सत्य-विरोधी असुरलोगोंकी कल्याणकी चिन्ता हृदयमें धारण करने लगे और अपने प्रभु श्रीकृष्णके समीप उन-लोगोंके अपराधको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करने लगे। जो लोग भागवत-वैष्णवगणोंके निकट आवरण करने हैं, उनसे अपराधियोंके दुष्टाचारके लिये साधुगण उनलोगोंके मङ्गल तथा उद्धारके लिये उन-

## भागवत

लोगोंको अत्यन्त दयाका पात्र समझकर हृदयमें अनिशय दुःख अनुभव करने हे । श्रृष्टि तथा हजरतके चरित्रमें भी इस प्रकारका चित्र देखनेमें आता है । हरिदास ठाकुर हृदयमें कहने लगे ' हे कृष्ण ! उन जीवोंपर क्या कीजिये । मुझमें द्रोह करने-के कारण उनको अपराध न हो ।' भगवद्भक्तोंके प्रति विरुद्ध आचरण करनेसे भगवान् भयानकरूपसे असन्तुष्ट होते हैं । महा-पापी यवनलोगोंका अपने ऊपर अन्याय होनेके कारण भगवान्की अपमज्ञता देखकर ठाकुर-हरिदासजीने भगवान्के चरणोंमें उनलोगोंके लिये प्रार्थना की थी । परन्तु पापीलोग ठाकुर-हरिदासको प्रति वाजारमें घुमाते हुए उनपर प्रहार करने जाते थे और उनके प्राण लेनेके लिये यथेष्ट चेष्टा करते थे । किन्तु ऐसा करने पर भी जब उनके प्राण नहीं निकले तथा उस प्रहारकी स्मृति भी उनको नहीं हुई तब यवनलोग सोचने लगे कि इतना भार स्वानेपर क्या मनुष्यके प्राण रह सकते हैं ? दो तीन वाजारोंमें मारनेसे ही तो आदमी मर जात है परन्तु चाइस वाजारोंमें मारनेपर भी यह मनुष्यका प्राण नहीं हुआ बल्कि कभी कभी हमला सा है ! यह मनुष्य क्या पौर है ?— ऐसा सब मन ही मन सोचने लगे कि साधारण बड़जीवगण बाहरी संसारके चिन्ता-म्यंतिमें बिल्कुल ही विमूढ़ होते । अपने अपने पेट-बल मनको ही व्यवहारिक कार्योंका परिचालक समझते हैं । किन्तु भगवद्भक्तगण हरिमेवामे निरन्तर व्यस्त रहकर बाह्य विषयोंका भोग करनेके लिये कभी अपनेको नियुक्त नहीं करते । संसारी जड़-वस्तु या किसी घटनाके विषयमें उन्हें बाहरी-देह तथा भीतरी-मनकी स्मृति किसी प्रकार नहीं रहती । सम्पूर्णरूपसे देहात्मबोध-विरमृति हो जाती है । उनकी कृष्ण-मासमें प्रीति, जड़ वस्तुमें उदासी-

नता तथा निर्दोष-आनन्दमय अवस्था बनी रहती है ।

तब उप-प्रहारकारी यवनभृत्यगण हरिदास-ठाकुरसे कहने लगे कि इतना प्रहार करनेपर भी तुम्हारा प्राण नहीं निकला इसलिये मालूम पड़ता है कि तुमको लेकर हमलोगोंका सर्वनाश होगा । प्रहार-कर यदि तुम्हारा-प्राण हमलोग नहीं ले सकें तो काजी क्रोधके वश हमलोगों को मरवा डालेगा । तब हरिदास ठाकुरने कहा कि तुमलोगोंके द्वारा अत्यन्त प्रहृत होकर भी यदि मेरे प्रकट अक्रोधसे तुमलोगोंको किसी प्रकार का अनिष्ट हो तो तुमलोगोंके उम्र अमङ्गलके विनाशके लिये तथा तुम्हारे मङ्गलके लिये मैं इसी समय देह त्याग कर सकता हूँ — ऐसा कहकर वे शुद्धमन्त्र-हृदयमें चिन्मय भगवद्भयानमें मग्न होकर शङ्ख समाधि-अवस्थामें मृतवत हो गये । भगवद्भाव समाधिके कारण प्रभु हरिदास चेष्टारहित हो गये और अब उनका निःश्वास-प्रश्वास बन्द हो गया ऐसा देखकर यवनगण विस्मित हो गये और उनको उठाकर नवाबके द्वार पर ले गये । तब सन्ध-विरोधी नवाब तथा काजी समाधिवोगाश्रित जगद्गुरुको शव समझकर अपने अपने चित्तवृत्तिके अनुसार यों व्यवस्था करने लगे :

नवानेने कहा कि इसको ले जाकर मिट्टी दी परन्तु काजीने इस बातको स्वीकार नहीं किया और उन्होंने कहा कि ऐसा करनेसे इसकी सद्गति हो जायगी । वह घोर पाखण्डको प्रकट करते हुए कहने लगा कि हरिदासने अति-श्रेष्ठ यवनकुलमें जन्म ग्रहण करके भी नीच कर्म किया अर्थात् हिन्दुओंके देवताका नाम ग्रहण किया अतएव इसको मिट्टीमें न गाड़कर गड्ढाजीमें फेंक दो जिसमें इसको सद्गति न हो और यह अनादि-काल तक देख भोता रहे । तब काजीके आज्ञानु-

सार यवनलोग ठाकुर-हरिदासको उठाने लगे परन्तु वे ध्यान नन्दमें निश्चल हो गये और सात्त्वान् विश्व-म्भर उनके शरीरमें प्रकाशित हुए। उनको हटानेके लिये बहुतसे बलवान्-यवन चेष्टा करने लगे परन्तु प्रभु महास्तम्भके सदृश निश्चल थे। कृष्णानन्दमुधा-तिन्धुमें मग्न रहनेके कारण ठाकुरका वाह्य प्रकाश नहीं था। वे कब अन्तरीक्षमें, कब पृथ्वीपर तथा कब गङ्गामें थे इस बातकी स्मृति उन्हें नहीं थी। प्रह्लादको जिस प्रकार भगवान् वसुदेवके प्रति स्वाभाविक रति थी, बाल्यावस्थामें अनित्य क्रीडादि परित्याग करके जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके निरन्तर ऐकान्तिक-स्मरणके प्रभावसे कृष्णकी सेवायुक्त चित्त तथा कृष्णाक्रान्त-हृदय होकर वह सम्पूर्णरूपसे संसारी बिषय ज्ञान-शून्य थे, जिसप्रकार गोविन्द-परिरम्भित होकर वह नपवेशन, पर्यटन, भोजन, शयन, पान तथा वाक्य-उच्चारण करके भी इन सकल चेष्टाओंका अनुमन्यमान नहीं करते थे—केवल अभ्यासवश ही सम्पादन करते थे—उसीप्रकारकी रति ठाकुर-हरिदासकी भगवान् के चरणारविन्दमें थी। जिन ठाकुर-हरिदासके हृदयमें भगवान् गौराङ्गदेव प्रत्यक्षरूपसे निरन्तर निवास करते थे उनको बाहरमें क्या हो रहा है इस बातकी सुधि नहीं थी। लड्डा विजय करनेके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नित्यसिद्ध पार्षद हनुमानजीने जिस प्रकार राक्षसराज रावणके पुत्र इन्द्रजीतके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रके बन्धनमें पड़कर ब्रह्मास्त्रके सम्मानकी रक्षाकी थी, उसीप्रकार ठाकुर-हरिदासने भी समस्त जगत्के समस्त सर्वोत्तम सहिष्णुताका आदर्श उपस्थित करनेके लिये यवनोंके भीषण निष्ठुर प्रहारको स्वीकार किया था। ठाकुरने अपने आचरणद्वारा संसारके लोगोंको उपदेश दिया है कि

हरिनाम ग्रहण कानेमें चिरकाल दुर्गति हो तथा प्राण भी निकल जाय तौभा भगवद्भजन नहीं छोड़ना चरिये। कृष्णानन्दमें मग्न ठाकुर-हरिदासको गङ्गामें फेंककर जब यवनलोग चले गये तब वे बहकर ईश्वर-उच्छ्वाससे कुछ देरमें किनारे लगकर परमानन्दमें मग्न होकर उठे और उच्च स्वरसे कृष्ण नाम प्रण करने हुए फुत्तिया नगरमें पहुँचे। उनकी अद्भुत शक्तिको देखकर यवन लोगोंकी उनके प्रति हिनावृत्ति बितपट हो गई और उनलोगोंका मन निर्मल हो गया। सर्वोंने उनको पीर समझकर नमस्कार किया और पापोंमें निस्तार पा गये। तब नवाबने सम्भ्रमके साथ हाथ जोड़कर कहा कि मुझे अब ठीक मालूम पड़ता है कि आप बहुत बड़े पीर हैं। साधारण योगी वा ज्ञानी अपने बड़पानको दिव्यलानेके लिये अद्वय-ज्ञानकी ( भगवत्-ज्ञानकी ) बातें बोल सकते हैं परन्तु वास्तवमें आप ही सिद्ध महापुरुष हैं। तब नवाबने अपने किये अपराधका क्षमा करनेके लिये प्रार्थना की, और कहा कि आप समदर्शी एवं शत्रु-मित्र रहित हैं। इन तीनों भुवनोंमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो आपको पहचान सके। संसारके लोग इन्द्रिय-ज्ञान द्वारा महा भगवत् परमहंस-वैष्णवों नहीं पहचान सकते। अब आप निज इच्छानुसार गङ्गा-तटपर निर्जन गुफामें वासकर भजन कीजिये अथवा विचरणकर संसारके लोगोंका मंगल कीजिये—जैसी इच्छा हो वैसाही कीजिये। यवनगण साधारणतः भगवद्भक्ति रहित होते हैं। अभ्याभिलाषी, कर्मी तथा ज्ञानी प्रभृति अभक्त सम्प्रदायगण महाभगवत् श्रेष्ठ ठाकुर-हरिदासके औदार्य एवं माहान्यके दर्शनकरनेसे उनको अपने-अपने-विषयोंकी उपलब्धि होनेसे छुटकारा मिलती है। नितान्त ईश-विमुख

पापिष्ठ जीवगण भी उनका दर्शनकर अपनी भक्ति-विरोधी-वेष्टा भी भूलकर मुग्ध हो गये थे । अहो, महाभागवत परमहंस वैष्णव-शिंगमणिकों कैसी अलौकिक महिमा है ! ठाकुर-हरिदासमें विरोध करनेवाले त्रिम नवाचने पहले भीषण क्रोधवश ठाकुरको अति कठिन दण्ड देनेके लिये अपने समीप पकड़वाकर मंगाया था उसी विष्णु-वैष्णव विरोधी महा-पापी व्यक्तिके कैम अन्तमें ठाकुरकी अलौकिक क्षमा तथा सहिष्णुताको ज्वलन्त आदर्श देखकर अतिशय विस्मित तथा मुग्ध होकर उनका ईश्वर-प्रतिनिधि अनिमर्त्य ( मृत्युमें अतीत ) महापुरुष सम-भेकर पूज्य समझा ! इतना ही नहीं, वह पाखण्डी महापराधी अनुतापस्त्री अग्निमें दग्ध होकर अपने अपराधको क्षमा करनेके लिये प्रार्थनाकर ठाकुरके चरण-कमलकी वन्दना करनेके लिये भी बाध्य हुआ ।

फूलियाके काजीके अत्याचार तथा नवाचकी अन्वगासे छुटकारा पाकर ठाकुर-हरिदास फूलिया-ग्रामनिवासी ब्राह्मणोंके नित्य-कल्याण साधनके लिये उच्च स्वरमें हरिनाम करते ब्राह्मणोंके समीप उपस्थित हुए । सङ्कीर्ण-साम्प्रदायिकता तथा सामाजिक भक्ति विट्टेपवश किसी किसी ब्राह्मणपद-वाच्य पुरुषने हरिदास-ठाकुरको पहले नामदाता श्रीगुरुदेव स्वीकारकरनेके लिये रुचि प्रदर्शित नहीं की थी । परन्तु अब उनकी अलौकिक, अमित शक्तिकी बात सुनकर अत्यन्त मर्यादा-सम्पन्न ब्राह्मणोंने भी उनकी भगवत अभिन्न-नामदाता स्वीकार किया एवं महा आनन्द-के साथ उनका आदर करने लगे । महाभागवत ठाकुर-हरिदासके संगमें ब्राह्मणगण हरिध्वनि करने लगे और ठाकुर आनन्दसे नाचने लगे । उससमय ठाकुरको अद्भुत अष्टस त्विक भाव-विकार होकर अश्रु, कम्प, हार्स्य, मूर्च्छा, पुलक तथा हुङ्कारादि

होने लगे । ठाकुर प्रेमरसमें लोटने लगे जिसको देखकर ब्राह्मणगण आनन्दसागरमें गोते खाने लगे । कुछ देरके उपरान्त हरिदास-ठाकुर स्थिर होकर बैठे और विप्रगण उनके चारों ओरमें घेरकर बैठ गये । तब विप्रगणमें अपने द्रोहकी बात सुनकर तथा उनका दुःस्वित देखकर उनका समझाते हुए ठाकुरने सामान्यजीवके सदृश दीनताके साथ कहा कि आप लोग मेरे लिये चिन्ता मत कीजिये । चूँकि मैंने पूर्व जन्मके कर्म-दोषमें भगवद्-विमुखताके कारण भगवद्-विरोधमर्या कथा सुनी और उसका यथोचित प्रतीकार नहीं किया, इसलिये भगवानने मुझे ऐसा दण्ड दिया ।

जो भक्त तथा भगवानके प्रति विट्टेपकी बात सुनकर अपनेको सहिष्णु दिखलानेके लिये उसका प्रतीकार करनेके विचारमें प्रयत्न नहीं करते उनका भगवान् कठोर दण्ड देते हैं । विपयासक्त सम्प्रदाय-के लोग हरि-गुरुवैष्णवकी निन्दाकी बात सुनकर भी अपनी घृणित नीच कपटताको वैष्णवाचार कहकर समर्थन करते हैं, इसलिये उनकी भीषण दुर्दशा होती है । ठाकुर-हरिदास वास्तवमें सहिष्णुता-धर्मके सर्वोत्तम आदर्श थे, परन्तु कपटी विपयासक्त सम्प्रदायके लोग ( अर्थात् अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षकामी ) ठाकुर-हरिदासके सहिष्णुता-धर्मका कृत्रिम अनुकरणकर नानाप्रकारके क्लेशको प्राप्त होते हैं । महाभागवत-परमहंस-वैष्णव स्वयं निन्दादि रहित हृदयसे भगवद्-विमुखतासे उत्पन्न दूषणकी निन्दा-प्रशंसा-प्रजल्प-चर्चा जड़ बहिर्दर्शन नहीं करते, किन्तु विपयासक्त लोगोंका उस प्रकारकी उच्च अवस्था प्राप्त नहीं होनेके कारण उनके लिये श्रेष्ठ-भक्तका अनुकरण करनेकी चेष्टा, घृणित कपटमात्र है; इसलिये उनको अवश्यही दुःख भोगना पड़ता है ।

यही बात कपटो-विषयासक्त-बैष्णव-सम्प्रदायके लोगोंको समझानेके लिये ठाकुर-हरिदासने साधारण लोगोंके सदृश कर्म-फल भागकी बात कही। विषयासक्त-जीवको कर्मफल भागना पड़ना है, किन्तु हरिनाम उच्चारण करनेवाले मुक्तकलशिरोमणि हरिदास-ठाकुर कर्म-फलार्थीन नहीं थे। इस सम्बन्धमें श्रीरूपगोस्वामी प्रभुजीने भी कहा है कि ब्रह्माज्ञानकार-निष्ठाद्वारा भी भागके अतिरिक्तप्रारब्धकर्म नाश नहीं होता है, किन्तु हे नाथ, जिह्वापर तुम्हारेनामकी स्मृतिमात्रमें ही (नामाभासमें ही) वह प्रारब्धकर्म समूल नष्ट हो जाता है।

विष्णुवैष्णवकी निन्दा सुनकर जो मूढव्यक्ति 'तरंगिणि सहिष्णु', श्लोकके वास्तव तात्पर्यके विरुद्ध कृत्रिम सहिष्णुताके बहाने अपनेको उदार-रित्र-प्रदर्शित करता है उसको उसका महा अपराधका फल समझना चाहिये। इसीलिये जगद्गुरु ठाकुर-हरिदास कपट-दैन्य अभिनयारी-विषयासक्त मूर्ख-जीवोंके कल्याणके लिये दीनता पूर्वक कहने लगे कि मैंने प्रभुको बहुत निन्दा सुनी थी इसलिये ईश्वरने मुझे ऐसा दण्ड देकर मेरी बहुत भलाई की और थोड़ीसी ही सजा देकर मेरे बहुत बड़े दोषको जमाकर दिया। विष्णु-निन्दा सुननेसे कुम्भीपाक नरकमें जाना पड़ता है—ऐसा मैंने अपने कानों द्वारा सुना है। ऐसा महापराध मैं फिर न करूँ—इसीलिये प्रभुकी कृपासे यवनद्वारा ऐसी व्यवस्था हुई थी। स्वयं पुण्य-पापातीत महाभाव-वत हांकर भी ठाकुरने अपनेको यम-दण्ड्य बद्ध-जीव सदृश मानकर लोकशिक्षाके लिये दीनता-पूर्वक ब्राह्मणोंको विष्णु-निन्दा श्रवण करनेसे सतर्क कर दिया। इसीप्रकार ठाकुर-हरिदास विप्रगणके

सहित महाभ्रान्तदृष्टिसे संकीर्तन करने लगे। उनको जिन यवनलोगोंने दुःख दिया था वे बैष्णवाचार्य द्रोहरूपी महापराधके फलमें कुछ दिनोंमें सवंश नष्ट हो गये। तदुपरांत ठाकुर-हरिदास गङ्गा-किनारे गुफा निर्माणकर एकान्तमें रात दिन कृष्ण-स्मरण करने लगे। वहाँपर वे तीन-लक्षनाम ग्रहण करते थे और वह गुफा वैकुण्ठके सदृश हो गया था। परन्तु उसगुफाके भीतर एक महानाग बास करता था जिसकी ज्वालाका कोई प्राणी नहीं सह सकता था। हरिदास-ठाकुरके दर्शनके लिये जालोंग वहाँ आते थे उस सर्पकी ज्वालाके प्रभावमें वे शीघ्रही वहाँमें चले जाते थे। परन्तु नामग्रहणमें रत ठाकुरको इस बातकी कुछ भी अनुभूति नहीं थी। तब विप्रगण गुफासे कुछ दूर बैठकर विचार करने लगे कि ठाकुरकी गुफामें इनकी ज्वाला क्यों है, परन्तु कुछ निश्चय नहीं कर सके। जब इसबातकी खबर चारों ओर फैल गई तब वहाँपर ग्रामनिवासी एक बैद्य आया और बोला कि इस गुफाके भीतर एक महानाग रहता है जिसकी ज्वालासे यहाँ पर कोई ठहर नहीं सकता। इसलिये ठाकुर यहाँमें शीघ्र ही दूसरे स्थानमें चले जायें। सर्पका सङ्ग त्यागकरना चाहिये ऐसा विचारकर सबोंने सर्पको वृत्तान्त ठाकुरसे कहा और उस भजनस्थानको छोड़ देनेके लिये अनुगोष किया। जालोंगके प्रस्तावको सुनकर ठाकुरने कहा कि इस गुफामें मैं बहुत दिनोंसे अवस्थान करता हूँ परन्तु मैं किसीप्रकारका विष वा ज्वाला अनुभव नहीं की। परन्तु जब आपलोग मेरे लिये व्यस्त हैं तब आप-लोगोंके सन्तोषके लिये मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। यदि वास्तवमें यहाँपर नागराज हों और यदि वे इस स्थानको कल न छोड़ेंगे तो मैं कल यहाँसे

किसी दूसरे स्थानको प्रस्थान करूँगा। आपलोग अब चिन्ताग्रहित हो कृष्ण-गुण-गान कीजिये। ठाकुर के आदेशानुसार कृष्ण संकीर्तन होते समय वहाँ पर एक अद्भुत घटना हुई। महाभागवत ठाकुर हरिदासके स्थान त्याग करनेके सङ्कल्पको मुनकर महाभाग सन्यास लिये उनकी भजनकूटीके गद्देमें निश्चित कर सबोंके सामनेही अन्य स्थानको चले। वे अद्भुत नागराज महाभयङ्कर तथा पीत-नील एवं शुक्लवर्णके परम सुन्दर थे। उनके मस्तकपरम एक प्रखर मणिक्का तेज निकल रहा था जिसको देखकर

विप्रलोक भयमें "कृष्ण कृष्ण" कहने लगे। सर्पके चले जानेके उपरान्त वहाँपर और ज्वाल नहीं रही जिसमें विप्रगण अन्यन्त आनन्दित हुए। हरिदास-ठाकुरकी महाशक्तिको देखकर विप्रलोकियोंको उनमें विशेष भक्ति उत्पन्न हुई। हरिदास-ठाकुरका ऐसा प्रभाव है। कजिनके वचन मुनकर नागराज उनकी भजन-कूटि छोड़कर चले गये, जिनकी दृष्टि पढ़नेमें, अविद्या-बन्धन छूट जाता है, तथा कृष्ण भी जिनका वचनका उल्लङ्घन नहीं करते।

( क्रमशः )

### श्रीसरस्वती-पूजा

आज श्रीसरस्वती पूजाका दिन है। पराविद्याके उपासकगण आज संकीर्तनके माध्वीश्री विष्णुप्रियादेवीकी पूजामें नियुक्त हैं और अपराविद्याके उपासकगण अपनी अपनी कामनाका पूर्तिके लिये अपराविद्याकी अर्धाश्वरी श्रीसरस्वतीकी पूजामें लगे हैं। अपराविद्याके उपासकगण वाणापूजा किसको कहते हैं नहीं जानते, इसलिए वे लोग आज छाया ( प्रतिविम्ब ) सरस्वतीके चित्रके सकाम प्रार्थना कर रहे हैं। पराविद्याकी आलोचना करने वालोंका इस प्रकारकी अज्ञता नहीं रहता, इसलिए वे लोग कामना-वातनाको छोड़कर संकीर्तन यज्ञमें कृष्णकी आराधनमें तत्पर रहते हैं।

बद्ध तथा मुक्त दोनों ही सरस्वतीकी पूजा करते हैं। हमलोग बद्धजाव अर्थ वा प्रापिष्ठा देने वाली विद्याकी इच्छामें सरस्वती-पूजा करते हैं। श्रीजीवगोस्वामी प्रभुने लिखा है कि प्रकृतजन-पूजिता सरस्वतीदेवी सङ्कर्षण शास्त्रादिके प्रतिपाद्य देवता हैं। सरस्वती—वाक्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनको विद्या वा ज्ञानकी अधिष्ठात्री

देवता भी कहते हैं। इस जड़ गतमें मायादेवी दुर्गा नामसे परिचित है। उनके आवरणोंमें सरस्वती देवी पड़ी जाती हैं, और ऐकान्तिक भक्तगण सरस्वती देवीका भगवच्छक्तिरूपमें पूजा करते हैं। तब प्रश्न हो सकता है कि बद्ध तथा मुक्त दोनों प्रकारके जावोंके उपास्य देवता सरस्वती एक हैं अथवा पृथक्। मायामुक्त तथा मायाबद्ध जीवोंकी उपास्य सरस्वती एक नहीं है। एक स्वरूपशक्ति अर्थात् अन्तरङ्गशक्तिकी वृत्ति है और दूसरी मायाशक्ति वा बाह्यरङ्गशक्तिकी वृत्ति है। एक कृष्ण-कृपारूपिणी, कृष्णकार्तन-सरस्वती वा वैकुण्ठ-सरस्वती और दूसरी विमुक्त-विमोहिनी कृष्णोत्तर रागाविलसिनी ( मायिक वस्तुमें आनन्द देने वाली ) है। दोनों सरस्वतीके जीवन कृष्ण हैं। मायाशक्ति एवं विच्छक्ति शक्तिविचारसे अभिन्न होनेपर भी वस्तु तथा वस्तुकी छाया जिसप्रकार पृथक् रहती हैं, उसी प्रकार छायासरस्वती तथा वैकुण्ठ-सरस्वती परस्पर भिन्न हैं। मायाशक्ति शक्तिमान् भगवानकी शक्ति होनेपर भी त्रैलोक्यवर्ती निम्नप्रकार

स्वामीके समीप जानेमें लज्जा बोध करती है उसी प्रकार मायाशक्ति " विलज्जमानया यस्य स्थातुमीच्छापथेऽ-  
मूया" इस भागवत-वचनानुसार भगवानके सम्मुख नहीं जा सकती। और विच्छक्ति भगवानके निकट निरन्तर अवस्थान करके उनका सेवामुख प्राप्त करता है।

हमलोग छायासरस्वतीके सेवक हैं। सरस्वती उपासकगणोंके बीच प्रसिद्ध कवि कालिदास तथा केशवकाशमीरी नामक विख्यात दिग्विजयी पण्डित-का नाम सुनते हैं। परा विश्वाम्बररूपिणी श्रीसरस्वती श्रीगौरीहरि जिस समय नववर्षीयमें अवतीर्ण हुए थे उस समय सरस्वतीके श्रेष्ठ पुत्रगणोंका समस्त जड़ पाण्डित्य-प्रतिभा कुंठित हो गयी थी। महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यके निकट पराजित दिग्विजयी केशव-काशमीरीको सरस्वतीने ऐसा उपदेश किया था—

"हे विप्र! मुनां मैं तुमसे अत्यन्त गोपनीय कथा कहती हूँ जो वेदके लिये भी अगोचर है। यदि तुम यह रहस्य किसी दूसरेको बताओगे तो शीघ्रही तुम्हारी आयु जीण हो जायगी और तुम मृत्युका प्राप्त होंगे। जिनसे तुम्हारी पराजय हुई है वे अवश्य ही अनन्त ब्रह्माण्डके प्रभु हैं मैं उनके चरणकमलकी नित्य दासी हूँ और जड़-सरस्वती (अपरा विद्या) होनेके कारण उनके सम्मुख जानेसे लज्जित होती हूँ।"

कीर्त्तनमुख भक्तिका दूसरा नाम शुद्धसरस्वती है। वे कृष्णके अत्यन्त प्रिय हैं। वे शुद्ध भक्तगणोंकी जिह्वापर अवस्थानकर निरन्तर भगवत्सेवामें निरत रहती है। शुद्ध भक्तगण श्रवण-कीर्त्तनद्वारा इस सरस्वतीकी नित्य पूजा करते हैं। श्रीयुक्त जयदेव-सरस्वती इसी शुद्धसरस्वतीके एक प्रधान पञ्चक थे। सेवोन्मुख भक्तोंकी जिह्वापर जिस

शुद्धसरस्वतीकी स्फूर्ति होती है, भाग्यवान् जीवगण श्रवणद्वारा उनकी सेवा करते हैं। शुद्धसरस्वती देवी भी भाग्यवान् जीवोंके कण्ठस्थ द्वारा हृदयमें प्रवेशकर उनके हृदयको निर्मल तथा अपने पति श्रीहरिके अवस्थानके योग्य बनाकर उस भाग्यवान् भक्तकी जिह्वापर नृत्य (नाच) करते करते अपने स्वामीको प्रसन्न करती हैं। जो वाणी कृष्णको प्रसन्न नहीं करके जीवोंको प्रसन्न करती है उसी वाणीको जड़ वा छाया सरस्वती कहते हैं। इसी छाया सरस्वती की पूजामें जगत्के लोग नियुक्त हैं। इसीलिये वे कृष्ण-बहिर्मुख होकर नाना प्रकारके दुःख तथा क्लेश सहन करते हैं, और परा सरस्वतीके उपासक कृष्णान्मुख रहकर निरन्तर कृष्णसेवाके आनन्दमें मग्न हो जाते हैं। भक्तकी उपास्य शुद्ध-सरस्वती तथा अभक्त पूजित सरस्वतीमें क्या भेद है इसको किसी महाजनने इस प्रकार वर्णन किया है:-

मनरे, केन कर विचार गौरव ?

स्मृतिशाम्भ व्याकरण, नाना भाषा आलोचन,  
वृद्धि करे यशस सौरभ ॥

किन्तु देख चिन्ता करि यदि ना भजिले हरि,  
विद्या तब केवल रौरव ।

कृष्ण प्रति अनुरक्ति, सेइ बीजे जन्मे भक्ति,  
विद्या हते ताहा असम्भव ॥

विद्यार माज्जना ता'र, कमु'कमु अपकार,  
जगतेंते करि अनुभव ।

जे विद्यार आलोचने, कृष्णरति स्फुरे मने,  
ताहारी आदर जान सब ॥

भक्ति बाधा याहा हते से विद्यार मस्तकेते,  
पादाघात कर अकैतब ।

सरस्वती कृष्णप्रिया कृष्णभक्ति ता'र दिया  
विनोदेर सेइ से वैभव ॥



भक्तगण मायाशक्तिकी आधीनता परित्यागकर चञ्छलिके आनुगत्यमें रहते हैं इसलिये वे ही वास्तव में सरस्वतीपूजाके अधिकारी हैं। वे लोग सरस्वती को अपर्नासेवामें नियुक्त न कर उनके द्वारा विद्या-वधूजीवन श्रीकृष्णकी ही सेवा करते हैं, जिसमें शुद्धसरस्वतीको संतोष होता है। किन्तु, हरि-विमुखजन पूजनीय सरस्वतीके प्रति उदासीन रहकर अपने लाभ, पूजा और प्रतिष्ठादिके लिये जिस सरस्वतीकी पूजा करते हैं उसमें उनकी हरि-विमुखता दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती है और वे परा विद्यारूपी वाणीपूजामें वर्जित रहते हैं।

अपनी इन्द्रियोंकी प्रसन्नताका दूसरा नाम काम है—जिसकी हरिविमुखता वा नाभिकता भी कहते हैं। इस प्रकार ही नाभिकता कभी प्रच्छन्न तथा कभी स्पष्टरूपमें देखनेमें आती है। इसीलिये वे लोग नानाप्रकारमें भोग प्रदाता देवताओंकी आराधनामें व्यस्त रहते हैं। देवता यदि सेव्य हों तो उनमें धन, जन विद्यादि अदा करनेके लिये इतनी

चेष्टा क्यों की जाती है? वे क्या हमलोगोंके दास हैं कि हमलोगोंकी तावेदारी करेंगे—हमलोगोंकी इन्द्रिय-तृप्तिकी वस्तु पहुँचा देंगे? इसीलिये कहा जाता है कि यह देवतापूजा है, या देवतामें अपने लिये पूजा अदा करानेकी चेष्टा है।

हमलोग अपनी अपनी विद्याकी पारदर्शिता (निपुणता) के लिये सरस्वतीकी पूजा करते हैं। हमलोगोंका प्रयोजन—कनक, कामिनी तथा जड़-प्रतिष्ठा है। इसीको आत्मेन्द्रियतर्पण वा काम भी कहते हैं। इस देशके बहुतसे स्थानोंमें तथा विद्यालयोंमें सरस्वतीपूजा एक प्रधान उत्सव हो गया है। परन्तु शुद्धभक्त लाभ-पूजा-प्रतिष्ठादिके लिये सरस्वतीकी पूजा करके वणिक्-वृत्ति अवलम्बन नहीं करते। वे लोग परा विद्यारूपिणी सरस्वती-देवीकी अनक्षण श्रवण-कीर्तनद्वारा पूजा करते रहते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि भगवद्भक्त ही श्रेष्ठ सरस्वती-पूजक हैं।

ॐ विष्णुपाद चिद्विलास अष्टोत्तर शत श्री  
श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके  
पंचपण्डितम-आविर्भाव-तिथिपूजाके उपलक्षमें

## कुसुमाञ्जलि

परम दयालु श्रीगुरुदेव !

आज व्यासपूजाके दिवस आपके श्रीचरणोंमें कुसुमाञ्जलि समर्पित करते हुए हमारे हृदयमें स्वाभाविक रीतिसं यह प्रश्न उठा है कि क्या वास्तवमें आपकी असीम और अनुपम कृपाकी अनुभूति करते हुए हम इस कुसुमाञ्जलि द्वारा आपके प्रति प्रकृतरूपसे अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं?

क्या यह कुसुमाञ्जलि उन्हीं सुन्दर और सुगंधित पुष्पों द्वारा तैयारकी हुई है जो आपकी अहैतुकी कृपाकी वास्तविक अनुभूतिके सलिलसे नित्य प्रति सींचे हुए हृदय-उद्यानसे चुनकर लाये गये हैं, अथवा उन कृत्रिम फूलों द्वारा बनी है जो दिखावटी भावसूतके रङ्ग-बिरङ्गे कपड़ोंको गुंथकर बनाये जाते हैं। गुरुदेव ! हमारी बुद्धि अहङ्कार-

रूपी मदिरासे दूषित है और इस प्रश्नका ठीक ठीक उत्तर देनेका हमें साहस नहीं होता; परन्तु हमें इस बातकी शङ्का है कि कदाचित् कुसुमाञ्जलि समर्पित करने का यह सब हमारा ढोंग मात्र है। यदि ऐसा नहीं तो आज हमारा हृदय आपकी असीम कृपाकी उपलब्धि कर आपके चरण कमलोंमें कृतज्ञता और प्रेमके भावसे व्याकुल होकर क्यों नहीं लोटने लगता? क्यों नहीं प्रेमाश्रुओंसे हमारा शरीर सराबोर हो जाता और अपने भावोंको प्रकट करनेकी व्यर्थ चेष्टाओंमें कंठ रूंधने लगता?

आपकी करुणाका सागर कैसा अपार है, दयानिधे, इसका तनिक भी ज्ञान यदि हमें होता तो हम आपके प्रेममें अवश्य विभोर हो जाते और दीवाने होकर नित्य प्रति आपकी दयाके गान गाया करते। हमारे जैसे जीवोंको संसार बन्धनमें मुक्त कर भगवत्सेवामें नियुक्त करनेके लिये कितनी तन मनसे आपने चेष्टा की है, साधनकें कैसे कैसे नूतन और आधुनिक परिस्थितियोंके अनुकूल उपायोंका आविष्कार कर सभी श्रेणियोंके मनुष्योंको भगवत्सेवामें जीवन व्यतीत करनेका सुअवसर दिया है।

किस प्रकार देश-विदेशमें नाना भक्तिमठ-रूपी पारमार्थिक अस्पताल स्थापित कर नित्यकाल मायारोग-ग्रसित तथा त्रितापसे पीड़ित जीवोंकी चिकित्साका सुन्दर प्रबन्ध किया है और मोह तथा अज्ञानकी नींदमें पड़े विरकाल में सोते हुए जीवोंका 'गौडीय', 'नदिया-प्रकाश', 'भागवत' इत्यादि पारमार्थिक पत्र रूपी दूतोंको भेज कर जगाते रहनेके लिये कैसी सुन्दर व्यवस्था की है। सुयोग्य शिष्योंमें अपनी अलौकिक शक्तिका संचारकर उनके द्वारा पृथ्वीके विचित्र स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार करवाया है।

किस प्रकार साधन मार्गमें अनेक पथभ्रान्त करनेवाले मन-मतान्तरोंको अपनी शास्त्रसम्बन्धी युक्तियोंमें खंड खंड कर आपने हमारा मार्ग विघ्नरहित कर दिया है।

कहां तक हम आपकी करुणाका वर्णन कर सकते हैं। गुरुदेव, आपने तो पतितसे भी पतित, दुष्टसे भी दुष्ट और भक्तिकी आड़में नाना प्रकारके भोग और विषयोंमें लिप्त घोर अपराध करने वाले व्यक्तियोंको भी अपनी शरणमें आकर्षित कर अपना कल्याण करनेका भरपूर अवसर दिया है। और, यद्यपि इस समय आप हमारे जड़ नेत्रोंमें आंशुल हो गये हैं, तथापि आपकी इस अनुपम दयाका स्मृत अब भी साक्ष्मरूपसे प्रवाहित होता हुआ दृग्गता है। आज वही करुणा स्मृत आपमें नित्यकाल अभिन्न और आपकी सम्पूर्ण पारमार्थिक सम्पत्तिके एकमात्र उत्तराधिकारी आचार्यवर ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्अनन्त वामुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी प्रभुके श्रीचरणोंमें प्रवाहित हो रहा है।

आपके इस अपार करुणासागरके एक बिन्दुकी भी यदि हमें वास्तविक उपलब्धि होती तो हम आज कृतकृत्य हो जाते। आपका करुणा-सागर कितना अपार है उतना ही हमारे निकट यह शोक और लज्जाका विषय है कि आपके श्रीचरणोंमें हम प्रतिवर्ष जो श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं, उनमें यद्यपि भौतिकरूपसे आपका गुणगान करते और हमारे कल्याणके लिये नानाप्रकारकी चेष्टाओंमें आप संलग्न रहते हैं उनके कारण आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं, फिर भी हमारे अतःकरणमें इसकी तनिक भी उपलब्धि नहीं होती। परन्तु दया-मय ! हमें सम्पूर्ण आशा है कि हमारे इस दिखावटी

प्रयत्नका भी आपके निकट कुछ मूल्य है और आपकी अहैतुकी कृपा से हमारा यह प्रयत्न आपकी करुणा की बराबरिक अनुभूतिके द्वारा कभी न कभी।

प्रकृत सेवामें परिवर्तित हो जायगा।

नित्य-सेवाभिखारी

आपके सेवकवृन्द

## विविध-संवाद

गया जिलेमें प्रचार--श्रीश्रीविश्ववैष्णवराज-सभाके अन्यतम प्रचारक उपदेशक पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी बी० ए० भक्तिशार्मा, विशाखा महोदयने कई ब्रह्मचारियोंके साथ गया जिलेके अन्तर्गत औरङ्गाबाद मण्डिविजनके विभिन्न स्थानोंमें कई दिन हरिकथा प्रचार किया था।

गत १४ वीं जनवरी शनिवारको डा० श्रीयुत धरणीधर प्रसाद एम० बी० महाशयके गृहमें ब्रह्मचारीजीने श्रीचैतन्यचरितामृतमें मनातन-शिक्षा-पाठ किया था। दूसरे दिन दुर्गाकर्मठा हाउसके विस्तृत हौसोंमें एक महती सभामें राय साहब श्रीयुत अखौरी कृष्ण प्रसाद सिंह बी० एल० एम० एल० ए० महोदयके सभापतित्वमें ब्रह्मचारीजीने हिन्दी

भाषामें "श्रीचैतन्यदेव और श्रीनाम सङ्कीर्तन" के सम्बन्धमें प्रायः डेढ़ घण्टे तक एक हृदयग्राहिणी वक्तृता देकर श्रोतृवृन्दका चित्ताकर्षण किया था।

## पलामू जिलामें प्रचार

गत २० वीं जनवरीको ब्रह्मचारीजी औरङ्गाबादका प्रचार शेषकर पलामू जिलेके अन्तर्गत नगरउन्तारी थानके अस्पतालके डा० श्रीयुत नरेशचन्द्र राय महाशयके सादर निवेदनमें कई ब्रह्मचारियोंके साथ पहुँचकर प्रायः एक सप्ताह तक वहाँ शुद्धभक्तिका प्रचार किया। तत्पश्चात् २७ वीं जनवरी को डाल-टेनगंज पहुँचकर वहाँ भी पाठ, व्याख्यान और सङ्कीर्तन कर शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे हैं।

## श्रीधामनवद्वीप परिक्रमा

आगामी २४ फरवरी शुक्रवारमें लेकर नौ दिनों तक श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाके उद्योगमें श्रीगौड़ीयाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्री-श्रीमद अनन्तवासुदेव परविद्याभरण गोस्वामी प्रभुके निर्देशानुसार सङ्कीर्तनमहित श्रीधाम नवद्वीपकी परिक्रमा होगी। उस मुश्रवसरपर बहुतसे साधु लोग परिक्रमामें योगदान देंगे। संसारकी परिक्रमा करनेसे केवल संसारासक्ति ही बढ़ती है किन्तु यदि धामकी परिक्रमा की जाय तो इसमें नित्य मङ्गल प्राप्त होगा। धाम विन्मय वस्तु है। हरि, गुरु, वैष्णव भोगोंके आनुगत्यमें शरणागत होकर हरिकथा श्रवण कीर्तन करते हुए यदि धामकी परिक्रमा की जाय तो सर्वेन्द्रिय द्वारा इषिकेशकी सेवा आपसे

आप हो जायगी। श्रीकृष्णचन्द्र वा वृन्दावन धामसे भी श्रीगौर व श्रीगौरधाम अधिक उदार हैं। धामकी कृपा नहीं होनेसे कभी भी भगवान्की कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। विशेष कर कलियुगमें श्रीगौराङ्गमहाप्रभुकी कृपा प्राप्त किये बिना कल्याण नहीं क्योंकि वे ही कलियुगके एकमात्र धर्म--नामसंकीर्तनके पिता हैं। भिन्न भिन्न देशोंमें बहुत लोग श्रीधामकी परिक्रमा करनेके लिये आर्योगे। सज्जनगणके कृपापूर्वक परिक्रमामें योगदान देनेसे परमानन्द प्राप्त होगा।

आगामी ५ मार्च रविवारसे लेकर तीन दिनों तक श्रीधाम मायपुर-योगरीठ (नवद्वीपसे प्रायः ३ मील पर) में श्रीश्रीचैतन्यदेवका जन्मोत्सव मनाया जायगा।

# SREE KRISHNA CHAITANYA

By PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/-; Foreign 21 s. nett

To be had at **SREE GAUDIYA MATH**, Baghbazar, Calcutta  
**SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)**

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs. 2-8-0.

## RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

**A few words on Vedanta** by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

**The Vedanta** its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

## THE BHAGBAT

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Sri Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick paper bound—Twelve Ans

( बंगला में )

### श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत, मूल, श्रीमन् मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूप-से शेष हो गया है। भिन्ना प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ९) मात्र।

### श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं। श्लोककी सान्ख्य व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पंथारके पूर्व संक्षिप्त अभिप्रेय संयोजित है। प्रत्येक अध्याय के आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पंथार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृद्ध सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी-समन्वित इस तरहका अमृतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्रायः १५०० श्लोकमें सम्पन्न है। भिन्ना बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

### श्रीचैतन्यभांगवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आधुनिक—कागज ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १३४० पृष्ठ भिन्ना—६) मात्र (बिना बंधा हुआ)।

## श्रील प्रभुपादकी पञ्चावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-पुस्तक तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पञ्चावली का तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षापत्र व सारगर्भ वादेशमें परिपूर्ण है। इसमें प्रत्येक संगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्ति का इस पञ्चावलीका पत्र अपनेक अनुदेश करने हैं।

### श्रीचे-चन्देव

श्रीचैनन्देवके आविर्भावके पहले व बाद जन्म-मरणकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्म-नैतिक अवस्था समसामयिक पृथ्वीकी अवस्था, नवद्वीप-का परिचय व सत्य और प्रमाणिक सत्य व विवरण आदि सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन दिया गया है। इसमें 'अर्थ-नैतिक' साहित्य दिये गये हैं। सुन्दर (जिन्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालय, छात्र, गुरुके) आदि का वर्णन व प्राप्ति देनेवाला होगा। भिजा १)।  
प्राप्तिस्थान—श्रीगौरीमठ, पाठ-कलकत्ता, कलकत्ता, श्रीगौरीमठ, पाठ-बोयारी, ढाका।

### मन्वर्त जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील प्रभुपाद सरस्वतीजी के द्वारा ज्ञान सरस्वतीगोस्वामी पञ्चावलीका भुवन-के संगलदायक जीवनचरित मध्य है। इसमें प्रत्येक पत्र एक पञ्चावली व्यक्ति इस अन्धके पाठमें युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक भाष्यमूलका पत्र व पत्र अर्केने। वैभवपूर्ण प्रथम खण्ड गायल ८ पंजी आकारमें अष्टक वाराजपर अन्तर्गत है। इसमें १०० पृष्ठोंमें विस्तृत सर्वोपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिजा २)।

### 'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय जनक विद्वान् व पञ्चावलीका आविर्भाव व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यकगणों-की गवेषणापूर्ण प्रवन्धमें समुचित होकर प्रकाशित हो है। इसमें साम-सायापुरमें श्रीश्रीगौरीजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें मन्वसाधारणके दिये भिजा ३)। प्राप्ति।

### ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगठभक्ति मानने पञ्चावलीका मूल पत्र है। विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व निजामाणा बहुत सन्ध भाषामें बड़े बड़े अन्तर्गत मृदित। भिजा ३)। मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागवाजार) श्रीगौरीमठ व ढाका (गौरीमठगौरीमठ)।

### अणुभाष्यम्

यस अध्याय का अन्तर्गत प्रत्येक पत्रिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। वगमापम संवत्सरा संस्करण पत्रके प्रति अध्यायके प्रतिपादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित कृष्णप्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेंद्रयतिविरचित तन्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक भूषित हुई है। इसके अनिरिक मानका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायक, पदांक व सूत्रांकके साथ सर्वोपत्रभी संयोजित हुआ है। भिजा २)। मात्र।

वर्ष ५ ]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग जयतः

Regd. No. P. 468,

संख्या २]

# भागवत

एतद् भात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

५ विष्णु

गौरानन्द

४५३

चैत्र कृष्ण ५

संवत्

१९६५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णसे श्रवणा, लक्षणा फलाभिमन्थन - रहिता 'एकान्तिका' स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है - उसी भक्तिके बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

प्रति संख्या १) सम्पादक-त्रिदण्डस्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रीनी महाराज (वार्षिक २)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudeva Shrianti Maharaj

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

## विषय सूची

| विषय                       | पृष्ठांक | विषय        | पृष्ठांक |
|----------------------------|----------|-------------|----------|
| श्रीभक्ति मिट्टान्न वार्ता | १७       | परीक्षित    | २६       |
| भजन                        | १९       | शरणागति     | ३१       |
| करुणा-धारा                 | २०       | विविध-संवाद | ३२       |
| आश्रय                      | २४       |             |          |

## श्री मायापुरधाममें महामहोत्सव

गत २४ फरवरी शुक्रवारसे लेकर नौ दिनों तक श्रीगौड़ीयाचार्य ॐ श्रीविष्णुपाद परमहंस श्री श्रीमद् अनन्तवासुदेव परविद्या भूषण गोस्वामी प्रभुके निर्देशानुसार संकीर्तनसहित श्रीधाम नवद्वीपकी परिक्रमा हुई। इस सुअवसरपर बहुतेसे साधुलोग परिक्रमामें योगदान दिये थे। बिहार प्रान्तके भी बहुतेसे भक्तगण इस सुअवसर पर उपस्थित थे। महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यदेवका जन्मोत्सव ५ मार्च रविवारसे लेकर तीन दिनों तक अत्यन्त समारोहके साथ मनाया गया। ता० ५ मार्च को श्री नवद्वीप धाम प्रचारिणी सभाकी वार्षिक अधिवेशन हुई थी।

पत्र व्यवहारका पता--

*All communications are to be addressed to—*

मैनेजर—“भागवत”

The Manager 'Bhagwat'

श्रीगौड़ीयमठ,

SRI GAUDIYA MATH

मीठापुर, पटना।

Mithapur, Patna



वर्ष ५

श्रीगौड़ोदयमठ, सीठापुर ( पटना )

वेद कृष्ण ५, ५५३ सं० १९९५ वि०, १८ माघ

पृष्ठ २

## श्रीभक्ति सिद्धान्त वाणी

भगवत्-प्राप्ति करना कठिन काम है ऐसा मनमें सांचकर भयभीत होनेसे नहीं चलेगा: सत्यवस्तु जाननेके लिये हृदयमें बहुत बलकी आवश्यकता होती है । तैरना सीखनेवाला यदि जल देखने ही डर जाय तो उसको तैरना नहीं आयागा । भगवान् की शरणागति कठिन बात नहीं है, वही आत्माका अति स्वाभाविक एवं सहज धर्म है । शरणागतिके विपर्यय जो कुछ है वह अस्वभाविक तथा क्लेशकर है ।

भगवान् की कथा सुननी होगी—भगवान् के एजेन्टों ( आचार्यों ) समीप सुननी होगी । जिस समय हरिकथा सुनेंगे, उस समय समस्त पार्थिव

व्यामज्जना, कुतर्क प्रभृतिको हटा देना होगा । भगवान् की पराक्रमपूर्ण वीर्यवती कथा सुनते-सुनते हृदयके दौर्वर्त्यादि अनर्थ कट जायेंगे—हृदयमें अभूतपूर्व साहस होगा: उस समय शरणागति वा आत्माका सहज धर्म सम्पूर्णरूपमें उद्घित होगा । उस शरणागत हृदयमें चतुर्थमान अर्थात् तुरीय अतीन्द्रिय राज्यका स्वपकाश सत्य स्वयं प्रकाशित होगा । इस उपायमें ही सत्य जाना जाता है: और किसी प्रकारमें अकैतव (बल गहन)सत्य नहीं जाना जा सकता । भगवत्-कथा तथा समाजकी कथामें भेद है । प्रत्येक शब्दकी दो प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं, उनमें एक संसारके परिवर्तनशील वस्तुको निर्देश



कर्ता है तथा भगवन्को विस्मृत कर देती है; और दूसरी निषेधवस्तुको निर्देश करता है एवं भगवान्के स्मरणकी उद्योग तथा उद्दीपन करती है। वैकुण्ठका शरणार्थ तथा राम कृष्ण (नारायण) समारके उद्दीपन पथ भेद है उमें आचार्यके मुख्यसे भगवन्को स्मरण इस प्रमाण करने की योग्यता प्राप्त होती है।

गीताशालाके लिखा है कि जीव न आत्मा स्थूल तथा सूक्ष्म प्रायस्सर्गों परात्मा (पारलौकिक) होकर भगवन्-विभक्ति के कारण समारमें आता है। इस प्रकारकी आध्यात्मिकता से भगवन् ज्ञान तथा मनके द्वारा जो रूप रसादि विषय ग्रहण किये जाते हैं, उनमें और भावार्थिक लोभ उदित होता है तथा भगवन् स्मरण में प्राप्तिभवनाय आध्यात्मिकता जाता है। मङ्गलपञ्चकल्पसर्वोत्थितासम मनके सहित अगुचैतन्य पनावृत शब्द जावन्माका पूर्ण पार्थक्य है। मन परिवर्तनशील पर आत्मा अपरिवर्तनीय तथा नित्य है। मनका काम मोह वा त्याग और आत्माका काम सेवा है। मन नोपशान्त। जायत, स्थित तथा सुपुष्टि। उकी वस्तुको जान सकता है उसको चतुर्थमानकी वस्तुको जाननेका अधिकार नहीं है। आत्मा ही चतुर्थमान व नृणायावस्थाका अभिज्ञान प्राप्त कर सकता है। समारके पाण्डित्यमें वास्तव सत्य नहीं जाने जा सकते।

“वर्तमान अवस्थामें उन समस्त विषयोंको जानना अत्यन्त कठिन है” यह जिसप्रकार सत्य है, उसीप्रकार उन विषयोंको जाननेका जो उपाय है वह भी सत्य है। हमलोगोंके दुर्देशस्थ बान्धवोंका समाचार डालकर हमलोगोंके निकट लेआता है। किसी किसीका संवाद पिअन नहीं भी ला सकता है।

पिअन जिसकी चिट्ठी नहीं लाया उसका भाग्य अत्यन्त मन्द है ऐसा समझना चाहिये। जो लोग पत्रके लिये आर्त (पॉइत) हैं उनके निकट अवश्य ही पिअन चिट्ठी ला देता है।

किसी वस्तुके विषयमें ज्ञान उपार्जन करनेके लिये समारमें दो प्रकारके उपाय देखे जाते हैं; एक समारके पाण्डित्यद्वारा वस्तुको जाननेकी चेष्टा, और दूसरा समारके पाण्डित्यकी असम्पूर्णताकी उपलब्धिकर चित् जगतमें अवर्तमान पुरुषके (आचार्यके) निकट सम्पूर्णरूपमें अन्तः समर्पण करके शीत पथ द्वारा ज्ञान लाभ करना।

यदि मैं दाम्भिक हो जाऊँ तो मेवामें विरकालके लिये बर्जित हो जाऊँगा। भगवान्का भक्ति जिसप्रकार करना होती है, भगवद्भक्तके परमात्ममें यदि उसी प्रकारकी भक्तिका उदय न हो तो मैं अप्रदार्थ (अयोग्य) हो गया - जीवन व्यर्थ हो गया। मैं तिनही अयोग्य क्यों न होऊँ मेरे मङ्गलके लिये बहुतसे भक्त कृपापूर्वक आधिभूत हुए हैं। मेरी दुर्दमनीय दाम्भिकताका दमन करनेके लिये बहुतसे भक्तोंका समावेश हुआ है। वे लोग मुझे भगवद्भक्तोंकी शिक्षा दे रहे हैं। भगवद्भक्तों के निकट अपेक्षाकृत अधिक सम्मान पाऊँगा, इस प्रकारकी दुर्वृद्धिका जिस दिन हजारों हजार भाङ्गुओं द्वारा नष्टकर सकूँगा दूसरोंके निकट सुविधा के लाभकी आशा में जिस दिन उद्धार प्राप्त करूँगा, उमाँ दिन मेरे प्रति भगवान्की कृपा होगी, और मैं भगवद्भक्ति प्राप्तकर धन्य होऊँगा—

भक्तिका आश्रयकर यदि हम दाम्भिक हो जायें, केवल भगवान्की पूजाकर भक्तोंकी पूजाके प्रति अन्याय प्रदर्शित करें—तो ऐसा होनेमें भक्तोंके चरणों में अपराध होनेके कारण नाना प्रकारकी असुविधाएँ

होंगे—भक्तिपे अश्रद्धा होकर सम्पूर्णरूपसे अमङ्गल हो जायगा।

मनुष्य-जीवन अमङ्गल सञ्चय करनेके लिये नहीं हुआ है, यह जन्म परम मङ्गल प्राप्त करनेके लिये ही हुआ है—यह मैं क्यों भूल जाता हूँ! मैं सर्वोमें लुट तथा अधम हूँ इसकी विस्मृति मुझे क्यों होती है! मायाके प्रलोभनमें लालचमें पड़कर भोगी होनेसे बड़ा होनेका विचार निरानन्द लुट तथा अप्रयोजनीय है। यदि संसारमें बड़े होनेकी प्रवृत्तिको कम करनेकी आवश्यकता हो—प्रकृत (वास्तविक) स्वास्थ्य प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो, तो वैष्णवोंका विचार ग्रहण करना चाहिये।

जो हरिसेव करने है, वे अपनेको सर्वोमें हीन समझते हैं। अपनेको सर्वोमें हीन समझने वाले ऐसे ही व्यक्ति अभिमान-हीन होने ही से सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं। सर्वश्रेष्ठ होकर वे हरिभक्तिकी कथा कह सकते हैं।

सर्वोत्तम होनेके लिये अपनी अयोग्यताकी परीक्षा करना चाहिये। अपनी परीक्षा तो होती नहीं फिर दूसरोंके दोषकी खोजमें इतना प्रवृत्ति क्यों है? क्या ऐसा ही वैष्णवको स्वभाव होता है? वस्तुतः वैष्णवोंके चरणारविन्दोंके आदर्शका ग्रहण करनेसे अयोग्य भी योग्यता लाभ करते हैं।

मैं अच्छा होऊँगा, मेरा रोग दूर हो सङ्गन, हाँ-यह विचार अच्छा है; परन्तु मैं बड़ा होऊँगा संसार के सभी लोगोंको संसार मेरी हिंसा-वृत्ति चरितार्थ हो—इस प्रकारकी धारणा बिल्कुल ही प्रशंसनीय नहीं है। आनेवाले श्रेष्ठ समस्तका भक्तों ही सेवामें बाधा देना अनुचित है।

मेरा जन्म इतना भार हो जिसमें मैं भगवद्भक्तोंके चरणारविन्दोंकी धूल होकर आरूपानुपद्धानिके अनुसार हो सकूँ। अपनी अयोग्यताकी उपरालिखित दानता ही इसका मूल है। मैं योग्य हूँ—यह विचार आप ही आप यदि आ जाय तो मैं भगवद्भक्तोंके चरणारविन्दोंकी शोभाक दशन प्राप्त कर सकूँगा।

## भजन

भुलिया तोमारें संसारें आमिया,

पेये (पाकर) नानाविध व्यथा ।

तामारें चरणे, आमियाछि आमि,

बलिव (बोलेने के लिये) दुःखें कथा ॥१॥

जननी-जठरें (गर्भ), झिलाम जखन,

विषम बन्धन पाश ।

एकवार प्रभु, देखा दिया मोरें,

बटि ले (झूल किया) ए दीन दासे ॥२॥

तखन भाविनु, जनम पाइया,

करिव भजन तव ।

जनम हड़ल, पड़ि माया-जाले

ना हड़ल ज्ञान लव ॥३॥

आदरें छेने, स्वतनेर कोले (गोद में)

हामिया (हमकर) काटानु काल (समय बिता दिया)

जनक जननी स्नेहेने भुलिया,

संसार लालिल भाल (मुन्दर) ॥४॥

क्रमे दिन दिन, बालक हड़या,

खेलिनु बालक सह ।

आर कियु दिने, ज्ञान उपाजल,

पाठ पड़ि अहरह (सर्वदा) ॥५॥

विचार गौरवे, भूमि देशे देशे,

धन उपाज्जन करि ।

एवमेव (पुनः) करि एक मन  
भुज्जितं भुज्जितं यथा (गोम रे हरि) तद्वत्  
कलम्य (तद्वत्) एवमेव भक्तिविनोद,

कांदिया (रोकर) कानर अति ।  
ना भक्तिया नोरे (आर को) दिन वृथा गेल,  
एवमेव कि हवे गति । ७॥

## करुणा-धारा

श्रीवृद्ध-माध्व गौड़ीय-सम्प्रदायके संग्रहाक ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री  
श्रीश्रीमद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजी महागजकी निखिल भुवन  
मंगलमयी करुणा-धारा

परम सगुणता परमेश्वर का उन द्वारा पूरा भुवन पर  
उनका तथा उनका सा हाका (पराधनता) धरणा-  
तन्त्रम द्वारा करवा है । यह धरन उनके कृपा (च हो  
समस्त यकी है । धरणा (पराधनता) सर्वोत्कृष्टपदमे  
या (निराकार) जान सका है । उनका भा (हो) की  
आवश्यक है । परमेश्वर सन्तुष्टीका (न) विपय-  
धामनासे कृपित (न) के कारण उन (न) के  
उनके कानन (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
करा है । उनका (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
सात न (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
लोचनमे (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
सिद्धान्तमे (न) के कारण (न) के कारण (न) के

अनुभूत (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
सरस्वती (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
पुण्यापर (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
विनयभावना एक (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
आवश्यक (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
सुखताके (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
गये (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
करने (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
या (न) के कारण (न) के कारण (न) के  
प्राप्त (न) के कारण (न) के कारण (न) के

करा हो गया था । उस समय श्रीमद भक्तविनोद  
गोस्वामीजी ने भागवत धर्म का कण्ठ फटकाया था  
परम पुण्यपद श्रीश्रीमद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती  
गोस्वामीजी महाराज आल भक्तिविनोदसे एक महा-  
पुरुषके द्वारा कानन-सुखरित दीधाम और पुरुषोत्तम  
केवल आविर्भूत हुये थे । उनका अन्नप्रशन श्री  
पद्माक्ष देव तीरे महापद्मादसे हो हुआ था । वचन-  
मे हो उनका हरि कथा-वचन, भक्तमंग तथा तीर्थ  
सुमण्डि की लोचन प्राप्त थी । वाच्य कलमे ही  
उन्हीं भक्ति पदाचारका पावन और भक्तिग्रन्थका  
प्रत्ययन किया था । जीवन कालमे परमभक्त श्रीमद  
गोर्किशोर दाम गोस्वामीजीका सम्मेल प्राप्त हुआ था  
उन महापुरुषके प्रचारकी जो विशेषता है वही हम  
योगी की आलोचनाका विषय है ।

हमयोगीकी यह धारणा थी कि वैष्णवधर्म  
हमके कुछ थोड़ेसे एस उपाक्तियाका ही धर्म है जो  
सर्वांगी सम्प्रदायिक या कट्टर है ।

कोड़े कोड़े ऐसा भी समझते थे कि यह केवल हिन्दू-  
धर्मका ही एक अंश है परन्तु इस महात्मा ने ही पहले  
पहल यह प्रचार किया था कि वैष्णवधर्म सार्वजनीन  
सार्वकालिक और सावर्भौमिक सनातन धर्म है ।  
यह केवल सन्तुष्टी जातिका ही धर्म नहीं है बल्कि

समस्त जीवों का धर्म है। इसीलिये वैष्णवधर्मका दूसरा नाम है जैवधर्म, आत्मधर्म या भगवतधर्म।

[illegible]

प्रतिवादि आह्वये यत् नगरार्धं प्राप्तम् ।

मन्त्रत्र सन्नाह दृष्टये मार नाम ॥

अर्थात् पृथिव्यापर जितने नगर या ग्राम हैं उन सब ग्रामों में में नामक प्रचार होना—इस वाक्यकी सार्थकताका सम्पादन करने के लिये इस आचार्यका आविर्भाव हुआ था। पूर्वाचार्यों के चरित्रमें ऐसी विपुल भावसे प्रचार करनेकी चेष्टा नहीं थी। वे लोग शायद इनके लिये ही यह कार्य बाकी रख गये थे। अनेक आचार्योंके चरित्रमें दिग्विजय करनेकी चेष्टा भी दीख पड़ती थी किन्तु इनका यावतीय चेष्टा थी श्रीचैतन्यदेशकी करुणा का विस्तार करना। भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यने दक्षिण देशमें, श्रीनित्यानन्द प्रभुने गौड़ देशमें श्रीरूपसनातनने

ब्रजमण्डलमें प्रचार किया था पर समय वे प्रभावमें  
 वे सब बातें कही लुप्त या कहीं विकृत हो गई  
 थीं। किन्तु इस आचार्यने उनमें स्थानोंका उद्धार  
 करने तथा वहाँ आर्यतन्त्र चरणाभिद्ध ही स्थापना  
 की और वहाँ कदा मठ मन्दिरका पतन करके  
 आर्यतन्त्रमहिमाका प्रचारका यथेष्ट यत्नवास्त  
 किया।

इस व्याख्यान के अन्तिम में यह विशेषता चाय पट्टी  
है कि प्रार्थना का भाव मा भद्र कर्णेभ्यः स्वस्त्ये  
ना जवत्त उत्तरे श्री गणेशाय नमः करके ये भा  
व्याख्यात्मक कर्तव्य प्रमाण मुक्तान् ये । इस विचारमें  
जावका "नामायमा ज्ञान तपी है किन्तु प्रत्येक  
व्याख्यान गुरुदेव को याया कर्त्तव्यका उच्चार  
समर्पण । इति ।

प्रचार-कार्यके लिये उन्होंने भारतवर्ष तथा भारतके बाहरके प्रधान-प्रधान नगरों तथा-नीतिस्थानोंमें भगवत्कथाकांक्षान् मठोंकी स्थापना की है। इन सब मठोंका नाम भा दिया गया "गौड़ीय अस्पता" । शहरमें बहुतसे भगवद्गीता पुनः पुनः जन्म-सन्धुको प्राप्त करने हैं। ऐसे भगवत्बहिर्मुख्य लोग । पञ्च होत हैं, इसलिये उन लोगोंको हरिकथा मनाकर संसारमें मुक्त करनेके लिये उनका इलाज करनेके मतलबसे ही मठोंकी स्थापना की गई ।

मार्कॉत्तन प्रचारके नामसे वर्तमान वैज्ञानिक युगमें उन्होंने जिन सब श्रमोंको साधन बनाया है उनमेंसे मुद्रणयन्त्र अर्थात् छपाखाना ही प्रधान है । प्रचारकार्यके आरम्भ करनेके पहले उन्होंने इस मुद्रणयन्त्रको ही क्रांतिनके मुख्य अंगके रूपमें ग्रहणकर भक्तियन्त्रादिका छपाई शुरू की थी । इसका नाम दिया गया था--"बृहन् मृदंग । अर्थात्

साधारण मृदंगकी सहायताम कीर्तन होता है जो केवल निकटमें रहने वाले लोगोंकी ही सुनाई पड़ता है। किन्तु द्वापारयुगकी सहायताम प्रविर्वामें सर्वत्र पुस्तक तथा सामयिक पत्रादि द्वारा प्रचार भेजे जा सकते हैं। इसमें बहुत दूरमें अवस्थित व्यक्तियोंकी भी श्रवणका अवसर मिलता है।

कुरु आचार्य भगवत्के श्रेष्ठ व्यक्तियोंके पास नहीं जाना पसन्द करते थे। किन्तु इस आचार्यका उद्देश्य दुनियाके सभी लोगोंके निकट भगवत्कथाका कीर्तन करना था। यज्ञी, गरुड, अफपर, राजा, महाराजा, जो कोई उनका दर्शन करता था। उन सबके निकट ही हरिकीर्तनके लिये उनका अन्य उद्देश्य नहीं था।

उनके प्रचारका और एक तरीका था "सन शिखा प्रदर्शनी"। कुरुक्षेत्र, कलकत्ता, नवद्वीप-मायापुर, टाका, पटना काशी, इलाहाबाद प्रभृति स्थानोंमें कहीं पहीने तक कहीं पन्द्रह दिनों तक पारमार्थिक प्रदर्शनीमें शास्त्रिक गूढ़ तात्पर्य सरल रीतिमें समझानेका बन्दोबस्त किया गया था। पारमार्थिक आलापनाके लिये वैष्णव-सम्मिलन का अधिवेशन हुआ करता था।

भगवान्की जयन्ती तथा वैष्णव-आचार्योंके जन्मदिवसके उत्सवमें सम्मानित शिष्य तथा साधारण लोगोंकी निर्मात्रितकर भगवत्प्रसाद वांटने के बहानेसे भगवत्कथा प्रवणका मौका देना उनकी कृपाका एक और तरीका था।

विभिन्न शहरों तथा गांवोंमें प्रचारक भेजकर भगवत्कथाका प्रचार करवाना उनकी और एक विशेषता थी। श्रीगीमत् नित्यानन्द प्रभु तथा ठाकुर हरिदासने नवद्वीप में, और रूप-सनातनादिने ब्रज में, श्रीगीठाकुर नरोत्तम, श्रीनिवास आचार्य और

श्रीश्यामानन्द प्रभुन वगैरेश और उत्कलम प्रचार किया था। परन्तु इस महात्माने समस्त भारत तथा भारतके बाहर लण्डन जर्मनी, फ्रांस, अष्ट्रिया, तैकोश्लोभैकिया प्रभृति स्थानोंमें भी सनातनधर्मके प्रचारका बन्दोबस्त किया था। पश्चिमीय श्रेष्ठ धर्मयात्रकोंने भी सनातन धर्मकी श्रेष्ठताकी मान लिया था। भारत-मशिव महामन्य लार्ड जैटलैण्ड महादयने लण्डन-गौड़ीय मिशनके समर्पणका पद ग्रहणकर लण्डनमें विष्णु मन्दिर-प्रतिष्ठामें उपाह दिखलवाया था। उस समय कई स्थानोंके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके धर्मप्रचारकोंके प्रचारमें अवसर न मिलनेके कारण प्रचार करवानेका बन्दोबस्त भी दिखताई पड़ता है। परन्तु ये महात्मा ऐसे कार्यको सक्त रहित था होगा समझते तथा करते थे। ये बराबर कहा करते थे कि अपना भारी वक्त (Platform Speaker) अथवा व्यवसयी पुरोहित (Professional priest) कभी भी "गुरु" नहीं हो सकते। सुशुभद करने वाला व्यक्ति कभी प्रचारक नहीं बन सकता। व्यापारियोंमें सदा अवग रहना। भगवत् वाचक आठों पहलमेंसे आठों पहल भगवत् सेवा करता है कि नहीं यही देखना चाहिये।

इस महात्माने अपने शिष्योंके साथ भारतमें भ्रमण करते हुए भगवत्कथाका प्रचार किया था। इससे विभिन्न प्रदेशों के रहने वालेने उनके सम्मंग तथा कृपा की प्राप्ति की है। भिन्न भिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने उनके श्रीमुखारविन्दमें भगवत् कथा सुननेका मौका प्राप्त किया था। आहिंशियों विश्वविद्यालयके अध्यापक महादाम, ग्वेरेण्ड प्लानली जोन्स, अध्यापक डा० पि. जोन्स, डाक्टर मोंगोनो, डाक्टर प्लेला क्रैमरिस, सर मालकम हैली,

सर जान ऐण्डारसन प्रभृति उच्चपदस्थ सज्जनों को भी उन्होंने भगवत्वाणी सुनायी और ये सब व्यक्ति उनके अलौकिक चरित्रमें आकर्षित हुए थे।

आचार्य ठाकुरने विभिन्न तीर्थों तथा भगवद्धर्मों की परिक्रमाकी चाल चलाई है। उनमें प्रवर्तित की गई गौड़ मण्डल परिक्रमा एक अनोखा व्यापार और अनहोनी भक्त्योग है। पंदेशक जिन जिन स्थानोंमें श्रीचैतन्यदेवके पापदण्ड आश्रित हुए थे उन्होंने अपने शिष्योंको लेकर उन स्थानोंमें संकीर्तन और हरिकथाका प्रचार किया था।

श्रीधाम नवद्वीप (Nadwadi Bengal) कहा जाता है। परन्तु कालके प्रभावसे वहांका वह गौरव लुप्त हो गया था। इस आचार्यने वहां फिर विद्यापीठकी स्थापना की। परमार्थ अनुशीलनके लिये उपयुक्त कृष्णानुशीलनागार उच्च अंगरेजी स्कूल छात्रावास इत्यादिका भी प्रत्यष्ट की। भिन्न भिन्न भक्तोंके निवासस्थान धर्मशाला अस्पताल इलेक ट्रिक लाइट डाकघराने आदि कार्यों द्वारा नवद्वीपके लुप्त गौरवको पुनर्प्राप्त किया।

उनका दान पाथिव दान नहीं है। समस्त जगत् की बहिर्मुखता को हटाकर कृष्णभक्तिकी नींव देने के लिये ही उनकी यावनीय चेष्टायें थी। उनके कार्यों में पूर्व आचार्योंके कार्योंसे कुछ विशेषता लक्षित होनेपर भी उन सबोंके साथ एकता थी। उनलोगोंके चरित्र और वैभवको दुनियामें प्रचार करनेकी उनकी चेष्टा में उनकी और भी एक विशेषता है। उन्होंने श्रीगमानुज, मध्व, निम्बार्क विष्णुस्वामी, आचार्य शंकर तथा लिंगायत सम्प्रदाय के भिन्न २ आचार्योंके विषयमें तथ्य संग्रह करने के लिये यथेष्ट कष्ट उठाया था। अन्यान्य सम्प्रदायके आचार्य इनका साम्प्रदायिक वैभवज्ञान

देखकर आश्चर्यान्वित हो गये। परमेश्वर, श्री-रंगम्, उडपी, मलीमाबाद, अड़ावत, पाण्डुरपुर, नाथद्वार, नंजनगढ़ प्रभृति स्थानोंमें आपने जो तथ्य संग्रह किया उसे गौड़ीय साहित्यमें प्रकाशितकर जगतका बहुत ही उपकार किया। आपने श्रीरामानुज, मध्व, निम्बार्क, विष्णुस्वामी, शङ्कराचार्य, माणिक्य भास्कर, श्रीवल्लभाचार्य, श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्रीबलदेव विश्वभूषण प्रभृति आचार्योंके चरित्र साहित्यमें प्रकाशितकर गौड़ीय भिद्वान्तकी एक और विशेषत दिखलाई दी।

भारतमें दशनाम सन्यासी होने से सायावादी सन्यासी समझा जाता था, किन्तु आपने विष्णुस्वामी सम्प्रदायमें इसकी प्राचीनता दिखलाई है और शङ्कर-सन्यासी के साथ वैष्णव-सन्यासी का जो भेद है वह भी पकड़ किया है।

वेदान्त कहनेमें लोग शङ्करके मतवादको समझते थे। पर आपने वेदान्तका यथार्थ तात्पर्यके प्रचार द्वारा वेदान्तको वैष्णवधर्मका ही एकमात्र शास्त्र बतलाया है। वेदान्तके Ontology और morphology का विशेषता, भागवत और पंचरात्र का समन्वय और अन्यान्य धर्ममतमें अविद्यमान भेदाभेद भिद्वान्तकी विशेषता प्रदर्शनकी है और निर्विशेष ब्रह्मवादसे पंचोपासना, एकलवामुदेव, ( शक्तिशून्य वामुदेव, जो गीताके उपदेशक ) लक्ष्मीनारायण, मातागाम, द्वारकेश, मयुरेश तथा ब्रजेन्द्रनन्दनकी उपासनाका विशेषता और श्रेष्ठता बतलाई है।

• अन्याय धर्ममतवादके साथ सनातन वैष्णव-धर्मकी विशेषता कहां है आपने यह भी निर्भीक कण्ठसे कीर्तन किया है।

उनकी इन सब दशमयी बातों पर विचार

करनाम हृदयमें एक प्रभुवत् आनन्द तथा ज्ञानका  
संचार होगा । आरके इस करुणा धारामें स्नान  
करनेमें सारा पाप-द्वन्द्व नश्वर होयथा सफल प्राप्त  
कर सकेंगे ।

यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो  
यस्यः प्रसादान्न गतिः कुतोऽपि ।  
ध्यायन् स्तुवंस्तस्य यशस्त्रिमन्थं  
यन्दे गुरोः श्रावणं रविन्दम् ॥

## आश्रय

निराश्रय अचम्यारामें कोई रहने नहीं सकता ।  
अनेक जीव विना न निर्मीत आश्रित हैं । आश्रय  
ही प्रकारका है एक नित्य और दूसरा अनित्य ।  
जिस आश्रयकी नित्यता नहीं, वह प्रथम-स्वरूप  
प्रतीत होनेपर भी यथाश्रय आश्रय नहीं । अनित्य  
आश्रय यह समझ या यहाँकें समुद्र में पार नित्य  
आश्रय या चेतनके एकमात्र प्रबलरूपन जगदीश  
और जगदीशजननी । हम लोगोंके सहज बड़े जीव  
बलमान निश्चयकी अपेक्षा एकमात्र आश्रय समझ  
केवल विश्रुत हो जा रहे हैं । इस वाक्यमय प्रपञ्चमें  
कहाँ भी आश्रय नहीं । आश्रितों-  
वर्तीर्ण श्रीश्रीगुरुपादपदम श्रीगुरु-समुद्रमें एक-  
मात्र आश्रयस्थल है । ये सब समुद्रके एकमात्र कर्ण-  
धार हैं । उनके निवा और कोई सहाकर्ता नहीं ।

भगवान् ही सदाश्रय है । भगवान् के श्रीचरणोंमें  
ही आश्रय या शरण लेना होगा । उन्हीं की यह कह  
रहा है कि भगवच्छरण, भगवत्पाद, विष्णुपाद या  
आचार्यपाद ही सबोंके एकमात्र आश्रय हैं । श्री-  
श्रीगुरुपादपदम ही आश्रय विग्रह-जीवोंको आश्रय  
देनेके लिये आकृष्ट ही गुरुरूपमें अवतीर्ण होते  
हैं । इसी आश्रयविग्रहके श्रीचरणमें आश्रय लेने-  
की कथाका शब्दने तारस्वरसे कीर्तन किया है ।  
यह श्रीगुरुपादपदम-श्रीश्रीआचार्यपादपदम ही जीव  
की एकमात्र गति है । वे ही विश्वमें एकमात्र अनु-  
पद और उपपद करनेके अधिकारी हैं । ऐसा न हो

कि हम लोगों कि भी दिन इस आश्रयविग्रहकी कथा  
बनकर अन्यथा आश्रय करनेकी इतनामिनाया  
हृदयमें पोषण करे । ऐसा होनेपर हम लोगोंका  
मज्जलदार निरुद्ध रहेगा । श्रीगुरुपादपदममें सर्वोत्ति-  
मसाधन कला होगा, उनका एकनिष्ठ सेवक होना  
होगा, एक उन्हींके लिये ही जीवनधारण या कोई  
भी कार्य करना होगा । दूसरोंके साथ स्वतन्त्रभावसे  
इस लोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं । यदि ही वा वह  
न समझे सिवा और कुछ नहीं । मज्जलाकार ही  
जीव श्रीगुरुपादपदमक मज्जलके सिवा उनके निकट  
सर्वदा कृपाभिवाके सिवा और कुछ नहीं करते ।  
वे सभीको श्रीगुरुके स्वतन्त्रसे दशन करने और  
किमीके दिनात्म अपने लिये कुछ ग्रहण नहीं करते ।  
गुरुदास वैष्णव अपनेका सभी वस्तु और व्यक्तियों  
श्रीगुरुदेव-श्रीआचार्यके चरणमें समर्पण करने हैं ।  
श्रीआचार्यपादपदमके गुणकीर्तनके सिवा, सभीको  
आचार्यके चरणमें आकृष्ट करनेके सिवा, आचार्य-  
सेवक-गुरुसेवक-निनयान-दसेवक ही अन्य कोई  
अभिनाया वा कृत्य नहीं है । वेश्य नहीं गुरुगौर-  
कीर्तनमें अनन्तमुख हैं । यही उनका एकमात्र  
साधनेमजन है । गुरुदास वैष्णव कभी भी गुरुको  
धोखा देकर दूसरोंको अपनी सेवाने नियुक्त करने  
या निजानुगत करनेकी दुर्बुद्धि पोषण नहीं करते ।  
यही गुरुदासका वैशिष्ट्य और स्वरूप है । वे  
स्वयं मज्जलानन्द श्रीगुरुपादपदमके सम्पूर्ण अनुगत हैं

एवं दूसरे जिसमें आचार्यान्तगत या आचार्याश्रित होकर परम मङ्गललाभ कर सकें इसके लिये सर्वदा सम्पूर्ण चेष्टाविशिष्ट रहते हैं ।

श्रीगुरुपादपद्मका ही सर्वतोभावेन सर्वान्तःकरणसे आश्रय करना होगा । भगवान्की कृपामें गुरुदेवका सन्धान प्राप्त होगा । फिर गुरुदेवकी कृपामें निष्कण्टजीव गुरुदास वैष्णव और भगवान्का सन्धान प्राप्त करेगा । उस समय वैष्णवानुगम्यमें गुरुगौराङ्गकी सेवाका सौभाग्य पाकर, जीव कृतार्थ होगा । श्रीगुरुपादपद्म ही विश्वके एकमात्र रक्षक और पातक है । 'और रक्षा कर्त्ता नाई ए भव संसार' । जिसने प्रकृत आश्रय प्राप्त किया है, वह असहाय नहीं है । 'कृणु कृपा करिवेन दद करि जाने'— यही उसका दृढगत भाव है । पहले श्रीगुरुदेवके साथ सम्बन्ध हो, तब दूसरेके साथ सम्बन्ध होगा । श्रीगुरु या आचार्यको छोड़ जहां वैष्णव प्रीति की छलना है वह अमक्ति, अन्याभिलाष या कष्टता-जननीके सिवा और कुछ भी नहीं । पिता एकमात्र श्रीआचार्यदेव हैं । हमलोग सभी उन्हींके पाल्यपुत्र-शिष्य-सेवाभिगारी हैं । इस गुरुपिताके प्रति प्रीति हमारी अपेक्षा जिसकी अधिक है, आचार्य चरणमें जिसकी श्रद्धा अचला है, जिसका सङ्ग करने से गुरुपादपद्ममें विश्वास, निष्ठा, प्रीति बढ़े, उसके अनुसार अपनेसे श्रेष्ठ सज्जनोंका सङ्ग करना होगा । किन्तु जहां गुरुपादपद्मकी कोई कथा नहीं जहां माथाको छोड़कर माथाके व्यथार्थी कथा है, वहां मङ्गल नहीं होगा । मङ्गलमयकी कथा न सुननेमें, मङ्गलप्रदाताका सन्धान न पानेमें-किसी उपायसे जीवनयापन ही सार होगा । किसी उपायसे जीवन यापन करना बुद्धिमत्ताका परिचय नहीं । प्रति मुहूर्तमें सेवामय जीवनयापन ही जीवनका साफल्य

(सार्थकता) है । ये गुरु या आचार्य या आश्रयवस्तु श्रोत्रियानन्द हैं, दूसरे नहीं । वर्तमान गौड़ीय-मठाचार्य ही वह वस्तु हैं । इसीलिये कह रहा हूँ 'दद करी घर नित हर पाय' श्रीगुरुदेव परम करुणमय हैं उनकी कृपाकी सीमा नहीं । वे हमारे मङ्गल न चाहने पर भी हमलोगों का मङ्गल करने के लिये सर्वदा उद्युक्त रहते हैं । श्रीगुरुदेव की महिमा-कीर्तनमें हमलोगोंकी रुचि न रहनेपर भी आदरके साथ उनके गुण-महिमाका श्रवण करते ही उनके चरणमें हमलोगोंकी श्रद्धा या प्रीति होगी । हमलोगोंके निष्कण्ट होनेमें गुरुसेवकगण निश्चय ही हमलोगोंका गुरुसेवाका सन्धान देंगे, कितने स्नेह कीर्तन और आदरके साथ हमलोगोंको गुरुपादपद्मकी सेवामें नियुक्त कर श्रीगुरुकी प्रीतिकी विधान करेंगे । भूमिमें यदि कोई गुरुदास वैष्णवको एकमात्र आश्रय समझकर श्रीगुरुपादपद्मकी कथामें अलग रहना चाहे तो गुरुसेवक उसको यन्त्रके साथ श्रीगुरुपादपद्ममें आकृष्ट करते हैं । गुरुसेवक कभी भी किसीको अपना सेवक नहीं समझते उनकी सर्वत्र ही गुरुबुद्धि है । मैं सेवक हूँ-श्रीगुरुका नित्य अयोधय भृत्य । श्रीगुरु ही एकमात्र हमारे सेव्य एवं गुरुकेसेवक मृत्युमें गुरुसेवकगण हमारे पूज्य या सेव्य हैं यही गुरुदासका भाव है । इसी गुरुदाम्यमें उनके नित्य प्रतिष्ठित रहनेके कारण गुरुदासानुदासाभिमान ही उनका सम्बल (सर्वम्ब) है । यह वैष्णवी प्रतिष्ठा सभी की काम्य है । इसके अतिरिक्त इतर-कामना गुरुदासकी नहीं रहती । गुरुदास सर्वदा गुरुका ही सङ्ग करते हैं, गुरुके ही साथ रहते हैं । वे गुरुका सङ्ग छोड़कर एक मुहूर्त भी नहीं रह सकते । गुरुके लिये ही उनका सब कुछ है । गुरुकी सेवा ही उनकी सत्ता है । श्रीगुरुदेव समस्त (सभी)वस्तु और



व्यक्तिको भगवान्की सेवामें नियुक्त करने हैं और गुरुदाम वैष्णव सभीको गुरु सेवामें नियुक्त करने हैं। वे सर्वत्र गुरुका अवस्थान उपलब्ध करने हैं। गुरुके अभावान या अज्ञातरूपमें कुछ भी कार्य नहीं करने। वे जानते हैं कि अन्तर्यामी श्रीगुरुदेव सर्वत्र अवस्थानकर उनके प्रत्येक कार्यकलापको दर्शन कर रहे हैं, नवीन सेवाकी प्रेरणा कर रहे हैं और इज्जित कर रहे हैं।

उसका प्रत्येक कार्य श्रीगुरुको सन्तोष दे रहा है कि नहीं, यह वे सर्वदा सनकताके साथ लक्ष्य करने हैं। उनकी विपत्ति नहीं। इर्मालिये वे गुरुपादपद्म की चमत्कारी निम्न रहकर सेवानुमोक्षाचना हो सब एक सेवक विभार हैं, ये श्रीगुरुदाम श्रीग

रुपादपद्ममें जैसा प्रीतिविशिष्ट हैं, श्रीभगवान्में भी उनकी प्रीति बैसी ही है। गुरुमें प्रीति है किन्तु भगवान्में प्रीतिका अभाव—यह गुरुकी प्रीतिके नाम से कुछ दूसरा है। इसका कारण यह है कि गुरु और कृष्ण परमेश्वर अविच्छेद-सम्बन्ध विशिष्ट या अङ्गाङ्गीभावयुक्त हैं। मुताबिक एकको छोड़कर एककी सेवा नहीं होती। श्रीगुरुपादपद्ममें पूर्ण शरणागति का जो भाव है वही श्रीगुरुदास सम्बन्धमें भी चाहिये। नात्पर्य यह है कि गुरु, वैष्णव और भगवान् ये तीनों के प्रति प्रीति होना स्वाभाविक है। यही श्रद्धाभक्ति है। तब मूल (जड़) श्रीगुरुपादपद्म हैं। उसकी कृपासे ही सब कुछ होता है; नहीं तो सारी चेष्टा व्यर्थ है।

## परीक्षित (?)

महाराज युधिष्ठिरका कुरुक्षेत्रके युद्धमें विजय होने पर कृष्ण भगवान् युधिष्ठिरको राजगद्दीपर बिठाकर अपने धामकी ओर गमन करनेके लिये तैयार हुए। उस समय एक घटना हुई। महाराज परीक्षितकी माता उत्तरादेवी बहुत धवराई हुई भगवान्के चरणोंमें आ गिरीं। कारण पृथ्वी पर बतलाया कि एक उवलन्त अस्त्र उनकी ओर आ रहा है। भगवान्ने समझा कि अश्वत्थामाने पाण्डवों के कुल का नाश करनेके लिये एक ब्रह्मास्त्र छोड़ा है। भगवान्ने तुरत उत्तराके गर्भमें प्रवेश कर मुद्रा-अस्त्रमें ब्रह्मास्त्रको रोक दिया। उस समय परीक्षितकी भगवान्के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। परम पुरुषका वह सुन्दर रूप देखते हुए परीक्षितनै सोचा—ये सुन्दर-मूर्तिवाले पुरुष कौन हैं? देखते देखते ही भगवान् अन्तर्धान हो गये। उसके बाद

सम कालमें मनुकूल ग्रहोंके सम्मिलित होने पर महाराज परीक्षित भूमिष्ठ हुए। धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंके द्वारा बालकका जातकर्म करवाया और उनलोगोंको बहुमूल्य सामग्रियां भेंटकीं। ब्राह्मण-लोगोंने सहर्ष कहा है महाराज! आपके इस वंशधरके दैवान नाश होनेपर भी आपके प्रति अनुग्रह प्रकाश कर नागायणने इसको फिर लौटा दिया। इस बालकके भगवान्से रक्षित होनेकी वजहसे इसका नाम हुआ विष्णुगुप्त। यह महात्मा, वैष्णवोचित और अन्य बहुतोंके गुणों में युक्त पुरुष होगा। यह मनुपुत्र इन्द्राकुके समान प्रजारक्षक, श्री रामचन्द्रके बराबर प्रजा हतकारी और सत्यप्रतिज्ञ होगा। यह शिवराजाके तुल्य वदान्य और शरणागत पात्रक, महावीर धनंजय और कार्तवीर्यके समान धनधारियोंमें श्रेष्ठ तथा दुर्गोच्य होगा।

यह बालक सिद्धके समान शक्तिशाली, हिमालयका माधुओंकी अनन्यगति, पृथ्वीके समान क्षमाशील थीरतामें बलिराजाके तुल्य और लक्ष्मीपति नारायण के समान बगवत् सकल प्राणियों का अवलम्ब होगा। यह जन्मेजय राजर्षिका जन्मदाता, असत्मार्ग में गमन शील व्यक्तियोंका शासनकर्ता और बलिवा दण्डदाता होगा। पश्चात् शमीके पुत्र शृंगके भेजे हुए तत्काल नामसे अपना विनाश जानकर विषयमें विरक्त हो श्रीहरिके श्रीचरणमें परान्त भजनशील होगा और व्यासपुत्र शृंगदत्तके-मुखागबिन्दसे परमार्थ तत्त्व सुनकर भगवच्चरणकमलको प्राप्त करेगा।

यह बालक, जन्मपदम करनेके उपरान्त, मातृगर्भमें दर्शन दिये हुए परम पुरुष भगवानका ध्यान करने करते, संसारमें जिमाजिम प्राणीका देखता था। उन सबकी ही परीक्षा करता था कि “यह तो यही सुन्दर पुरुष है? इसलिये उसका नाम हुआ पराक्षित। वह बालकपनमें ही महाभक्त और सबजन-हितकारी हुआ।

महाराज युधिष्ठिर कलिकाल के समागम समझकर और परीक्षित को राज्य सौंप कर भगवच्चरणकमल का ध्यान करते हुए उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। उनके भ्रातृगण भी उन्हींका अनुगमन किया।

महाराज परीक्षितने उत्तरकी कन्या इरावतीमें विवाह किया और ब्राह्मणोंके उपदेशसे राज्यका संचालन आरम्भ किया। उन्होंने तीन अश्वमेध-यज्ञ का अनुष्ठान किया जिसमें देवताओंने प्रत्यक्ष रूपसे दर्शन दिया था और भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तर कुरु तथा किम्पुरुष वर्षा के राजाओं को जीतकर कर ग्रहण किया। उन सब स्थानोंमें भगवान् कृष्णचन्द्रके माहात्म्यके साथ अपने पूर्व पुरुष

पाण्डवोंकी महिमा सुनकर बहुत ही हर्षित हुआ। जिन भगवान् कृष्णचन्द्रके पृथ्वीके समस्त जीव प्रणाम करते हैं, उन्होंने ही पाण्डवों का सारथी, पार्षद, सभापति, सखा, द्वारपाल इत्यादि बन कर उनकी विविध सेवा की। यह सब बातें सुनकर भगवच्चरणकमलमें परीक्षित महाराजकी अत्यन्त भक्तिका उदय हुआ।

इसी समय एक घटना परीक्षितके कर्णगोचर हुई। बैलरूपा धर्मने एक चरणमें टहलते टहलते गो-रूपिणी पृथ्वीको रोती हुई देखकर पूछा—हे पृथ्वी! क्या तुम्हारे शरीरका कुशल है। तुममें किसी बीमारीका लक्षण नहीं देख पड़ता परन्तु मलिन मुखकान्ति देख कर यह समझ पड़ता है कि तुम्हारे हृदयमें कुछ कष्ट है। क्या तुम्हें किसी दुरस्थित मित्रके लिये शोक है अथवा मेरा तीन चरण शून्यभाव देखकर ही यह कष्ट है? कल्पमें शूद्र राजा तुम्हारे ऊपर आधिपत्यका विस्तार करेंगे यह जान दुःख होता है। आजकल पतिलांग स्त्रियों का और पितृगण संतानोंकी रक्षा नहीं करते हैं। बल्कि राजाओंके समान व्यवहार करते हैं। सरस्वती देवी सदाचारहीन ब्राह्मणोंकी सेवा करती हैं तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग विप्रद्रुपी ऋत्रियोंके सेवक बन गये—क्या यही तुम्हारी तंक्तीफकी वजह है? कलि द्वारा आक्रान्त अधम क्षत्रियगण भविष्यमें राज्यका नाश करेंगे अथवा प्रजागण शास्त्रकी आज्ञा न सुनकर अपनी अपनी इच्छाके अनुसार पान, भोजन, अवस्थान, स्त्रीसंगादी करते हैं, यही एक दुःख का कारण है? हे धर्मिणि! जिन भगवान् श्रीहरिने तुम्हारे प्रबल भार हटानेके लिये अवतीर्ण हैं अनेक आनन्दप्रद लीलायें की थीं वे ही भगवान् अन्तर्धान कर चुके

क्या तुम इमीलिये गोचरही हो ? पहिले तुम्हारा जो सौभाग्य था, क्या कालने उसको हरण कर लिया ?

धर्मगाने कहा - हे धर्म ! सत्य, शौच, दया, त्याग, मरुतता, शम, दम, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, जेश्वर्य इत्यादि महान् गुणोंके निम्न आश्रय भगवान् श्रीहरि ने इस मृगलोकाको त्यागा, इसी कारण मैं शोचकर रही हूँ। आपकी, मेरी, तथा देवतागण पितृगणमाधुगण ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंकी वृत्ति दशा देखकर मैं दुःखित हूँ। ब्रह्मादि देवोंने जिन कमलकी कीर्ति कृपाके लिये बहुत दिन तपस्याकी थी वही लक्ष्मीजी अपना निवास-स्थान कमलवन छोड़कर जिस कृष्ण भगवान् के श्रीचरण कमलकी सेवा अनुराग-सहित करती हैं, उन भगवान् के श्रीचरणविन्द के विचित्र चिन्हमें मैं शोभायुक्त थी, शायद उसमें मेरा गर्व हुआ था। उर्मागर्वके नाश करनेके लिये ही श्रीकृष्णने मुझे छोड़कर अपने धामकी ओर पधारा है। मेरे शोकका कारण यही है। मेरे हजारों अमृतराजासे पीड़ित होनेसे जिन भगवान् ने अमृगोंका विनाशकर मेरा बॉम्ब हटाया, यदुकुल में जन्म लेकर आपको भी रक्षा की जिनका प्रेमपूर्ण दृष्टिमें सत्यमामा आदि कामिनियां अपनी अपनी धीरता और अभिमान ग्वा बैठी थी, जिनके चरण स्पर्शसे मुझेभी अत्यन्त आनन्द का अनुभव होता था, उनकी विरह कौन सहन कर सकता है ? उन दोनोंमें ऐसा वार्त्तालाप होता था इसी मौके पर परीक्षित महाराज कुरुक्षेत्रके समीप सरस्वती के किनारे आ पहुँचे।

महाराजने वहाँ देखा कि एक शूद्र राजा एक गाय और एक बैलका दण्डसे ताड़ना कर रहा है। बैल डरके मार एक पैरके ऊपर खड़ा हो बीच

वी में पेशाब करता है और गाय अत्यन्त कातर हो घास खानेकी इच्छा करती है। महाराजने ऐसी दशा देखकर बहुत ही क्रोधसे धनुषबाण लेकर गम्भीर स्वरसे पृच्छा--अरे तू कौन है ? तेरी इतनी शक्ति है कि तू मेरे शरणागत दुर्बल प्राणी की हिंसा करता है, तेरा वेप राजाका है किन्तु तेरा कार्य तुझे शूद्र बनलाता है। भगवान् कृष्णचन्द्रके गोण्डीवधारी अर्जुनके साथ पृथ्वी त्यागनेके कारण ही क्या तेरी ऐसी हिंमत हुई है ? इसलिये तुम्हें दण्ड देना मुनासिब समझता हूँ।

तत्पश्चात् बैलसे कहा--तुम कौन हो ? तुम्हारा वर्ण मृगालके समानशुभ्र है। क्या तुम कोई देवता हो ? वृषरूप धारण करके मुझे टगते हो। कौंगव श्रेष्ठ वर्गोंके द्वारा इस राज्यमें तुम्हारे सिवा और किसीको राने नहीं देना। तुम्हें घबरानेकी आवश्यकता नहीं है।

इसके बाद गायसे कहा - हे माता। तुम्हारे राने की भी जरूरत नहीं है। मैं दुष्टों का शासन कर्ता वर्तमान हूँ। मेरे रहने तुम्हारा मंगल अवश्य ही होगा। जिनके राज्यमें प्रजालोग असत व्यक्ति के द्वारा पीड़ित होते हैं इस दुराचारी राजाकी आयु, परलोकादि सभी नष्ट हो जाते हैं।

पीड़ितोंका कष्ट हटाना ही राजाका परम धर्म है। अतएव मैं इस असाधु श्रेष्ठ शूद्रका विनाश करूँगा। हे सुरभीनन्दन ! तुम चतुष्पद हो। तुम्हारे और तीन पाँव किसने काट डाले। श्री कृष्णके अनुयायी पाण्डवोंके राज्य में तुम्हारे समान कष्ट और किसी ने नहीं उठाया। हे वृष ! मुझे बताओ किस व्यक्तिने पाण्डवोंकी कीर्ति कलुषित की है जो निरपराध व्यक्तियों तकलीफ देता है। मुझसे उसका भय अवश्य ही है। दुष्टोंके दमनसे ही साधु

ओं का संगल होता है। जिस दुर्बुत्तने निर्दोष जीवोंकी हिंसा की है उसे देवता होने पर भी मैं-सजा दूंगा। जो लोग शास्त्रके अनुसार धर्मका पालन करते हैं उनलोगोंका पालन करना और जो शास्त्रकी आज्ञा लंघन करते हुए स्वतन्त्र भावसे कार्य करना है उसका शासन करना ही राजा का परम धर्म है।

धर्मके कहा-हे महाराज ! जिस वंशके गुणों से आकर्षित हो कृष्ण भगवान्ने अपनी इच्छामें दत्तोंका कार्य करना स्वीकार कर लिया था, उन पाण्डवोंके वंशधर आपकी ये बातें मुनासब हैं पर किममें प्राणियों का क्लेश होता है वह वाक्य भेदमें समझा नहीं जा सकता। किसी किसी का कथन है कि भेदके अवस्थानके कारण क्लेश होता है, भेद ही सत्य-वस्तुका आच्छादित कर । है। योगी कहते हैं कि आत्मा ही आत्मा का प्रभु है। वह भगवान से स्वतंत्र होने की वजह सुख या दुःख प्राप्त करता है। अद्वैतवादियोंके विचारमें द्वैत वस्तु मिथ्या होनेके कारण, सुख दुःखकी बिल्कुल उत्पत्ति नहीं मानी जाती। वेदके आश्रयमें ही इन सब मतोंकी सृष्टि हुई है। अवैदिक मत में भी मालूम होता है कि ग्रह, नक्षत्रादि ही सुख दुःखके कारण हैं। पूर्व मीमांसाकार जैमिनीके अनुसार जीवके द्वारा अनुष्ठित धर्म को ही कारण समझा जाता है। नास्तिक चार्वाक आदि स्वभावका ही कारण निर्णय करते हैं। सांख्यवादियों की विचारधारा दूसरी ही है। कोई कहता है कि वचन और मनके अतीत भी अनिर्दिष्ट कारण है जिससे इन की उत्पत्ति होती है। अतएव हे वैष्णवराज आपही कृपाकर अपनी बुद्धिसे इसका विचार कीजिये। धर्मकी बातें सुनकर सम्राट परीक्षित ने विशेष

ध्यानमें सोच कर कहा - हे धर्मज्ञ ! धर्मशास्त्रमें कहते हैं कि अधार्मिक तथा पापिण्टकी जो लोक में गति होती है अधर्मका बताने वालोंका भी उसी स्थानमें जाना पड़ता है। इसी लिये अपने अनिष्टकारीको जान बूझकर भी नहीं बता रहे हैं। सुतरा आप स्वयं ही धर्म हैं और वृष का रूप धारण किया है। किम्बा देवी मायाकी गति जीवोंको अन्विष्टातीत है सत्य युगमें सत्य, तपस्या, शौच और धर्म इन चार वस्तुओं में आपके चार चरण पूर्ण थे अब कलिके प्रभावसे तीन पांच नष्ट हो गये अर्थात् तपस्या, शौच और धर्म ये तीन वस्तुएं नष्ट हो गईं। जो चरण बाकी है, वह है सत्य। अधर्मरूपी कलि उसका भी नाश करना चाहता है। ये गौरूपिणी पृथ्वी हैं, ब्राह्मणोंके अनहितकारी शूद्र लोग उनका सम्भोग करेंगे इसी कारण यह पृथ्वी सोच रही है। ऐसा कहते हुए धर्म और पृथ्वी को आश्वासन देकर महाराजने कलिको काटनेके लिये अस्त्रधारण किया। कलि परीक्षित को मुस्तेद देखकर राजवंश छोड़कर महाराजके चरणों में गिर पड़ा। दीनवत्सन शरणागतपालक महाराज परीक्षित कलिको पैरोंमें पतित देखकर उसके विनाशसे निवृत्त हो उससे बोले हे कलि ! गुडाकेश अर्जुनके वंशधरोंके निकट अजलिबद्ध होनेसे किसीका और भय नहीं रहता। पर तुम मेरे राज्यमें कहीं भी ठहर नहीं सकोगे। तुम अधर्म के प्रधान सहचर हो। तुम्हारे राज शरीरमें वर्तमान रहने में तुम्हारे पश्चात् लोभ, मिथ्या, चोरी, दुष्टता, स्वधर्मत्याग, अलक्ष्मी कपटता, भगड़ा, दम्भ प्रभृति अधर्म सकल आ उपस्थित होते हैं। सुतरां हे अधर्मबन्धु, जहां धर्म और सत्यको रहना चाहिए, जहां याज्ञिक ब्राह्मण सदा यज्ञ द्वारा यज्ञेश्वर विष्णुकी पूजा करते हैं, और जहां सचल तथा अचलोंके आत्मा याज्ञिक

गणके मंगलका विधान करने दे, उस ब्रह्मावत प्रदेशमें तुम ठहरनेके योग्य न हो । महाराज की ऐसी आज्ञा होने पर कलिते क्षिप्त हो गए, कहा,— हे मायामोम ! आप पृथ्वीके एकमात्र सम्राट हैं । सुतराम् मैं जहाँ निवास करनेकी इच्छा करूँगा वहाँ आपके आसनगण्डका मेरे विषे नै पार देगुँगा । अब आप ही कृपाकर मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं कहाँ ठहरूँ । कलिकी पर प्रार्थना पुनः कर परीक्षितने उसे चार स्थान ही निर्दिष्ट कर दिया । [१] वृत्कीड़ा, [२] पान, [३] म्नासंग और [४] प्राणिहिंसा । वृत्कीड़ा करनेसे नाम, पाशा, जया धुइदाइ, इत्यादि प्रकार खेलोंको समझना चाहिये । ये सब खेल विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारके हैं । 'पान' कहनेसे नशीला चीज समझी जाती है । पान, तम्बाकू, बीड़ी, गिगरिट, चा, अफीम, गाजा, भांग, शराब, इत्यादि 'पान' में गिने जाते हैं । इनमें चित्त चंचल होता है । जो धार्मिक होना चाहते हैं उनको इन चीजोंसे पृथक् रहना चाहिये । म्नासंग दो किस्म का है अपना म्नामें अन्यन्त आसक्ति और असती म्नाका संग करना । जिन जिन सम्प्रदायोंमें ये सब व्यापार चलते हैं, वहाँ कलि विगजता है, सुतराम् उन स्थानोंमें धर्मका लेश भी नहीं है । प्राणिहिंसाको 'मना' भी कहते हैं । जो व्यक्ति भगवत् भजन करते हैं वही इससे स्वतन्त्र रहते हैं । कारण कि उनकी हरेक चेष्टा भगवत्सेवाके लिये ही है । हरिसेवाविमुख जीव क्षण क्षणमें जीवहिंसा करते हैं । कर्मकाण्डके प्रायश्चित्तमें पंचमृताके निवारणके लिये पंच यज्ञकी व्यवस्था है । उसमें पापबीजका नाश नहीं होता । भाणिहिंसा बहुत किस्मकी है । अपने शरीरको पुष्ट करनेके लिये दूध-प्राणीकी हत्या करनेसे हिंसा

होती है । उस जन्म में जिसको बंध किया जाता है वह दूसरे जन्म में उसका बदला लेता है अर्थात् बंधकारको बंध करता है । केवल अपने हाथसे बंध करने से ही हिंसा समझी जाती है, ऐसा नहीं । बल्कि मनुसंहितामें यह भी कहा है कि

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।

संस्कर्ता चोपहर्ता च ग्वादकाश्चेति वातकाः ॥

जो आज्ञा देता है जो मांसका विभाग करता है, जो स्वयं हत्या करता है, जो खरीदता है, जो परोपकार है और जो भोजन करता है—इन सब व्यक्तियोंको वातक या हत्याकारी समझना चाहिये । कर्मकाण्डमें जो यज्ञादि कार्यमें पशुहिंसा की व्यवस्था है, वह केवल प्रवृत्ति मार्गके व्यक्तियों निवृत्तिमार्ग में ले जानेके लिये ही है ।

उपयुक्त चार स्थान प्राप्त करने पर भी कलिते फिर एक स्थान मांगा जहाँ इन चारों वस्तुओंका निवास हो सके । उसकी प्रार्थनाके अनुसार पुनश्च महाराजने अर्थको भी दे दिया । उर्मा में मिथ्या अहंकार, काम, हिंसा, क्रोध आदिका निवास है । सुतराम् जो व्यक्ति अपनी उन्नति चाहता है, वह इन सब स्थानोंमें कभी नहीं रहेगा । विशेषतः धार्मिक व्यक्ति, राजा, मुखिया, गुरु प्रभृतिको इससे सर्वदा हुशियार रहना चाहिये । इसके उपरान्त महाराज परीक्षितने वृष के चारों चरणोंको संयुक्त कर दिया और पृथ्वीको मधुर वचन से आश्वासन दिया । जिस दिन कृष्ण भगवान्ने इस पृथ्वीको त्यागा उर्मा दिनसे कलिते पृथ्वी पर अपना आसन जमा लिया । सम्राट परीक्षितने कलिको बिलकुल नष्ट नहीं किया । कारण, वे सारग्राही थे । उन्होंने देखा कि कलियुगमें केवल नाम संकीर्तनसे मनुष्य समस्त पापों का नाश करके परमपुरुषको प्राप्त कर सकता है । बालकोंके पास ही जिसकी वीरता है, और साधुओंको देखनेसे ही जो डर । उसका अवस्थानसे कुछ भय नहीं है ।

## शरणागति

साधक-जीवनकी प्रथम एवं प्रधान आवश्यकता शरणागति है। भजन-राज्यमें प्रवेशके साथ ही प्राथमिक शिक्षाके सदृश इस बातकी शिक्षा दी जाती है एवं सिद्ध अथवा प्रयोजन (भगवद् प्रेम) प्राप्त होने तक तथा उसके उपरान्त भी शरणागति ही एकमात्र वरणीय वस्तु है। यह शिक्षा जो जितना ग्रहण कर सकते हैं अर्थात् जितना शरणागत हो सकते हैं भजन-पथमें क्रमशः वे उतनीही उन्नति कर सकते हैं। शरणागत नहीं होनेसे भजन-राज्यमें प्रवेशाधिकार नहीं होता। दाम्भिकताके अवलम्बन करनेसे भजनराज्यमें प्रवेश तो दूरकी बात रही, भजनराज्यका अनुसन्धान भी नहीं मिलता। एकान्त शरणागत जन ही साधकजीवनका परम प्रयोजन कृष्ण चरणारविन्द प्राप्त कर सकते हैं, दूसरों के लिये यह सम्भव नहीं है। यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि किसका शरणापन्न होना चाहिये ?

उसका उत्तर यह है कि कृष्णके जो पूर्ण शरणागत हैं, सौ हिस्सेमें सौ हिस्सा कृष्णका प्रसन्नताके कार्योंमें तत्पर हैं, अपने किसी सुख सुविधा वा लाभ की आशासे नहीं, कृष्णके सुखके लिये वा सेवाके उद्देश्यसे ही सेवा करना सेवकका एकमात्र कर्तव्य है, यह जानकर जो सेवा करते हैं, वे ही सच्चे शरणागत साधु हैं। जो पूर्ण शरणागत हैं, एकमात्र वे ही शरणागतिके शिक्षक हो सकते हैं। उसी शरणागत साधुका अनुगत [अश्रित] होना पड़ेगा। कारण, हमलोगोंका साधन कृष्णप्रातिविधान करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये है। जो इस कार्यमें तत्पर हैं—वेही उसकी योग्यता दे सकते हैं, यह और किसीके लिये सध्य नहीं है। इसप्रकार के

शरणागत साधु ही श्रीगुरुदेव वा श्रीआचार्यदेव हैं। श्रीआचार्यदेव जगद्गुरु हैं और उन्होंने शरणागतिके शिक्षारूप से जो आदर्श जगत्में स्थापित किया है उस आदर्शको शरीर मन तथा वचन द्वारा अनुसरण करने से ही पतित जीवोंके समस्त अमंगल दूर हो जायेंगे।। सर्वस्व समर्पण करके जो कृष्णके हो गये हैं कृष्ण को छोड़कर जिनको और किसी विषयकी चिन्ता नहीं है, उन कृष्णभक्तोंका शरणागत होनेके लिये सम्पूर्णरूपसे उनकी बाग्याका अनुसरण करना होगा (अर्थात् उनके उपदेशानुसार चलना होगा)। बाग्याको छोड़ देनेसे उनका वास्तवरूपसे अनुसरण नहीं हो सकेगा। वास्तव रूपसे अनुसरण नहीं करने से अनुगत होना सम्भव नहीं होगा।। मुतरां श्रीआचार्यदेवके सहित समचित्तवृत्त विशिष्टता (एक ही प्रकारका चित्त धृतिका होना) उनके आचार प्रचारका वास्तविक अनुगमन, उनके अनुग्रह निग्रहका (ताड़ना) समभावसे ग्रहण करना, अपनी निष्कट आर्ति, दैन्यांतिक, अपनी अयोग्यताका ज्ञानकर सेवा प्रार्थना, और उनकी कृपा बिना अपने अथवा दूसरोंकी चेष्टा द्वारा कुछ लाभ नहीं होता—इस प्रकारका पूर्ण निर्भरता को अनुसरणकारीका लक्षण है। जो इस प्रकार की अवस्था में प्रविष्टित हुए हैं, उन्होंने सर्वरूपसे आनुगत्य भोक्तार किया है। पूर्ण शरणागत नहीं होनेसे भजन आरम्भ ही नहीं होगा, हरि नामके बदले नामापराध होगा।

• अनुगत होना ही वैष्णव धर्मका मूल उपदेश है। मुतरां श्री गुरु वैष्णवकी सेवाप्रति की थोड़ा। • सौ आकांक्षा यदि हृदयमें उदित हो

नो अपनेको सम्पूर्णरूपसे उनके चरणारविन्दमें नहीं समर्पण करनेमें कभी भी संवालाभ नहीं होगा। वर्तमान समयमें हमलोग जैसे अनुगत हैं उसमें नित्यमङ्गलकी आशा अत्यन्त दूर है। मायाका दाम्बव करके सम्पूर्णरूपसे मायाका ही आनुगत्य हमलोगों ने स्वीकार किया है। यद्यपि हमलोगोंमेंसे कुछ लोग मुख्यमें अपनेको अनुगत कहकर परिश्रय देने हैं तथापि निष्कपट होकर विचार करनेमें ही मालूम हो जाता है कि हम किस प्रमाणमें शरणार्थ हो सके हैं। स्वतन्त्र जीवन यापन अर्थात् आनुगत्य स्वीकार नहीं करनेका ऐसा नीति आकाङ्क्षा क्यों देखनेमें आती है? मुख्यमें अनुगतता अभिनय करके हृदय की गुफामें स्वतन्त्र जीवन-यापन करनेकी आकाङ्क्षा का मूल कारण हमलोगोंकी दुर्दमनीय भोग प्रवृत्ति है। यह विरूपका (कुम्भित, कुरूपका) धर्म है-- इस धर्म में स्वभावका विकृत (मर्गान) प्रति-

फलन (प्रतिबिम्बन) होता है। जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्ब देखने में स्वाभाविक अवस्थाके विपरीतका दर्शन होता है, उसी प्रकार हमलोगोंके सच्चे स्वभावका विपर्यय होनेमें हमलोगोंकी प्रत्येक धारणा कार्य, चेष्टा तथा चिन्ता स्वतः, विपरीत भावकी देखी जाती है। भोक्ताके अभिमानमें (अर्थात् मैं भोग करूँगा इस विचार में) प्रभुत्व की कामना प्रति अगुपरमागुमें घुसा हुआ है। समारको दिखलानेके लिये अनुगतता अभिनय, इसी कारण अधिक दिन तक नहीं ठहरता है, कुछ दिन तक गुप्त रहकर मुविधा पानेमें ही प्रभुत्व करनेकी इच्छा फिर पूर्णरूपसे हृदयमें जागृत हो जाती है। विकृत स्वभावमें उत्पन्न ऐसी रुचिका अपने सब स्वभावमें फिरोकर लाने के लिये आनुगत्य स्वीकार करने अर्थात् श्रेष्ठ साधुका दाम हो जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। (क्रमशः)

### विविध-संवाद

गत ५ तथा ६ मार्चकी श्रीगौड़ीय मठ, बन्वड़ेके प्रेमियोंन महाप्रभु श्री कृष्णचैतन्यके आविर्भावकी तिथिका उत्सव कल्याण दाम विन्डिङ्गन, गोवालिया टैंक स्थित श्रीगौड़ीय मठमें बहुत ही समारोहके साथ मनाया। उस रोज पूजा अर्चा सेवा कथा व्याख्यान नाम संकीर्तन, महाप्रसादका वितरण इत्यादि हुआ।

५ मार्चको श्रीमत्समूहप्रभुके आविर्भावकी तिथिके दिन, मठके ब्रह्मचारियोंने आरती इत्यादिके बाद विधिपूर्वक नाम-संकीर्तन किया। उसके बाद एक ब्रह्मचारीने अंगरेजीमें उस तिथीकी महत्ता पर भाषण दिया जिसके अन्तमें महामन्त्रका कीर्तन हुआ। तदनन्तर श्री चैतन्यभागवतका पाठ हुआ। सन्ध्या ६। बजे नामसंकीर्तनके बाद सन्ध्यारतीकी गई। सन्ध्यारतीके बाद श्रीपाद राधवचैतन्य ब्रह्मचारी

तथा अन्य ब्रह्मचारियोंने अंगरेजी, गुजराती तथा हिन्दीमें श्री चैतन्य महाप्रभुकी जीवनीका वर्णन किया। तत्पश्चात् महामन्त्रका कीर्तन हुआ। उसके बाद महाप्रसादका वितरण किया गया।

६ मार्चको ९ बजेसे ३ बजे तक करीब ४०० भक्त लोंगोंको अनेक प्रकारके प्रसाद वितरण किये गये। पंचमुखी मन्दिर, भुवनेश्वरके महन्त श्री नरसिंहदामजी महाराजने प्रसाद वितरण का स्वर्च दिया। महन्त जी ने इस सुकार्जमें बहुत उत्साह दिखलाया तथा भविष्यमें भी यथा शक्ति श्रीगौड़ीय मठकी सहायता करना स्वीकार किया। ये उत्सव बहुत ही समारोहके साथ सम्पन्न हुये।

# SREE KRISHNA CHAITANYA

By PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Paramahansa Srimad Bhakti Siddhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/-, Foreign 21s nett.

To be had at **SREE GAUDIYA MATH**, Baghbazar, Calcutta.

## SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Siddhanta Saraswati Goswami

First class calico binding—Rs. 2-8-0.

## RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace—Ans. 0-6-0

**A few words on Vedanta** by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

**The Vedanta** its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

## THE BHAGBAT

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Sula Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick paper bound—Twelve Ans.

( बंगला में )

### श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत, मूल, श्रीमन्मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथा व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है। भिन्ना प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ९) मात्र।

### श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनाद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं। श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पंखारके पूर्व संक्षिप्त अभिवेय संयोजित है। प्रत्येक अध्याय के आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पंखार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृद्ध सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी-समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ-साथ अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न है। भिन्ना बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

### श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गोड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आख्यान—छाउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १३४० पृष्ठ भिन्ना—६) मात्र ( बिना बंधा हुआ)।



## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशमें परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीप-का परिचय व तन्मध्य और प्रसारणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्ति, साधारण व्याक्ति व विद्यालयके छात्र-सर्भोंके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिन्ना १)।  
प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पाँच बागवाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पाँच बागवाड़ी, ढाका।

### सगम्बती जयश्री

गाड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सगम्बतीगोस्वामी प्रभुपादका भुवन-के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मलसर शद्धभक्ति पिपामु व्याक्ति इस ग्रन्थके पाठमें युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजा आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपमें मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिन्ना ४)।

### ‘सामयिक-संख्या’—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ाष्ट अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों-की गवेषणापूर्ण प्रबन्धमें सुसज्जित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिन्ना ॥) आना।

### ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिन्ना ॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागवाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

### अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक आधिकरणका तानपय श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बगभाषामें सर्वप्रथम संस्कारण। पहले प्रति अध्यायके प्रतिपादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेंद्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तानपय इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिन्ना २) मात्र।

Printed by:— Brajeshwari Prasad, at The ‘Indian Nation Press’  
and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

५ मधुसूदन  
गौराङ्ग  
४५३

वैशाख कृष्ण ५  
मंथन  
१९६६ वि०

स वै पुंसां परां धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रियज्ञानार्थी श्रीकृष्णमें श्रवणदि-लक्षणा फलान्वितमन्थन रहता, वृत्तान्तकी  
स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होनी है, वही मानव ज्ञानिमा सर्वश्रेष्ठ धर्म है -  
यही भक्तिसे बलमे अनर्थ शमन होत पर आत्मा परमस्वतन्त्रता प्राप्त करती है ।

प्रति संख्या १) सम्पादक-पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री वापिक ॥

Editor:— Pundit Sripad Rupbilas-Brahmachari, Bhaktishastrer B.A.

| विषय                           | पृष्ठोंक | प्रिय | प्रा० |
|--------------------------------|----------|-------|-------|
| श्रीश्री महाप्रभु का जीवन चरित | १५       | १५    | ४५    |
| श्रीश्री महाप्रभु का जीवन चरित | १५       | १५    | ४६    |
| श्रीश्री महाप्रभु का जीवन चरित | १५       | १५    | ४७    |

## Free Chaitanya Mahaprabhu

The teachings and character traits of Free Manmahaprabhu have been described in this book. It has been written by Tridandi Swami, Sr. and Chaitanya Mahaprabhu. Price Rs. 1/-  
 Published by: Sri Chaitanya Mahaprabhu, Bhakti Bhawan,  
 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84, 85, 86, 87, 88, 89, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 103, 104, 105, 106, 107, 108, 109, 110, 111, 112, 113, 114, 115, 116, 117, 118, 119, 120, 121, 122, 123, 124, 125, 126, 127, 128, 129, 130, 131, 132, 133, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 140, 141, 142, 143, 144, 145, 146, 147, 148, 149, 150, 151, 152, 153, 154, 155, 156, 157, 158, 159, 160, 161, 162, 163, 164, 165, 166, 167, 168, 169, 170, 171, 172, 173, 174, 175, 176, 177, 178, 179, 180, 181, 182, 183, 184, 185, 186, 187, 188, 189, 190, 191, 192, 193, 194, 195, 196, 197, 198, 199, 200, 201, 202, 203, 204, 205, 206, 207, 208, 209, 210, 211, 212, 213, 214, 215, 216, 217, 218, 219, 220, 221, 222, 223, 224, 225, 226, 227, 228, 229, 230, 231, 232, 233, 234, 235, 236, 237, 238, 239, 240, 241, 242, 243, 244, 245, 246, 247, 248, 249, 250, 251, 252, 253, 254, 255, 256, 257, 258, 259, 260, 261, 262, 263, 264, 265, 266, 267, 268, 269, 270, 271, 272, 273, 274, 275, 276, 277, 278, 279, 280, 281, 282, 283, 284, 285, 286, 287, 288, 289, 290, 291, 292, 293, 294, 295, 296, 297, 298, 299, 300, 301, 302, 303, 304, 305, 306, 307, 308, 309, 310, 311, 312, 313, 314, 315, 316, 317, 318, 319, 320, 321, 322, 323, 324, 325, 326, 327, 328, 329, 330, 331, 332, 333, 334, 335, 336, 337, 338, 339, 340, 341, 342, 343, 344, 345, 346, 347, 348, 349, 350, 351, 352, 353, 354, 355, 356, 357, 358, 359, 360, 361, 362, 363, 364, 365, 366, 367, 368, 369, 370, 371, 372, 373, 374, 375, 376, 377, 378, 379, 380, 381, 382, 383, 384, 385, 386, 387, 388, 389, 390, 391, 392, 393, 394, 395, 396, 397, 398, 399, 400, 401, 402, 403, 404, 405, 406, 407, 408, 409, 410, 411, 412, 413, 414, 415, 416, 417, 418, 419, 420, 421, 422, 423, 424, 425, 426, 427, 428, 429, 430, 431, 432, 433, 434, 435, 436, 437, 438, 439, 440, 441, 442, 443, 444, 445, 446, 447, 448, 449, 450, 451, 452, 453, 454, 455, 456, 457, 458, 459, 460, 461, 462, 463, 464, 465, 466, 467, 468, 469, 470, 471, 472, 473, 474, 475, 476, 477, 478, 479, 480, 481, 482, 483, 484, 485, 486, 487, 488, 489, 490, 491, 492, 493, 494, 495, 496, 497, 498, 499, 500, 501, 502, 503, 504, 505, 506, 507, 508, 509, 510, 511, 512, 513, 514, 515, 516, 517, 518, 519, 520, 521, 522, 523, 524, 525, 526, 527, 528, 529, 530, 531, 532, 533, 534, 535, 536, 537, 538, 539, 540, 541, 542, 543, 544, 545, 546, 547, 548, 549, 550, 551, 552, 553, 554, 555, 556, 557, 558, 559, 560, 561, 562, 563, 564, 565, 566, 567, 568, 569, 570, 571, 572, 573, 574, 575, 576, 577, 578, 579, 580, 581, 582, 583, 584, 585, 586, 587, 588, 589, 590, 591, 592, 593, 594, 595, 596, 597, 598, 599, 600, 601, 602, 603, 604, 605, 606, 607, 608, 609, 610, 611, 612, 613, 614, 615, 616, 617, 618, 619, 620, 621, 622, 623, 624, 625, 626, 627, 628, 629, 630, 631, 632, 633, 634, 635, 636, 637, 638, 639, 640, 641, 642, 643, 644, 645, 646, 647, 648, 649, 650, 651, 652, 653, 654, 655, 656, 657, 658, 659, 660, 661, 662, 663, 664, 665, 666, 667, 668, 669, 670, 671, 672, 673, 674, 675, 676, 677, 678, 679, 680, 681, 682, 683, 684, 685, 686, 687, 688, 689, 690, 691, 692, 693, 694, 695, 696, 697, 698, 699, 700, 701, 702, 703, 704, 705, 706, 707, 708, 709, 710, 711, 712, 713, 714, 715, 716, 717, 718, 719, 720, 721, 722, 723, 724, 725, 726, 727, 728, 729, 730, 731, 732, 733, 734, 735, 736, 737, 738, 739, 740, 741, 742, 743, 744, 745, 746, 747, 748, 749, 750, 751, 752, 753, 754, 755, 756, 757, 758, 759, 760, 761, 762, 763, 764, 765, 766, 767, 768, 769, 770, 771, 772, 773, 774, 775, 776, 777, 778, 779, 780, 781, 782, 783, 784, 785, 786, 787, 788, 789, 790, 791, 792, 793, 794, 795, 796, 797, 798, 799, 800, 801, 802, 803, 804, 805, 806, 807, 808, 809, 810, 811, 812, 813, 814, 815, 816, 817, 818, 819, 820, 821, 822, 823, 824, 825, 826, 827, 828, 829, 830, 831, 832, 833, 834, 835, 836, 837, 838, 839, 840, 841, 842, 843, 844, 845, 846, 847, 848, 849, 850, 851, 852, 853, 854, 855, 856, 857, 858, 859, 860, 861, 862, 863, 864, 865, 866, 867, 868, 869, 870, 871, 872, 873, 874, 875, 876, 877, 878, 879, 880, 881, 882, 883, 884, 885, 886, 887, 888, 889, 890, 891, 892, 893, 894, 895, 896, 897, 898, 899, 900, 901, 902, 903, 904, 905, 906, 907, 908, 909, 910, 911, 912, 913, 914, 915, 916, 917, 918, 919, 920, 921, 922, 923, 924, 925, 926, 927, 928, 929, 930, 931, 932, 933, 934, 935, 936, 937, 938, 939, 940, 941, 942, 943, 944, 945, 946, 947, 948, 949, 950, 951, 952, 953, 954, 955, 956, 957, 958, 959, 960, 961, 962, 963, 964, 965, 966, 967, 968, 969, 970, 971, 972, 973, 974, 975, 976, 977, 978, 979, 980, 981, 982, 983, 984, 985, 986, 987, 988, 989, 990, 991, 992, 993, 994, 995, 996, 997, 998, 999, 1000.

## वेण्णावाचार्य श्रीमध्व

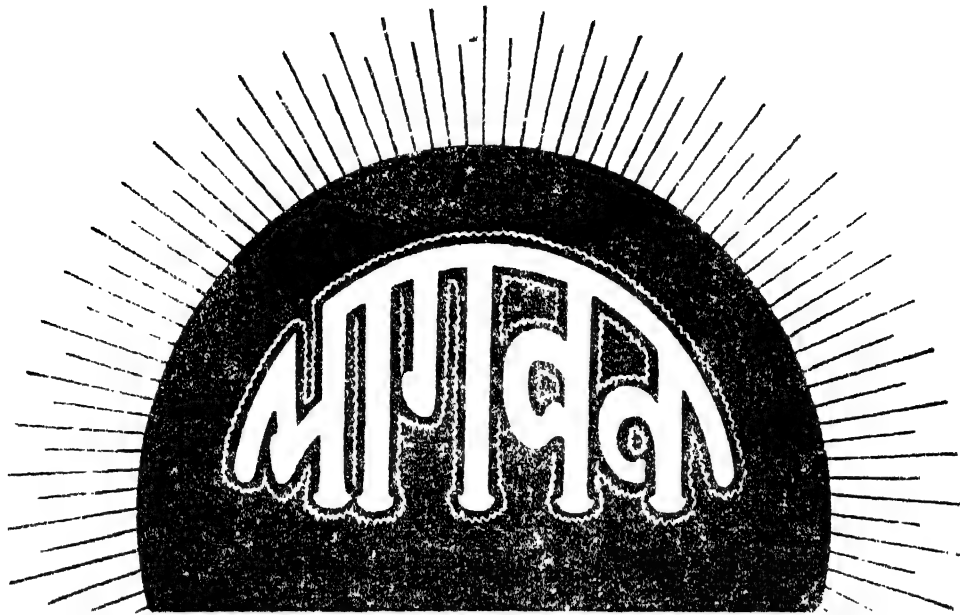
गौडान्त सम्प्रदायक-सम्पादित, इस ग्रन्थ में श्रीमध्ववाचार्यका जीवन चरित, सिद्धान्त और शिक्षा भली भाँति से वर्णित हुआ है। यह एक अपूर्व मौलिक विराट ग्रन्थ है। (भिन्ना २) मात्र।

## श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें श्रीविष्णुपाद, श्रीश्रीपाद, भक्तिनिदान्तसरस्वती गौडस्वामी प्रभुपाद-रचित पद्यावली श्रील आचार्य-रचित "सोरभ" नामक भाष्यके सहित प्रकाशित हुआ है। श्रील प्रभुपादके बहुतसे अप्रकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं। (भिन्ना १०) आठ आना मात्र।

## श्रीश्रीभक्तिविनोदवाणीवैभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनाकारमें प्रश्नोत्तररूपसे उनका वाणी-सङ्कलन। (भिन्ना ३) मात्र।



वर्ष ५

श्रीगौड़ीयमठ, सीतापुर ( पटना )

व० कृष्ण ४५० सं० १९५६ वि०, १ अप्रैल सन १९५६ ई०

संख्या ३

## श्रीश्रील आचार्यदेव और राय बहादुर मदनगोपाल सार्दना

गत १६ वीं अक्टूबर ( १९५५ ) श्रीहरिवामर के दिन लखनऊ के वागणसी-वग पल्लास्थ 'श्रीकृष्णमठ' में युक्त प्रदेश के सांचाई विभाजक सुपरिण्टेन्डिङ्ग इंजिनियर ( Superintending Engineer - Irrigation Department,

राय बहादुर मदनगोपाल सार्दना महोदयने श्रीगौड़ीय मिशनके सभापति परमहंस जी विष्णुनाथ श्रीश्रील अनन्त रामदेव परश्वामृपण गोस्वामी प्रभुका दर्शन करनेके लिये प्रागमन किया था।

१९३२ सालके नवम्बर मासमें जिस समय प्रभुपाद श्रीगुरुदेव ब्रजवन-परिक्रमाके उल्लसमें मथुरामें ठहर हुए थे

उस समय राय बहादुर सार्दना महोदयने श्रील प्रभुपादके श्रीचरणोंका दर्शन कर उनकी कृपा प्राप्ति की था।

राय बहादुर सार्दना परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि-चामो श्रीनाथ भक्तिमवसेव गिरि महाराजका कृपासे श्रीश्रील आचार्यदेवका दर्शन प्राप्तकर परमानन्दित हुए और उन्होंने श्रीश्रील आचार्यदेवको आशीर्वाचित अभिवन्दनादिके द्वारा श्रद्धा प्रदर्शित की।

परदुःखदुःखी श्रीश्रील आचार्यदेव अहंतुकी कृपाके वश होकर सार्दना साहबको कहने लगे — 'दिन द्रुतवेगसे बीतता चला जा रहा है। अतएव

आपसे हम लोगों की सहायता की प्रार्थना यही है कि हम आपमें आ प्रभुपदकी कृपा अर्थात् श्रीनामोंके निरन्तर स्मरण और आपका हरिकथा-श्रवण-कौतुहल उत्तीत उन्मादान्वित देख सकें।

सर्दाना साधु—कठ वार में मनमें यह प्रश्न उठता है कि श्रीपदमयी शिवाके अनुसार हरिनाम-कौतुहल साधन साधन मन्त्रन है किन्तु केवल हरिनाम की नमस्कारों द्वारा ही क्या किन्तु स्थिर हो जायगा?

आचार्यदेव—हरिनाम-कौतुहल केवल पद्यान मन्त्रन ही नहीं है। पद्यान एकमात्र मन्त्रन—एकमात्र मन्त्रन—एकमात्र मन्त्रन है। दर्शित नामापर धका पानियास का साधन श्रीपदनाम कौतुहल किया जाता है। क्या नामापर धका है—अपराध-पुनः कौतुहल प्रकट हो जाता है।

सर्दाना साधु—ये हम प्रकारके नामापर धका कौतुहल है?

आचार्यदेव—शुद्धि—प्रथम नामापर धका है। नामापर धका—एकमात्र नामापर धका—सम मन हरिनामों की है। यथापि कृष्ण लोग साधु-शब्दको एकमात्र नामापर धका (साधारण शब्द) समझते हैं तो भी श्रीपदनामों ही पदुत साधुशब्द वाच्य है। पुरुषोत्तम पदुतुं सेवकता नाम ही वरुण, सेवकता सक्त है। "साधु"—means eternally existent eternally content, eternally Blissful (नित्य सत्, नित्य और आनन्दमय)। ससारके धार्मिक-सम्प्रदायों में दो प्रकारके मत हैं—एक श्रुति-स्मृतन्त्र आध्यात्मिक युक्ति-चर्चा (जैसे प्रायः निम्नलिखित) आरोग्यपथ और एक धर्मोत्तम (इन्द्रिय तीव्र भगवान्) के पूर्ण

शरणागतिका पथ या अवरोधपथ। आध्यात्मिक मतसे युक्ति या ज्ञानका पोषण करने करते भगवद्वस्तुको अनाम, अरूप, अगुण, अपरिहार, निर्लील वा निर्विशेषरूपसे कल्पना करते हैं और शरणागतिके पथमें स्वप्रकाश वस्तु नित्य नाम, रूप, गुण, परिकर और लीलात्मय निरङ्कुल स्वभावात्म्य पुरुषोत्तमरूपसे आविर्भूत होते हैं।

गोसारके तथाविध धार्मिक और अधार्मिक सम्प्रदायोंके आविर्भावों में ही प्रथम श्रेणीके अन्तर्गत है। जो दूसरे पथके पथिक हैं, वे साधु ही वैष्णव वा भगवद्भक्त हैं। वे भगवद्भक्ति, भगवान् और भक्तों के निम्नलिखित रूपों में उपर्युक्त करते हैं—“ॐ तद्दिश्यामीः परमां पदं सदा पर्यन्ति सूर्यः”—यही उन लोगोंका मन्त्र है। जो पुरुषोत्तम ऐतिहासिक, रूपक, आध्यात्मिक वा धार्मिक विन्तासूतके परिमित वस्तु नहीं हैं, उन्हीं पुरुषोत्तमके सेवकता तथा कथित निर्विशेषवादीके समान समझना प्रथम नामापर धका है। प्रभु (भक्तों) साधु कनक, कामिनी, प्रतिष्ठा यहाँ तक कि मुक्तिका भी सामना नहीं करते। वे एकमात्र श्रीपदनाम प्रभु की नित्य सेवामें प्रतिष्ठित रहते हैं। सेवके लिये ही सेवा करने—अन्य उद्देश्यमें नहीं करते हैं।

सर्दाना साधु—इस प्रकारके साधुको तो कोई काम ही नहीं रहता, वे निष्क्रिय अवस्था लाभ करते हैं।

आचार्यदेव—पुरुषोत्तमके सेवक साधु—बस अधिक Active वा सेवकत्व पर होते हैं यह मैं पाँछे कहूँगा। वे सब इन्द्रियोंमें सर्वदा अपने प्रभुकी सेवाके लिये निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं। कृष्णमें आस्वाद परस्वादा द्वारा शब्द ब्रह्मरूपमें जो वास्तव सत्य संसारमें अवतीर्ण हुए हैं, अहैतुक

कृपा-परवश होकर उसी सत्यवाणीको सर्वत्र वितरण (Broadcast) करनेमें उनलोगोंको एक मिनट भी विराम नहीं; वे सर्वदा सर्व-न्द्रिय-द्वारा Active वा सक्रिय रहते हैं।

सार्दना सा:—प्रथम नाम-पराध समझमें आ गया। द्वितीय क्या है?

आचार्यदेव—शिवदि देवताओंको सर्वेश्वरेश्वर विष्णुका प्रतिद्वन्द्वी समझकर उनको विष्णुमें स्वतन्त्र या विष्णुके समान समझना द्वितीय नाम-पराध है। Krishna is the Transcendental Autocrat or Despot. He is the God of all gods or Absolute Prime cause of all entities. All other gods are mere forms of His Shakti with delegated powers higher than men, अर्थात् कृष्ण विष्णुका स्वयम्भूत-जीवा-गुरुपूज्य, सभी ईश्वरोंके ईश्वर, सभी कार्योंके कारण हैं। अन्योन्य अधिपति देवता उसी शक्ति के कार्यवात्र हैं तब मर्त्य मानवोंके श्रेष्ठ हैं। देवताओंका जन्म और ध्वंस है। किन्तु विष्णु अत्र, नित्य, सनातन, विभु, चैतन्य-सन्देह-व्यग्रद हैं; अतएव विष्णु और अन्योन्य देवताओंका समान समझना अपराध है।

सार्दना सा:—तृतीय नाम-पराध क्या है?

आचार्यदेव—नाम-तत्त्व-वित् गुरुदेवको मर्त्य बुद्धिके साथ असूया करना। भगवद्-विमुख्यारूपी पिता और कृष्ण-विष्णु-मूर्तिरूपी मातासे दम्भके सहोदर असूया या मत्सरताकी मृष्टि जाती है। नन्मा-यमें प्राकृत बुद्धि, मनुष्य बुद्धि प्रभृति असूयाकी सन्तान- (सन्तति) हैं। श्रीगुरुदेवका पूर्णरूपमें, स्नेहमय नियामक और शासक-रूपमें वरदा तथा उनके पूर्ण आनुगत्यमें विश्रम्भ-सेवा स्वीकार करके श्रीहरिनामका

अनुशीलन करना होता। श्रीगुरुदेवका शासन और आनुगत्य परित्याग कर, उनकी सेवामें दूर रह कर या स्वयं-पालक-रूपमें उनका सेवा का अभिनय कर लक्ष-लक्षवार नामांतर उच्चारण करनेसे भाव-गुरु अवज्ञाका प्रपगण होता। श्रीगुरुवादपद-म-बद्ध-जीविका-बन्धन छुटाकर अर्थात् चतुर्विध अर्थ दूर कर पूर्ण सच्चिदानन्द-राजपद-तत्त्वके साथ मिलन करा देने हैं—विमुख जीवकी उन्मुखता उदय करा देने हैं; सम्बन्ध-ज्ञान, अधिपति और प्रयोजन-रूप-तत्त्व-वस्तु प्रदान करने हैं। उनकी सेवा पर दुःखकातय ही उनका नियम-सम्भाव है। वे एक ही साथ जीवपर दया, नाममें रुचि और तैरणाव-सेवाकी गिताके आदर्शके स्वरूपमें अपना आचार्य-त्व प्रकाश करने हैं। He is a Transcendental mediator between the Absolute Krishna and His Servitors. Transparent not opaque उसी गुरुदेवमें सर्व-रुद्धि करनेसे कभी भी मुखमें शङ्क-परिचय नहीं उद्घसित होंगे।

सार्दना सा:—गुरुदेव क्या भगवत् नहीं हैं? उनका क्या धर्म, मृत्यु, और तृप्ति नहीं होती? यदि ये सब धर्म उनमें भी हैं तो किस प्रकार उनको अनिमर्त्य कहा जायगा?

आचार्यदेव—हम-लोगोंके मर्त्य दर्शनमें अर्थात् “मैं द्रष्टा हूँ” उस बुद्धि-दे-विशेषी भ्रान्त दर्शन है। जिसको भोगी जीव-जीव सा सकता है वह वस्तु निश्चय ही गुरुदेव नहीं हैं; वे भोगी गुरु नहीं हो सकते, उनको भौतिक भावमें ‘गुरु’ कहना विडम्बना मात्र है। गुरुका दृष्टव्य दर्शन नहीं कर सकते, गुरुकी कृपासे गुरुपद-पद-मका दर्शन होता है। विषय-कल्पित स्वप्नको जड़-वस्तु-मात्र-रूपमें दर्शन करता है, किन्तु अपने तर्ज

विष्णु को तत्त्वस्वरूपमें उपलब्ध करनेवाले प्रह्लादका गुरु वा विष्णु दर्शन ही होता है । श्रीगुरुवाद पदमके ज्ञानाखन शब्दका द्वारा जीवके जन्म-जन्म-न्तरका अन्ध चक्र उन्मूलित होनेसे उनके निकट यह द्रष्टृ-दृश्य-विलीन प्रकाश होना है । श्रीगुरु देव जन्म मृत्यु या च-धातुपणके अर्थात् वस्तु है वे मरे सदृश पीत जीवका उद्धार करनेके लिये जगत्तमरूपमें अवतारण होकर जगत्लाग करने हैं । उसमें उनका ही स्वरूप प्रभावित होता है । क्रम और वञ्चना । निष्कल संयोगमुख्य । यत्कि उनकी कृपासे अभिषिक्त होते हैं और । अत्यधिक भोगानुसृतों । उनकी वचननामें पतित होते हैं ।

सार्हाना साः चतुर्थ नामापराध क्या है ?  
आचार्यदेव—श्रुत और प्रीत शारधोही मित्र । श्री भगवान्के श्रीमुखमें निकलकर गुरु-शिष्य परस्पर या आम्नाय धाराके मध्य होकर आताप होते हैं वही श्रुति हैं । गुरुदेव नित्य (सर्वदा) कीर्त्तन करने हैं । शिष्य नित्यकाव अवग करने हैं । यह कीर्त्तन और श्रवणकी नि यथाके कारण अनित्य और सनातन हैं ।

श्रुति कोई व्याक्त विशेषकी रचना नहीं, वे साक्षात् श्रीभगवान्के मुखमें निकली हुई वाणी है और श्रीभगवान्के अभिन्न-विग्रह श्रीव्यासक द्वारा संसारके कल्याणके लिये विभक्त पौर व्याख्यात हैं । वेद एवं वेदानुग सात्त्विकस्मृति पुराण-पञ्चरात्रादि शास्त्र—सभी एक तात्पर्यमय हैं । इन शास्त्रोंमें भेददृष्टि या इनमेंसे किसी एकको अवमानना करने से उस व्यक्तिके मुखमें कभी भी शब्द-ब्रह्म-नामका कीर्त्तन नहीं हो सकता ।

सार्हाना साः—पञ्चम नामापराध क्या है ?

आचार्यदेव—हरिनामके साहात्म्यको mere

hyperbolic exaggeration of dogmatic and emotional men अर्थात् कितने साम्प्रदायिक कट्टर अन्धविश्वासयुक्त और जड़िय भावुकगणों की धर्म-मादकत में अभ्यक्त अभिस्तुति (अर्थ-वाद) समकतेमें कभी भी उसके मुखमें शुद्धनाम उद्भूति नहीं होगी ।

सार्हाना साः (छठा) षष्ठ नामापराध क्या है ?

आचार्यदेव—भगवान्के नामसमूहका अर्थान्तर कल्पना (अर्थ लवाना) या नामसमूहका प्रतिय कल्पनिक रूप पर समझना । जिस प्रकार 'हरि' शब्दका अर्थ मित्र, साँप, वानर, मेढ़क, हंस, कोकिल, मयूर, अग्नि, सूर्य, यम इत्यादि । अतः मूर्खोंका अवलम्बन करने से सब प्राकृत अर्थ-वाचक नाम प्रयोग करनेमें 'हरिनाम' ग्रहण करना नहीं हुआ या हरि स्वरूपतः निर्विशेष वस्तु है, उनके नाम, रूप, गुण, परिकर लीला चरम अवस्थामें कुछ भी नहीं रहेंगे, सामयिक भावमें साधकों की सुविधाके लिये 'हरि', 'कृष्ण' इत्यादि ब्रह्मके एक नाम और रूप कल्पना किये गये हैं ऐसा विचार कर हरिनाम-ग्रहण करनेकी छलना करनेमें कभी भी उसके जिह्वापर शुद्धनाम उद्भूति या उसका फल स्वरूप प्रेमोदय नहीं हो सकता ।

सार्हाना साः—सप्तम अपराध क्या है ?

आचार्यदेव—नामके बलसे पापबुद्धि ही सप्तम अपराध है । हरिनामका पापनाशक मन्त्र समझ हरिनामका जप या उच्चारणकर पापस्रोत प्रवाहित रखनेकी चेष्टा । नामापराध ही से पापका नाश हो सकता है । अयर्म और धर्म, पाप और पुण्य ये सभी तुच्छ नामापराधके फल हैं । नामाभास से अविद्या विनाशरूपी मुक्ति और शुद्धनामसे ही

कृष्णप्रेम प्राप्त होता है ।

सार्दना सा:—धर्म या पुण्य नामापराधका फल कैसे हो सकता है ?

आचार्यदेव—धर्म, अर्थ, काम या अधर्म, अनर्थ, कामकी अतृप्ति अर्थात् पुण्य या पाप नशवान कर्मफल—विशेष है । ये सब नामके अर्थात् पूर्णचेतनमय विप्रहृष्टों सेवाके प्रतिबन्धक स्वरूप हैं । पूर्ण-सच्चिदानन्द-विप्रहृष्ट जीनामके चरणोंसे अपराध होनेसे उनकी सेवाके प्रतिबन्धक स्वरूप पुण्य और पापादि कर्मफलकी प्राप्ति होती है ।

सार्दना सा:—अष्टम अपराध क्या है ?

आचार्यदेव—अन्य शुभकर्मों के साथ अप्राकृत नाम ग्रहणको समान समझना अष्टम नामापराध है । हरिद्वार या प्रयागमें पूर्णकुम्भस्नान, वार्धश्रमण, यज्ञादि क्रिया, गो ब्राह्मण भोजनादि कर्मको हरिनाम कीर्तनके साथ एक समान समझनेसे पूर्ण, विभु, आनन्दधन, चेतनका अनुयायन नहीं हो सकता । हरिनाम कीर्तन is the direct service to Absolute Supreme Lord—परात्पर सच्चिदानन्दविप्रहृष्टकी साक्षात् सेवा है । अपनी स्वार्थभिद्धि अर्थात् धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष के लिये जो सब साधन हैं, उन सबोंके साथ निरङ्कुश स्वेच्छामय चैतन्यरसविप्रहृष्ट नामकी सेवा कभी समान नहीं हो सकती ।

**कोटी अश्वमेध एक कृष्णनाम सम ।**

**येइ कहे, से पाषण्डी, दण्डे तारे यम् ॥**

सार्दना सा:—यदि कोई अपने लिये यह सब न करके दूसरोंके लिये या निष्कामभावमें करे ?

आचार्यदेव—All altruistic acts are done for transitory purposes and not for the Absolute

Person's sake परमेश्वरी लोग सारा कार्य सा सामिक और नश्यद्वर्तक या वस्तुके अस्थायी उपकारके लिये ही करते हैं । उनलोगोंका सारा कार्य ही कालान्तरगत होता है । सृष्ट होता है और फिर नाशको प्राप्त होता है । मनुष्यके परमेश्वर मनुष्यके लिये ही किये जाते हैं, अपर प्राणीमण कितने ही मौके पर उस उपकारसे वंचित होते हैं, यहाँ तक कि कभी कभी वे सा सादागियोंके स्वार्थ और भाव्य पदार्थरूपमें भी व्यवहृत होते हैं । उनलोगोंका चेतन सङ्कुचित और सुप्त है । उर्मी सङ्कुचित और सुप्तवस्थाकी जागृत न करके उनलोगोंको भोग्यवस्तुरूपमें परिगणन करना ही उनलोगोंका हिंसा करना है । मानवजातिके प्रति परमेश्वरी समाज जो नश्यद्वर्तक उपकार करते हैं, वह भी एक प्रकारका हिंसा ही है । क्योंकि, उसके द्वारा मानवके चेतनकी सङ्कुचितवस्था निकालित और जागृत करनेके बदले उनलोगोंकी देह और मनका सामयिक भाग ही आयोजन किया जाता है, उसके द्वारा सुप्त चेतन या अस्मावेशभाव भी जागृत नहीं होता ।

सार्दना सा: यदि हमलोग पशु पक्षी इतर प्राणीको किसी अच्छे काममें नियुक्त कर उनलोगोंके द्वारा बहुतसे लाभदायक कार्य कर सकें, तबतो उनलोगोंका यथार्थ सद्व्यवहार ही किया गया । दुष्ट-लोगोंको सहायता देकर उनलोगोंके द्वारा संसारके बहुतसे कार्य किये जा सकते हैं ।

आचार्यदेव—This is a mere bartering system—mere business, not doing real and ultimate good to them यह वैश्विक वृत्ति या व्यवसाय है । इसके द्वारा उनलोगोंका आत्यन्तिक (प्रचुर) कल्याणकी चेष्टा नहीं हुई—हम लोगोंका तथा उनलोगोंका अर्थात् दोनों पक्षका इन्द्रिय-



तपण मात्र हुआ। All sentient or conscious or animate beings are meant for the service of one common Lord Krishna समस्त चेतन जगत एक अद्वितीय प्रभु कृष्णकी सेवाके लिये ही निर्दिष्ट है।

साहाना सा:—इतर प्राणी गण किस प्रकार परमेश्वरकी सेवा कर सकते हैं ?

आचार्यदेव—जो सब साधु या वैष्णव अपने प्रति दिये गये किर्मी सेवाही भी भोग वा इन्द्रिय तर्पणके उद्देश्यसे आत्मसात नहीं करते, उन साधुओंके हरिभजनके अनुकूल सेवाकर इतर प्राणीगण भी परमेश्वरकी सेवा कर सकते हैं।—‘यद्यद्भुत-क्रम-परायण-शील-निश्चय-स्तिर्यग-जनाअपि किमु-श्रुतधारणा ये’—(आमद्भागवत) प्रकृत साधुगण इतर प्राणियोंको भी इसी प्रकार भगवद्भजनके अनुकूल कार्यमें नियुक्त कर इतर प्राणियोंको भी प्रकृत नित्य उपकर अर्थात् उनयोगोंके सुत्र और मद्ध-यित चेतनको धारं धारं (क्रम क्रमसे) मुक्तियुक्त और उर्वृद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। यही इतर प्राणियोंके प्रति यथार्थ उपकर साधनकी चेष्टा है। जैन लोगोंके सदृश खटमलकी मनुष्यका रक्त पान करा कर (खटमल बिलाकर) अथवा जराग्रस्त वा रोगी, वृद्ध वा दुर्बल पशुको पिञ्जड़े में रक्कड़ तथा कथित अहिमा-साधनके प्रस्तावके द्वारा उनजोगों की सुत्र चेतनको जन्म जन्मान्तरके लिये आवृत्त रखने वाली हिंसाकी प्रवृत्ति प्रकृत वैष्णवोंकी कभी नहीं रहती। श्रीमन्महाप्रभु भारिखण्डमें भ्रमण करते समय रास्तेमें हरिनाम-कीर्तन श्रवण करा कर हिस्, सिंह, व्याघ्र और भाल आदिके सुत्र चेतनका विकाश करनेका लीलाप्रदर्शन किया था। शिवानन्द सेनका कुत्ता श्रीमन्महाप्रभुका उच्छिष्ट

ग्रहण और कीर्तन श्रवण कर नित्य बैकुण्ठ लोकका अधिकारी हुआ था। श्रील हरिदास ठाकुर उच्चस्वरसे हरीकीर्तन कर बनके पशु पक्षियोंकी चेतनका उद्बोधन किया था।

साहाना सा:—ये सब प्राणी क्या केवल हरिकीर्तन श्रवण करकेही मङ्गल लाभ करते हैं, या साधुओंकी कुछ सेवा भी कर सकते हैं ?

आचार्यदेव—सब लोग त्रिभ समय हरिकीर्तन प्रचरमें गमनागमन करते हैं, उस समय घोड़ा, बैल प्रभृति पशु उनजागोंको वहन कर साधु लोगोंके भावद्वजनके अनुकूल सेवा कर सकता है। गाय दूध दानकर हरिकीर्तनकारी वैष्णवोंकी सेवा कर सकती है। कुत्ता चौर भाला या पहरेदारका कार्य कर हरिभजनकारी वैष्णवोंकी सेवा कर सकता है। काकादि पक्षी भी नानाप्रकारके मौन परिष्कार कर वैष्णवोंकी सेवा कर सकते हैं। एकमात्र वैष्णव लोग ही इतरप्राणियोंको भगवद्भजनके अनुकूल कार्यमें नियुक्त कर सकते हैं और उनके बिना सभी उन-लोगोंके प्रार्थिमा करते हैं; यहां तक कि बौद्ध लोग भी यहिसाके नामसे हिंसा ही करते हैं; क्योंकि वे इन सब प्राणियोंको पुरुषोत्तम भगवान्ही सेवाके अनुकूल किसी कार्यमें नियुक्त नहीं कर सकते। भगवान्सेवक वैष्णव चाँवरी गायके पूँछके द्वारा विष्णुसेवाके लिय चाँवर प्रस्तुतकर उसके द्वारा भगवान्की सेवा करते हैं, मोरका पूँछ संप्रह करके कृष्णकी चूड़ामें लगा या वदजन-यन्त्र (पंखा) निर्माण करके भगवान्सेवा किया करते हैं; अग्नि-के द्वारा यज्ञेश्वर विष्णुकी सेवा करते हैं; पशुओंके चर्मद्वारा वैष्णवोंके पादुका, मृदङ्गके नानाप्रकारके उपकरण प्रस्तुत करते हैं। पशुओंके रोम, ऊन या

रेशमके कीड़ेसे उत्पन्न रेशमके द्वारा कम्बल और बम्बादि तैयार कर हरिकीर्तनकारी वैष्णवोंके भजनका आनुकूल्य विधान कर देते हैं । जो सब वस्तुओंसे हरिसेवाके अनुकूल विषय संग्रह कर सकते हैं, वे वैष्णव लोग उद्भिदादि, यदां तक कि पत्थरादि आच्छादित चेतनकों भी हरिकीर्तनकारी साधु और वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त कर देते हैं । उद्भिदादि जीवोंके द्वारा जिस समय हरिकीर्तनकारी जीवोंकी सेवा होती है, उस समय उद्भिदादिको छेदन करनेमें भी उनलोगोंके प्रति हिंसा नहीं होती, क्योंकि उनलोगोंका जीवन विष्णु-वैष्णवकी सेवामें उत्सर्गिकृत होता है, किन्तु उन लोगोंको वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त न कर मोगीके इन्द्रिय-तृप्तिकर उद्यान मजानेके लिये संरक्षण-पूर्वक उनलोगोंकी पुष्टि और श्रीवृद्धिके लिये यथेष्ट यत्न और परिश्रम करनेपर भी उनलोगोंका जीवन हरि-सेवामें नियुक्त न होनेके कारण उनलोगोंके प्रति हिंसा ही की जाती है ।

सार्धाना साः—ऐसा होनेसे जो लोग बकरे आदि पशु देवोंके उद्देशसे प्रदान करते हैं, वे भी तो कह सकते हैं कि हमलोगोंके भगवान्के उद्देशमें पशुके उत्सर्ग करनेमें वह हिंसामें परिगणित नहीं हो सकता ।

आचार्यदेव—यज्ञादिमें यज्ञेश्वरके उद्देशमें जो वैध सात्वत-शास्त्र-विहित पशु-बलि का विधान है, उसके द्वारा भी साक्षात् चेतनके अनुशीलनका आनुकूल्य विधान नहीं होता, मांस खानेके उद्देशका अभिनय कर पशु बलि देनेकी तो कथा ही नहीं है । तामसिक शास्त्रोद्दिष्ट देवी पूजामें पशु बलि देनेका विधान दि—मनुष्योंके अत्यन्त तामसिक प्रवृत्तिको कुछ नियमित (दमन) करनेके लिये ही है, वह उच्छृङ्खल और

अत्यन्त हिंसकों कुछ विधिके अन्तर्गत लानेका कौशल विरोध है । वह प्रकृत अहिंसा या भगवत् सेवा नहीं । यज्ञमें पशुहत्यादिकी जो शास्त्र-विधि है, वह भी इन सब कार्योंमें निवृत्त करनेका कर्म-कौशल मात्र है । ये सब कार्य किसी न किसी अप-ग्वार्थ लाभके उद्देशमें ही अनुष्ठित होता है; उसके द्वारा चेतनका कोई अनुशीलन नहीं होता । श्रुतिने कहा है—

एवमस्ते अदृश यज्ञरूपा  
अष्टादशोक्तमथ येषु कर्म ।  
एषा छद्मं यो येषमिन्द्रान्ति मृदा  
जरा मृत्युं ते पुनरेवापि यात ॥

(मुण्डक १।२।७)

यज्ञरूप प्लव (नौका) भवसमुद्र-उत्तरण करनेके लिये बृह नदी; क्योंकि इन सब यज्ञोंमें अष्टादश पुरुषोक्त कर्म भगवत् उद्देशमें अनुष्ठित नहीं होता अतएव वह तुच्छ है । जो सब अविवेका-व्यक्ति उसका ही नरम कल्याण प्राप्त करनेका उपाय समझ कर उसमें ही अग्रह प्रकाश करते हैं वे पुनः जन्म-मृत्युको प्राप्त होते हैं ।

सार्धाना साः—संपन्न गया । अब नवम अपराध कृपा कर कहिये ।

आचार्यदेव—कहनेमें भूत गया हैं—अन्य शुभ कर्मोंके सिद्धि श्रीनामाचार्यको समान सम-भना भी अनवधान वा प्रमाद है । हरिनाम प्रदण्णके समय कृष्णान्तर विषयमें भाग त्याग बुद्धिसे विज्ञप्त होना या अन्याभिलाषमें प्रसक्त रहकर हरिनाम कीर्तनका अभिनय भा अनवधान वा प्रमाद है । यह भी पूर्वोक्त अष्टम अपराध है । अब आपके विज्ञाप्य नवम अपराधकी कथा कहता हूँ । श्रद्धाहीन और नाम-श्रवणमें विमुख व्यक्तिके

निकट हरिनाम कीर्तन या उसको लाभ-पूजादि की प्राप्ति की प्रशंसा नाम-ग्रहणमें उद्योग करना नबम अपराध है । मर्मजिदके निकट नामकीर्तन करना एवं इसके लिये अन्य धर्मावलम्बीके साथ गलत वर्णन करना नबम अपराधके मध्यमें वर्णित है । कुतर्क गुरु-व्ययम या शरणागते लिये नाममें एकान्त श्रद्धाहीन व्यक्तिका निर्मादात्त प्रदर्शन शोभनय न माना जाय है ।

सार्धाना साः - प्रथमके प्रायः अधिकांश लोग ही श्रद्धाहीन होते हैं । किमु ? तो क्या उनलोगोंको हरिनाम प्रयोग करना न होगा ?

आचार्यदेव - हरिनामसे विमर्श व्यक्तिका हरिनामका अर्थ जानिये और साक्षात् प्रयोग कर श्रद्धाहीनताके घात उन्मुख करना अपराध नहीं है । एकमात्र यही करना होता । किन्तु जो परम कृपाय हरिनामके घात निर्देश एवं नाम विलास प्रदान नामकीर्तन नामोंके घात विरोध है उनलोगोंको बलपूर्वक हरिनामकार सुनाने ही चेष्टा करनेसे उनलोगोंका लेशमात्र भी सङ्ग नहीं होता; बल्कि जो इस प्रकार प्रवृत्त करायेंगे उनका अस्मृति ही होगी ।

सार्धाना साः - दशम अपराध क्या है ?

आचार्यदेव - दशम अपराध सर्वशेष - पराध होनेपर भी इसको सर्वमें कटन अपराध कहा जा सकता है, जो शीघ्र परिहारा नहीं किया जा सकता है । नामका अद्भुत साक्षात् श्रवण कर भी 'मैं और मेरी' इस प्रकार देहात्मवृद्धावशिष्ट होकर श्रद्धाहीनता प्रहण और श्रवणमें प्राप्ति ग्राह्य । यही देहात्मवृद्धि के बीज श्रद्धाहीनता प्रभुकी कृपाके निवाय किसी प्रकार विनष्ट नहीं होता । उसी देहात्म-बोधमें माधु-निन्दारूप सर्वप्रधान और

सर्वप्रथम अपराधका उद्भव होता है-

नाश्चर्यमेतदयदसनसु सर्वदा

महद्विनिन्दा कृष्णपात्मवादिषु ।

सेष्यं महापुरुष पादपांशुभि

निरन्तरेजःसु तदैव शोभनम् ॥

(भा. ४।४।१३)

जो इस जड़ देहको 'आत्मा' समझते हैं, तादृश अमृत पुरुष निरन्तर महाजनगणोंकी निन्दा करेंगे, इसमें आश्चर्यकी बात क्या ? यद्यपि महापुरुषगण अपनी निन्दा सहन कर लेते हैं तथापि उनलोगोंके पदरेणु समूह बढ़ोकी निन्दा सहन नहीं कर सकते, वे निन्दकोंके तेज क्षाय कर देते हैं । अतएव असत् लोगोंका मन्द-विद्वेष ही शोभनीय है, कारण इसका यह है कि उसके द्वारा उनलोगोंकी समुचित सजा ही प्राप्त होती है ।

सार्धाना साः - तो क्या हरिनाम ग्रहण करनेके समय निजन्तता प्रयोजनीय नहीं है ?

आचार्यदेव - निजन्तता नहीं बल्कि प्रकृत नाप्राप्त साधु लोगोंका सङ्ग ही आवश्यक है । तथाकथित निजन्तताके द्वारा विलेप या अनवधान दूर नहीं होता, मनका दुःसङ्ग होता है । दुष्ट मनमें अनेक प्रकारकी दुष्प्रवृत्तियाँ वर्तमान हैं । साधु लोगोंके सङ्गके बिना उन सब दुःसङ्गोंमें निस्तार लाभ करनेका और कोई उपाय नहीं । सर्वात्म-निवेदिताप्रपन्न, शरणागतकी सेवोन्मुखी जिह्वापर ही श्रद्धाहीनता कृपापूर्वक आत्मप्रकाश कर सभी प्रति-कृत विघ्न-समूहों को दूर कर देते हैं ।

सार्धाना साः - हरिनाम-ग्रहण करनेकी योग्यता क्या है ?

आचार्यदेव - अकष्ट श्रद्धा और शरणागतिके परिमाणानुसार जिह्वापर हरिनाम आभास या शब्द-

रूपमें उच्चारित होते हैं ।

सार्दना सा:- जो हरिनाम करेंगे, व क्या कोट एक निज्जन स्थानमें बैठ कर हरिनाम नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव हरिनाम ग्रहणकारी कबल हरिनामाश्रित साधु लोगोंका ही सङ्ग करेंगे । साधु लोगोंके सङ्गमें शरणागतिके साथ हरिनाम कीर्तन करनेके सिवा उनका किसी प्रकारका उद्देश्य त्रय न रहेगा, नर्मा हरिनाम होगा ।

सार्दना सा -- मेरे प्रश्नका उद्देश्य यह है कि हरिनाम करनेके लिये एकाग्रताका प्रयोजन है कि नहीं एवं निज्जनताके बिना यह एकाग्रता हो सकती है कि नहीं

आचार्यदेव -- नामाश्रयक बिना सकल चेष्टा शक्य भा कोट एकाग्रता नहीं । कता, कोट कृत्रिम चेष्टा या आराधनाके द्वारा एकाग्रता प्राप्त नहीं होती । हरिनाम सर्वशक्तिमान है । श्रानामाचार्य गुरुदेवके एकान्त आनुगत्यमें सर्वशक्तिके आधार श्रीहरिनाम प्रभुके चरणोंमें त्रिम परिमाणमें पूर्णरूपमें आत्म समर्पण होगा उसी परिमाणमें आनुपाङ्गिकरूपमें एकाग्रता उपाश्रित होगी । एकाग्रताके लिये पृथकरूपमें चेष्टा करनेका प्रयोजन नहीं । हरिनामकी कृपासे ही सब होगा । हमलोग उसी कृपाके प्राथी होंगे ।

सार्दना सा -- एकाग्रता नहीं होनेमें हरिनाम किस प्रकार होगा, यह नहीं समझ रहा हूँ ।

आचार्यदेव -- Concentration is the virtue of ever-necklemand after all एकाग्रता मनका एक धर्म विशेष है । अनर्थयुक्त मनका कोई कार्य या धर्मके द्वारा कर्मा भी हरिनामकी सेवाकी सहायता नहीं हो सकती । हरिनामकी कृपासे ही हरिनाम होता है । अनर्थयुक्त मन हरिका नाम

हरिका रूप, हरिका गुण, हरिका परिकर, या हरि की लीला चिन्ता नहीं कर सकता । इसके सिवा प्रकृति वा प्राकृत विषयमें मनको हटाकर उसी मनको सङ्कुचित विषयमें नियुक्त करनेके लिये मनके सिवा एक दूसरे श्रेष्ठ और बलवान बस्तुमें यह कार्य करना पड़ता है, वे ही प्रपन्न उदबुद्ध आत्माएँ हैं ।

सार्दना सा:- क्या हरिनाम-ग्रहणकारी ईश्वरके किसी स्त्रीकी चिन्ता नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव -- भाग्य, एक मन, तात्परी, विषय, अथवा वास्तविकता, तात्परी, भाग्य, एकमात्र आनामके निकट पूर्ण प्रपन्न शरणागति के बिना 'सर्वोत्तम' आश्रयके बिना हरिनाम ग्रहणकारीका अपनी कोई कृत्रिम चेष्टा नहीं रहेगी । मन प्रकृति का आतिक्रम नही कर सकता प्राकृत मन जो कुछ स्मरण करेगा, धारणा करेगा, ध्यान करेगा, वह सभी प्रकृतिके द्वारा सृष्ट और अन्तर्गत विश्वकी ही वस्तु है । इस विश्वक भीतर ही-नमनाममन कर सकता है उसका आतिक्रम करवाकर ज्ञानकी शक्ति उसमें नहीं है ।

सार्दना सा:-मनुष्य त्रिम समय हरिनाम करेगा, उसी समय साथ ही साथ एकाग्र होनेकी चेष्टा करेगा । आज एक मिनट, कल दो मिनट, परसों तीन मिनट- इसी प्रकार अभ्यास करने करने यदि वह व्यक्ति क्रमशः एकाग्रताकी मात्रा बढ़ा सकता है, नर्मा तो योगे योगे सम्पूर्णतः एक हो । हरिनाम कर सकेगा ।

आचार्यदेव -- ऐसा कृत्रिम उपाय व्यर्थ और निष्फल है । विश्वामित्र, सौभरी, वशिष्ठ, भरद्वाज प्रभृति श्रेष्ठ योगयोगने अन्तमें इस पथकी निरर्थकताकी उपलब्धि की है । दो चार पाच मिनट नहीं, शत-शत वर्ष समाधिस्थ रहनेके बाद भी विश्वामित्र

सोभगी प्रभृतिका चित्त - चाञ्छत्य हृत्वा है  
समार-वसना जागो है ।

युञ्जानानागमन्तानां प्राणायामादिभर्मनः ।

अर्थात् य सन राजन दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥

(भा. ११-१०-१३०)

अमक्त लोग प्राणायामादिके द्वारा चित्तको  
निराध करने दे; किन्तु हे राजन ! उनके द्वारा  
उनलोगोंका चित्त विषय-अलक्ष्य नहीं होता, बल्कि  
फिर विषयाभिमुखी हो जाता है ।

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जन्तं प्राणमुत्तमम् ।

मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपणं हतवः ॥

(भा. ११-१०-१३१)

उर्मांलिये जिनने उत्तम योग अर्थान् सर्वश्रेष्ठ  
भक्तियोगसे चित्त सन्निविष्ट किया है वे उन सब  
चेष्टाओंको भक्तिपथका विघ्नस्वरूप कहते हैं । मेरे  
भक्तगण मेरे द्वाराही सभी साधनोंका फल प्राप्त  
करने हैं मृतरां उन लोगोंके लिये ये सब साधन चेष्टा  
समय नष्ट करनेकी हेतु मात्र है । मेरी सेवा छोड़  
कर वे लोग वृथा कालत्रेप नहीं करते ।

### परीक्षित (१)

एक दिन महाराज परीक्षित धनुषबाण लेकर  
शिकारके लिये धन धनमें मटकते हुए थकावटके  
मारें एक मुनिके आश्रममें प्रवेश किया । उसपर  
क्षुधा तृष्णाने बहुत जोरसे आक्रमण किया था ।  
मुनि अपनी इन्द्रियां, मन, प्राण और बुद्धिको  
प्रत्याहार कर उपशान्त हो बैठे थे । उनकी जटायें  
शरीरमें विक्षिप्त थी और पहननेमें मृगचर्म था ।  
महाराजने अन्धत्र पानाका कुछ बन्दोबस्त नहीं  
कर सकेपर मुनिके समीप आकर कुछ जलकी  
प्रार्थना की । किन्तु मुनि महाराजको बैठनेके लिये  
न तो स्थान ही दिया न मधुर वचनमें कुछ आलाप  
किया । इससे वे बहुत ही अपमानित समझ क्रोधके  
नारे धनुषमें एक मृत सर्पको मुनिके गलेमें स्थापित  
कर अपने राज्यमें लौट गये । उन्होंने सोचा क्या  
इस मुनिने सचमुच ही इन्द्रियोंको प्रत्याहृत किया है  
या समाधिके बहानेमें मेरा निरादर कर रहे है ?  
ब्राह्मणोंके प्रति परीक्षितका ऐसा क्रोध और कभी  
नहीं देखा गया था ।

उग मानसा नाम था शूर्माक । उनके पुत्र अन्यान्य

बालकोंके साथ खेले थे । उसने घर लौटकर पिताकी  
यस पूरी दशा देखकर बहुत ही दुःखित चित्तमें कहा,—  
पाश्चत्यकी बात है कि राजागण भोगसे पुष्ट होकर  
पशुके प्रति पापा रगमें प्रवृत्त हो जाते हैं । ब्राह्मण  
गण नात्रियोंको गृहस्थक कुन्नाके समान देखते हैं ।  
परके दरबाजा ही जिसका स्थान निर्दिष्ट है, वह  
श्राज कैसे अन्दरमें प्रवेशकर पात्रमें अन्नादिको  
भांजन किया ? कुमारगामी व्यक्तियोंके शासन-  
कर्ता कृष्ण भगवान् अपने धामको पधारनेमें जो  
अपनी मर्यादाका लंघन किया है उसके योग्य दण्ड  
में ही विधान करूंगा । जिसने मेरे पिताको अव-  
मानित किया आजमें सातवें दिन तत्क आकर  
उसे डमंगा मैं यही शाप दता हूँ । इसके बाद  
पिताके समीप आकर बिज्जलते हुए रोने लगा ।  
बालकके रोदनमें पिता शर्माककी समाधि मंग हुई ।  
उन्होंने देखा कि एक मृत सांप उनके गलेमें झुलता  
है । सांपको फेंककर मुनिने पुत्रमें पूछा—वत्स !  
तुम्हारे रोनेका कारण क्या है । क्या किसीने तुम्हारी  
कुत्र तुराई की ? बालकने सभी बातें पिताको सुनाई ।

शमीकने अपने पुत्रके इस कार्यकी तारीफ नहीं की। पर उन्होंने कहा—बड़े अफसोसकी बात है कि तुमने अज्ञानी होकर बहुत ही खराबी की। लघु-अपराधसे गुरु दण्डकी व्यवस्था की। हे मन्द ब्राह्म बालक राजा विष्णुके समान कहे जाते हैं। जिनके प्रभावसे प्रजाये सुरक्षित हो। निडर भावसे मुख-भोगती है। उनको साधारण मनुष्य समझता मुना-सिब नहीं है। राजा नहीं रहनेसे पृथ्वीमें चोर-डाकुओंके प्रभावकी वृद्धि होगी और मनुष्यगण रक्तके अभावसे जान खो बैठेंगे। तब वर्णाश्रम धर्मका पालन करना बहुत ही कठिन हो जायगा। मुतराम् मनुष्यगण केवल कृत्ता और बन्दरोंके बग़ावर कामासक्त हो अथ और कामकी सेवामें ही तत्पर हो जायेंगे और वर्णसङ्करकी उत्पत्ति होगी। धर्मव्रत परम भागवत महाराज परीक्षित भूखाश्रमसे पीड़ित हो मेरे आश्रमसे पधारें थे, उनको शाप देन मुनासिब नहीं हुआ। इसके बाद भगवानसे प्रार्थना की—हे भगवन ! आप सभीके अन्तर्यामी हैं। इस अज्ञानी बालकने आपके भक्तोंके चरणमें जो कम्प किया कृपया उसे क्षमा कीजिये। भक्त किमीसे तिरस्कृत, अपमानित, प्रताड़ित, ताड़ित या अभिशापग्रस्त होनेपर भी उसका बदला नहीं लेने। शमीक राजाके प्रति अपने पुत्रके अपराधके गिरे ही साचने लगे, पर उन्होंने राजा द्वारा उनका जो अपमान हुआ था उसके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं की। साधुओंकी विशेषता यही है कि वे लोग दुःखोंमें सुख वा दुःख प्राप्त करनेपर भी उनमें विचलित नहीं होते; क्योंकि वे अनामक्त हैं।

महाराज परीक्षित शमीक मुनिके आश्रमसे लौटकर सो रहे थे मेरा वह कार्य अत्यन्त

बुरा हुआ है। मैंने ब्राह्मणका गुरु तेज न समझकर नाच अनाथ व्याक्तका सा कार्य किया। उस कारण फौरन मुझपर कोई भयङ्कर आफत आवेगी, उसमें कुछ सन्देह नहीं है वह आफत शीघ्र ही आनेसे अच्छा है क्योंकि उससे मेरे पापका योग्य प्रायश्चित्त होगा। फिर ऐसा नीच कर्म करनेमें दिर नहीं जायगा।

महाराज ऐसा सोच ही रहे थे, कि इसी समय शमीक मुनिके एक शिष्यने आकर समाचार सुनाया कि मुनिपुत्रके अभिसम्पानसे महाराजको एक हप्तेके भीतर पृथ्वी त्यागनी होगी। उस शापको वैराग्यका कारण समझकर महाराज परीक्षितने उसे अच्छा ही समझा। उन्होंने पहिलेसे ही सोचा था कि यह मृत्युलोक तथा स्वर्गलोक अनित्य और हेय है। अब श्रीकृष्ण चरणकी ही पुरुषार्थसागर समझकर गंगा तटपर प्रायोपवेशन (अनशनव्रत) करनेकी इच्छा की। जो गंगादेवी कृष्णभगवान्के चरण-रेणु-मिश्रित तुलसी दलको बहन करती हुई तीन लोकों पवित्र कर रही है, उनको सेवा कौन व्यर्थ, जो अपना मंगलप्रार्थी है, नहीं करता है? ऐसा सोचकर महाराज समस्त आसक्तियाँ छोड़कर शान्त भावसे भगवत चरणके ध्यानमें तल्लीन हो गये।

उस समय जगत्पवित्रकारी साधु अपने अपने शिष्योंके साथ वहां पधारें। अत्रि, वशिष्ठ, ज्येष्ठ, शरद्धान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पगशर, विश्वामित्र, परशुराम, उत्तम, इन्द्रप्रसद, मेधातिथी, मुवाहु, देवल, आर्षि, मेन, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्य, कप, अगस्त्य, व्यासदेव, नारद, प्रभृति मुनि स्वयं ही तीर्थके स्वरूप है, पर तीर्थगमन के बहानेसे तीर्थोंको पवित्र करते हैं। वे लोग कृपा-

कर वहाँ पधारनस महराजने उनलोगों को यथाविधि पूजा की और उन्हें पणाम किया। मुनिलोगोंके आगम से बैठनेके पश्चात् महाराजने अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें पढ़ा - यज्ञ मेरा अधोभाष्य है किन्तु मैं ब्राह्मण जो अपने चरणगोत्रका धर्म फलते हैं, वस्तु राजकुलमें नहीं दिखकत, वे आज मुझपर आक्रमणके लिये यहाँ पधारते हैं। सब साथ तथा हाथगोत्र नियन्त्रण भगवान्ने भी मुझपर कृपा की है। क्योंकि मैं सर्वदा गृहमें आसक्त हूँ। फिर भी ब्राह्मणोंका अपमान किया है। शायद भगवान्जीने सोचा कि भय ही विषयात्माओं के चित्तके वैराग्यका मूल है। विषय वैराग्यके लिये भगवत्प्राप्तिका उपाय नहीं है। इसलिये उन्होंने ब्राह्मणोंके शापका रूप धारण किया। हे ब्राह्मणगण ! आप लोग भगवान्का शरणगत समझकर गनकों भय वत्कथा श्रवण कराइये। तत्त्वके आकर गनकों समझने से कुछ डर नहीं है। मेरा फिर जन्म होनेसे जिसमें भगवान् श्रीकृष्णमें गति, उनके भक्तोंका संग और सब जीवोंके साथ मित्रता हो, यही मेरी प्राप्ति है। ब्राह्मणोंके चरणोंमें मैं फिर प्रणाम करता हूँ। ऐसा कहते हुए महाराज पुनः ही राज्य सोचकर भागारथीके द्विचक्रन तटपर कुशासन बिछाकर यन्त्रालयके लिये बैठे। महाराजका यह कार्य देखकर देवतोंने स्वर्गमें पद्म वर्णन किया और पुनः पुनः दुन्दुभस की ध्वनि हुई। महर्षियोंने भी इस कामकी तारीफ करने हुए कहा - हे राजर्षिवर ! जिन लोगोंने भगवत्पार्षद होनेकी अभिलाषासे सार्वभौमके सिंहासनकी भी त्यागनेमें कष्ट अनुभव नहीं किया था उन्हीं पाण्डवोंके वंशधर आपके लिये यह काम कुछ कठिन या आश्चर्य पूर्ण नहीं है। इसके बाद उन लोगोंने आरसमें सोचा कि यह भक्तवर परीक्षित जबतक

शरीरको नहीं त्यागते हैं तबतक हम लोग यहाँ ही ठहरें।

महाराजने फिर मुनियोंमें कहा - राजात् वेद ही मुनिके समान आपलोग चारों ओरमें यहाँ पधारते हैं। इसीपर क्रम करना ही आप लोगोंका स्वभाव है। इसके अतिरिक्त आप लोगोंका और कुछ काम नहीं है। इसलिये मैं ईमानके साथ पढ़ रहा हूँ कि सम्पूर्ण (जो मरनेके समीप हो) के लिये हर एक अवस्थामें आपसे सम्बन्धरहित कर्त्तव्य क्या है, विशेष विचारके साथ धताइये।

मुनि लोग आपसे विचार कर रहे थे उसी समय वहाँ व्यासदेवके पुत्रभस्तराज श्री शुकदेवगोस्वामीजी अवधानक पधारि। वे बाल्य विषयमें अन्यन्त विरक्त थे। उनका कोई आनन्दका भेद भी नहीं था परन्तु व्यासराज तथा अवधुत थे। इसलिये बालक पागल समझ उनके पीछे आते थे। उनकी उम्र १८ वर्षकी थी। उनके चरण, हाथ, उर, बाह और वदन सुन्दर थे। नेत्र कर्ण तक विस्तृत और मोटे सुन्दर थी। भुजायें आजागुलविन थी। शरीर आभरण और नवयौवनके लिये अगरी कान्ति भी सुन्दर थी। सब मुनियोंने उनको महापुरुष समझ खड़े होकर अभ्यर्थना की। महाराज परीक्षितने ऐसे आतिथिक दर्शनकर उनकी पूजा की। यह देख कर बालक भाग गये। परीक्षितने ऐसे अतिथिको दर्शनकर उनकी पूजा की। शुकदेवजीने उस समयमें राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि तथा देवर्षिगणोंके बीचमें नक्षत्रवेष्टित चन्द्रमाके समान शोभा प्राप्त की।

मुनिको यथामुख बैठते हुए देखकर महाराज परीक्षितने उनके समीप जाकर विनतीके साथ पृष्टा - हे ब्राह्मण ! आप कृपया मेरा मेहमान हो यहाँ पधारें। इसलिये मैं क्षत्रियाधम होनेपर भी साधुओं के लिये आदरणीय बन गया। जिनके स्मरणसे ही

गृहस्थका घर पवित्र हो जाता है, फिर भी उन लोगोंके दर्शन, स्पर्श, चरणसेवा आदिको जा पवित्र हो जाता है उसमें कुछ कहना ही नहीं है। हे महायोगी ! तैम भगवत्समीप उपस्थित होनेसे ही असुरोंका नाश हो जाता है, वेमें ही आपके दर्शनमात्रसे ही पातकोंका कौण नाश हो जाता है। पाण्डवों व सखा भगवान की चर्चा, मन्त्र पाण्डवों पर की प्रीतिके कारणही अपने गुणों, सिद्धि व प्रभुत्व की हैं नहीं। जो मेरे अन्तर्काशमें पञ्चवक्त्राणि पापका दर्शन मिलना सम्भव नहीं होता। अतएव मैं पुत्रता व कि जिसकी मृत्यु आगन्तु है (अन्यथा विलुप्त हो नहीं है) उसके लिये तथा कर्त्तव्य है। मनुष्य भवमें ही जन्मले, जानें व मरण करने के बाद हमें यथार्थ ही हमें कृत्या करना है। आपका दर्शन प्रयत्न प्रयत्न है। आप दर्शनके समर्थक आपलाय गृहस्थक घरमें जाते हैं स्वर्गस कृपाकर मैं उस घरमें ही जन्म ही जन्म।

महाराज परमात्मने भेदा प्रकृतके बाद धर्मज्ञ भगवान् शुकदेव सधुर धर्मसे बोधने लगें। हे महाराज ! आपका घर सुन्दर है क्योंकि वह तरुण के हितार्थ है और आर्माचित पुरुषमें भी अन्तर्भाव है। जिन लोगोंमें आत्मस्वका दर्शन नहीं किया है

उनके लिये मुनिकी बहुत ही बातें हैं। उन लोगोंके नाम 'महमेधा' हैं (जो धर्मके चारों ओर धुमते रहते हैं अर्थात् महासक्त)। उन लोगोंके दिन अर्थकी चेष्टा में और रात इन्द्रियके तोषणमें ही बीत जाती हैं। वे लोग अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, रिश्तेदार या संसारी वस्तुमें ही आसक्त रहते हैं। पर इन सभी वस्तुओंकी अनित्यताके बारेमें विवक्षित अन्ध हैं। वे लोग, ये सब अनित्य वस्तुका विनाश देखकर भी उदामीन रहते हैं। अतएव जो अभय होनेकी प्रार्थना करते हैं उनके लिये भगवान् की बातें सुनना, कीर्तन करना तथा स्मरण करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है। शास्त्रोंमें भी यही कहा है कि अन्तर्कालमें नागायणकी स्मृति रहना ही सबसे अधिक फायदेमन्द है। संसारमें फरे हफ करोड़ों वर्षों भी कुछ भरोसा नहीं है पर एक मुक्तके लिये भी भगवत्स्मरण होनेसे बड़ी समय सत्यवान है। राजपि स्वर्गांग अपना आयु महत् मात्र थाकी है, ऐसा जानकर यही समय भगवत्चरणफलमें तल्लीन हो गये थे। सुतराम, हे महाराज ! आपके लिये एक हफताका समय यथेष्ट है। यह समय परमात्माकी चिन्तामें ही व्यतीत कीजिये।

## शरणागति

( गान्धर्वे आगे )

स्वरूपका (आत्माका) धर्म सेवा है, सुतरां गुलाबोंमें प्रतिष्ठित होनेसे पूर्णरूपमें शरणापन्न हो जाता है, उस समय अपने मुखकी वासना हृदयमें स्थान नहीं पाती है। अपने मुखकी वासना अर्थात् सम्भोगकी पिपासा अल्पमात्र भी हृदयमें रहनेसे परिपूर्ण रूपमें शरणागत होना असम्भव है। यदि कोई सम्प्रकारकी

चेष्टा द्वारा अनुगत करने जाय अर्थात् हृदयमें भोग बुद्धिकी प्रवृत्ति रखकर मुखसे कष्ट अनुगतका अभिनय करें तो ऐसा हालतमें वह अपनेको ही टगता रहेगा। अपने तथा दूसरोंकी टगनेकी इच्छा रखनेवाले बद्धजाय अपने तथा दूसरोंकी टग सकते



है किन्तु प्रत्ययोपा गुरुवैष्णवका प्रणाम सम्भव नहीं है।

ब्रह्मनाम कहने से ही हार्मिज्जन करने तथा भगवान् का प्रकारनेसे नरक का प्रनर्गन की क्या आवश्यकता है? स्वयं तो भगवान् को प्रकार मानते हैं, शास्त्रमें तो प्रकार की गथा लिखी हुई है। सद्गुरुके चरणपावयके प्रतिरिक्त क्या भय (वर्था भयानक) हार्मिजन नहीं होता है? शास्त्रमें भगवान् को प्रकारनेकी प्रणाली निर्धारित है एवं महाजनोंकी प्रार्थनामें भी जाना जा सकता है, किन्तु साथ शास्त्रवाच्य समर्पण कौन? अतिमूर्ख, पतल हमलोग जीवकोंट है हमलोगोंकी दाम्भिकताकी सीमा नहीं है, इसी लिये हमलोग इदयके मोनर की ओर एकदम भी नहीं देखते और न देखना चाहते। कि वहाँपर साथ शास्त्रवाच्यको समर्पणकी योग्यता है या नहीं। किन्तु केवल हमलोगोंके स्वीकार-अस्वीकार करनेमें ही भगवत् के पद गन नहीं होता, दाम्भिकताका नाम अनुर्गनकी स्वीकृति नहीं है। मूर्खमें जिस-जिस प्रकारका भाव दिखलानेमें ही कोई निष्कपट नहीं हो सकता। मूर्खताके कारण हमलोग यह बात नहीं समझते कि सर्वोत्तम साधुगुरुवैष्णवका

पणरूपमें शासन स्वीकार करनेमें तो पूरा स्वाधीनता प्राप्त होता है (जीव माया मुक्त हो जाता है) तथा स्वतन्त्रताका ठीक-ठीक सद्व्यवहार होता है (अर्थात् जीवात्मा मायामुक्त होकर भगवान् की सेवामें नियुक्त हो जाता है) नहीं तो पगधीनताकी (अर्थात् मायाके) असमर्थ श्रंखलाओंमें (अर्थात् भय और "मेरा" के बन्धनमें) बंधा रहता है। असमर्थ दोषयुक्त, रिपुगणोंके वशीभूत, मायाके दासत्वदारी लघु जीवकोंट हमलोग सद्गुरुके चरणपावयके सिवा अन्य किसीप्रकारमें भगवान् की आशा नहीं कर सकते। समीपकारकी अमुविधाओंके हाथमें उद्वेग दिलाते एकमात्र श्रीगुरुदेव ही समर्थ हैं। लघु ही गुरुके समीप जाता है, गुरु होकर गुरुके समीप नहीं जाया जाता। जिस प्रकार मूर्खोंकी परिणत बनानेके लिये ही परिणतके समीप भेजा जाता है, परिणत होकर कोई परिणतके समीप पहुँचकर लिये नहीं जाता उसी प्रकार निष्कपट होकर (अर्थात् अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षकी इच्छा छोड़कर) सद्गुरुके चरणारविन्दमें शरणापन्न होनेके अतिरिक्त नित्यकल्याणका और कोई पथ नहीं है।

### यत्किञ्चित्

वैष्णव गुरुकी आज्ञा पालन करना ही सब उष्ट्र सेवा है। यदि उन आज्ञा-पालनमें हम "दांभिक" होना पड़े, पशु होना पड़े, अनन्तकालतक नरकमें जाना पड़े—तौभी हमें ठीका (Content) करके वैसे नरकमें अनन्तकाल तक जाना चाहिये। संसार के अन्यान्य समस्त लोगोंके विन्तार्थी गुरुपादपदम

का कृपा द्वारा मुष्टाघात करके खगडन करके हम डूबते वड़े दाम्भिक हैं।

जिस मुहूर्तमें हमलोगोंका रक्त नहीं रहेंगे उसी मुहूर्तमें हमलोगोंके निकटवर्ती वस्तु समूह हमलोगोंके शत्रु होकर आक्रमण करेंगे। प्रकृत साधु लोगोंकी हथिक्या ही हमलोगोंकी एकमात्र रक्षणकर्त्री है

असत्संगम सबदां स्वभावान् अलग रहकर निरपराध होकर संख्यापूर्वक श्राद्धानाम करने चाहिये। सम्बन्धजानके साथ श्राद्धानाम करने में कोई भी बियाँ आपका लेशमात्र भी अनिष्ट नहीं कर सकता। भगवान् के नाम-भजनके सिवा और अन्य किसी उपायसे जीवोंका मज्जल नहीं होता है। श्रानाम ही साक्षात् भगवान् है। प्राकृत चक्रके कारण ही भगवान् के नाम और भगवान् में भेद दीखता है। मुक्त पुरुषगण श्रानाम को ही भगवान् जानते हैं। श्रानामसे कृति कम होनेसे विश्वपूर्वक आदरसहित नाम ग्रहण करने करने श्रानाम और श्रानामों एकही भव है यह जाना जा सकता है।

भगवान् के यहाँसे एक बार प्रसूति द्वारा पत्र प्रप्त नहीं किया जा सकता। कृष्ण-प्रेरित जनोंके हाथ ही उनका सम्बन्ध हमलोगोंको मिलता है और हमलोगोंका सम्बन्ध उनके पास पहुँचता है।

जीवोंका केश देखकर वैष्णवलोगोंका हृदय दयासे आर्द्र हो जाता है, किन्तु जीवोंका वैष्णव या भगवद्भक्ति विरोध देखते ही वे कटोर होकर उनकी उपेक्षा करने हैं। संसार जवतक भजनानुकूल रहता है तबतक वे अपनी स्त्री, पुत्र, परिदार आदिके प्रति अत्यन्त कृपालु रहते हैं। संसार जब भजनके प्रतिकूल हो जाता है, उस समय वे कटोर होकर स्त्री-पुत्रोंके कुन्दन करने रहनेपर भी उनलोगोंमें सदाके लिये विदा होते हैं। उनलोगोंका हृदय सद्धर्म देखनेसे फूलोंमें भी

कोमल और सद्धर्म विरोध देखनेसे बज्रमें भी कटोर हो जाता है। यह साध्य स्वभाव जिन पुरुषोंमें दिखलाई पड़ता है, वे ही महाबुद्धि वैष्णव हैं। जीवोंको कृष्णोन्मुख करना ही वैष्णव लोगो का प्रधान कार्य है। जहाँका प्रधान उद्देश्य है स्थूल-शरीरकी रोग निवृत्ति या बुद्धि निवृत्ति वहाँ वैष्णव-यत्ना नहीं हैं। क्योंकि उसमें केवल शौचिक उपकार होता है, निवृत्ति (स्थायी) उपकार नहीं होता है। हाँ, यह अवश्य है कि यदि इन सब कार्योंमें कृष्णोन्मुखता प्राप्त हो तो वैष्णव लोग गहरे इसकी स्वीकार करते हैं। प्राकृत पाण्डित्यसे श्राद्धानामसे सदायता मिल सकती है किन्तु प्राकृत पाण्डित्य न रहनेसे श्राद्धानाम ही नहीं होगा ऐसा कोई बात नहीं है।

सहित शक्तिकी कृपा प्रकाश ही सिद्धान्तज्ञान है। वह ज्ञान कोई अपरा विद्याकी अपेक्षा नहीं करता है। एकमात्र गुरुपादपदम की कृपासे ही वह प्राप्त किया जाता है।

हमने लेशमात्र भी वैष्णवसेवा नहीं हुई ऐसी समझकर वैष्णवसेवकमात्रों ही दोष होना चाहिये। जिस वैष्णवसे जितना ही निष्कपट दैन्य अधिक है वह कृष्णका उतना ही अधिक प्रिय है कृष्ण उससे उतना ही अधिक आकृष्ट होता है। भक्ति सिद्धान्तमें वैष्णवसेवाका विचार है एवं तादृशी भक्ति ही शोकृष्ण कर्पणी होती है। सभीको यह दृढ़ और निश्चितम्पने जानना चाहिये कि श्राद्धानाम-वैष्णवकी विरहस्मृति ही कृष्णके साथ साक्षात्कार की योग्यता प्रदान करती है।

## त्रिविध-संवाद

श्री शिवयोगपञ्चाचाय परमात्म श्री प्रान्त अन्तर  
 यामुदेव परां प्रथमपुत्र नाम प्रानी मदागत जनमानस  
 प्राविनन्त्यवदमे मदागत — अन्तराय दीर्घा  
 कीर्त्तन नाम देव । अमुक्यलाजाप्रकाशके मयमे श्री  
 प्रान्त या मयदेवके हरिकृत कीर्त्तनका विमान मया  
 हे । अत्र कोटि जनका श्रीपदवदमन्त्रप्रसादनामा  
 होकर उनके निकट आने हे । मयाके निकट वे कृपा  
 पूर्वक परमा मन्त्रोंकी कथा कहानें करवहे ।

पटनक्र।

श्रीगोविन्दवैष्णवराजसभाये प्रणयनम् आम्ना  
पटना श्रीगोविन्दसमूहमे गच्छतु श्रीगोविन्दसमूहमे  
वारको गोविन्दसमूहमे प्रणयनम् प्रवारको हरिकृष्ण  
पण्डित श्रीपाद सार्वभौम जगन्नाथ भक्तिप्रसा  
विचारार्णव श्रीपाद महादेव शायकेश्वरिसन्न स्थानमे  
हरिकृष्ण कीर्तन कर रहत है । शायकेश्वरिसन्न  
स्थानमे बहु श्रितित गुरुभान्त भद्रमोदय श्रीमदन  
प्राकृत हरिकृष्ण आम्ना कर रहत है ।

विहार उद्देशात् । अतः प्रत्येक भगवान्  
दत्त सिद्धि मदीय मठने प्रागमनकरुणा दिन कदा  
चारी जीमे हरिकथा श्रवणकर परमानन्दित  
हुए एवं शब्द भक्ति का कथा धारा पवाह रूपसे प्रवृत्त  
करने के लिये आग्रह प्रकाश किया है । य अन्तर्गत  
मांटरपर ब्रह्मचारी जीको घर चलाकर हरिकथा प्रवृत्त  
कर रहे हैं । उन्होने ब्रह्मचारी जीके निकट प्रश्न किया  
था कि किस प्रकार चित्त की शान्ति प्राप्त हो सकती  
है । इसके उत्तरमें ब्रह्मचारी जीने शास्त्र युक्ति द्वारा  
प्रत्यक्ष दर्शाया कि एकमात्र शुद्ध भक्ति  
सारांगी आश्रय करनेमें ही नित्य शान्ति मिल

महर्षि ई. एम. शान, नय बाग, दान बाग नदी  
 जल सफाई कार्यालय, नय बाग-वर्म प्रयोग  
 कार्यालय, नय बाग प्रकाश, ई. एम. शान

दिल्लीका

[illegible][illegible]

## निवेदन

भागवत-पत्रक पञ्चम वर्ष प्रसिद्ध हुआ है। इससे भागवत पत्रक का विकास साधित है कि वे लोग कृपया पंचम वर्ष की भिन्ना (चन्द्रा) एक कृपया भागवत प्रौढिषमें भेजनेकी कृपा करें।

By PROF. N. K. SANYAL, M.A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study based on the SHRAUTTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Paramahansa Srimad Bhakti Siddhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Retail Rs. 50/- 50/- prices, handsome value jacket—Price Indian Rs. 15/- Foreign 21/- net.

To be had at **SREE GAUDIYA MATH**, Ballybazar, Calcutta

### **SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)**

With commentary by Sri Keesa Goswami in Sanskrit and purport in English by His Divine Grace Srimad Bhakti Siddhanta Saraswati Goswami.

120 pages, value binding—Rs. 12-8-0

### **RELATIVE WORLDS**

A lecture delivered on the 24th August 1922 in the Sree Sri A. C. S. Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace—Rs. 10-0-0

**A few words on Vedanta** by His Divine Grace—Rs. 10-8-0

**The Vedanta** in Morphology and Etymology by His Divine Grace—Rs. 10-8-0

### **THE BHAGBAT**

In Philosophy, in Ethics, and in Theology. New reformed edition with an appendix on Sri Caitanyadev's Philosophy. Bound in Ropes. One Hundred pages—Card—Twelve Annas

( बंगला में )

### **श्रीमद्भागवतम्**

इदं हि श्रीकृष्णदैवायन वेदव्यास - प्रणीत, भूत, धीमन मध्वनायकृतं तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत साराथदर्शिनो टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथा व विवृत्यादियुक्त । प्रति स्कन्धके आरम्भमें इस स्कन्धका प्रतिपाद कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है । श्लोकमूला, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित । प्रथममें १२वां स्कन्धतक लघु सम्पूर्णरूप में शेष हो गया है । भिन्ना प्रथममें १२वां स्कन्धतक १० ) १०म स्कन्ध सम्पूर्ण ( बिना बंधा हुआ ८ ) और कपड़की बंधाई ९ ) मात्र ।

### **श्रीश्रीचेतन्यचरितामृत**

श्रील कविराज गोस्वामीकृत । श्रीभक्तिकिनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रमुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं । श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पंथारके पूर्व संक्षिप्त अभिप्रेय संयोजित हैं । प्रत्येक अध्याय के आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है । श्लोक, पंथार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृहत् सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी समन्वित इस तरहका अमृतप्रव संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है । उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मृत्तांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय २५०० पृष्ठमें सम्पन्न है । भिन्ना बिना बंधा हुआ ६ ) कपड़की बंधाई ७ ) मात्र ।

### **तत्तन्त्रभागवत**

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रमुपाद-रचित गोड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आख्यान— छाउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कैव १३४० पृष्ठ भिन्ना—६ ) मात्र ( बिना बंधा हुआ ) ।

## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट निधिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सागरमर्ष उपदेशमें परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यवा अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आधिमायिक पहल व बाद मारन व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समस्त सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व आलोचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र समाके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भित्ति १।।

प्रोपिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पाठ बागबाजार, कलकत्ता—श्रीमाधवगौड़ीयमठ, पोस्ट बोंयारी, ढाका।

### सुरम्भती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रीविरागुपाद परमहंस श्रीजीवाशुक्तिमिहान्त सुरम्भतीगोस्वामी प्रभुपादका भुवन-के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्गतसर-जड़नाति पिपाम् व्यक्तिको इस ग्रन्थके पाठमें युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्ग का फल जान कर सकेंगे। वैभवपर्यका प्रथम खण्ड गायल ८ पेज। आकारमें अष्टक कामजपर उत्तमरूपमें सुदृढ, उदक पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भित्ति १।।

### ‘सामयिक-संख्या’—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक चित्रण व एकवचन चित्र-शोभन व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धमें सुसज्जित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें स्वसाधारणोंके लिये भित्ति १।। आना।

### ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भित्ति ११।। मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाधवगौड़ीयमठ।

### अणुभाष्यम्

बार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तानपर्य श्रीमन्मन्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बगभाषामें सर्वप्रथम सम्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रतिपादका श्रीमन्मन्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वसञ्चरी दीपा, उसका बंगला अनुवाद व तानपर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मालिका क्रममें ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भित्ति २।। मात्र।

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

५ त्रिविक्रम  
गौराङ्ग  
४५३



ज्येष्ठ कृष्ण ५  
संवत्  
१८८६ वि०

स वे पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणदृष्टिगणना फलाभिमन्थान-रहिता ऐकान्तिकी  
स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उद्भूत होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—  
उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

प्रति संख्या } मन्मादक—पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री वी० ए० { वार्षिक  
-॥

Editor :—Pundit Sripad Rupbilas Brahmachari, Bhaktishastri B. A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

## विषय सूची

| विषय                               | पृष्ठांक | विषय                             | पृष्ठांक |
|------------------------------------|----------|----------------------------------|----------|
| श्रील जगन्नाथदाम बाबाजी महाराजकी   |          | भजन                              | .... ५४  |
| उपदेशावली                          | ५५       | नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदाम (३) | .... ५६  |
| श्री श्रील आचार्यदेव और राय बहादुर |          | गुरु-सेवा                        | ... ५७   |
| मदन गोपाल मीर्झा                   | ... ५८   | विविध-संवाद                      | .... ६३  |

## भक्तिके अन्यान्य पत्र

- १ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अनन्त वामुदेव परब्रह्मसूयण गोस्वामी महाराज सम्पादित श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होती हैं। वार्षिक अंग्रेजी पालिक पत्रिका। प्रांत एकादशीको कलकत्ता बागबाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होते हैं। भिन्ना १॥ डाक महसूल समेत।
- २ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद मुन्दरानन्द चिन्ताविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला साप्ताहिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिन्ना ३) डाकस्वचं समेत।
- ३ दैनिक नदीया-प्रकाश (बंगलापामें प्रकाशित) भागमें सर्वत्र प्रचारित—नदीया जिलेकी एकमात्र दैनिक पत्रिका है। श्रीधाम-मायापुर श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होती हैं। वार्षिक भिन्ना ४) डाक स्वयं समेत ६) मात्र।
- ४ परमार्थ—श्रीयुक्त गुरुनाथ महापात्र द्वारा सम्पादित उत्कल पालिक। कटक श्रीमन्निदानन्द मठसे प्रकाशित। वार्षिक भिन्ना १॥ मात्र डाक स्वयं समेत।
- ५ श्रीगौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद मुन्दरानन्द चिन्ताविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला पालिक। कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिन्ना १॥०) मात्र डाक स्वयंके साथ।

## SREE CHAITANYA MAHAPRABHU

The teachings and characteristics of Sree Manmahaprabhu have been clearly published in this book. It has been written by Tridandi Swami Sreemad Bhakti Pradip Tirtha Maharaj. Price Rs. 4

To be had: Nand Kishore Bhaktishastri,  
Sree Jagpath, Sree Mandir  
P. O. Sree Mayapur (Nadia)

## विष्णुपाद श्रीमध्व

गौड़ीय सम्पादक-सम्पादित, इस ग्रन्थमें श्रीमध्वाचार्यका जीवन चरित, मिहान्त और शिक्षा भली भाँतिमें आलोचित हुआ है। यह एक अपूर्व मौलिक विराट ग्रन्थ है। भिन्ना २) मात्र।

## श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें ३० विष्णुपाद श्रीश्रीमद भक्तिमिहान्त-परस्वनी गोस्वामी प्रभुपाद रचित पद्यावली श्रील आचार्यदेव विरचित "सौरभ" नामक भाष्यके सहित प्रकाशित हुआ है। श्रील प्रभुपादके बहुतसे अंकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं। भिन्ना ॥०) आठ आना मात्र।

## श्रीश्रीभक्तिविनोदवाणीविभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंमें सम्बन्ध, अभिषेक और प्रयोजनाकारमें प्रश्नोत्तररूपमें उनका वाणी-सङ्कलन। भिन्ना ३) मात्र।



वर्ष ५

श्रीगौडीयमठ, मीठापुर (पटना)

ज्येष्ठ कृष्ण १, १९७३ सं० १९९६ वि० ८ मई सन १९३९ ई०

संख्या ४

## श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी उपदेशावली ।

- १ कभी भी मर्कट लोगोंके (अधिक विरक्त व्याधि उपस्थित होकर भी उत्कृष्ट स्वाद्यद्रव्य न योषित्मङ्गी कपटी व्यक्तियोंके) साथ नहीं मिलना । पाकर आपमें आप भाग जाती है । बाबू और
- २ कभी भी विषयीका अन्न ग्रहण नहीं करना, विलासी लोगोंके शरीरमें वह आदर पाकर अधिक ग्रहण करनेसे विषयी हो जाओगे । दिन अवस्थान करती है ।
- ३ गौधामके कृपा करनेमें ब्रजवास होता है । ७ 'सेवाकी है' कहकर हृदयमें भी ढोल पीटनेका यत्न नहीं करना । उस समय फिर उसको
- ४ सांसारिक अमङ्गलका भगवानकी दया समझना । सेवा नहीं कहा जायगा ।
- ५ हृदयमें कृष्णसेवके लिये अनुराग नहीं, ८ निर्जन-भजनकी छलनाकर आलसी नहीं होना ।
- ६ भजनाकाङ्क्षी व्यक्तियोंके शरीरमें कष्टकर फेरनेकी अपेक्षा वैष्णव सेवाके लिये बागीचा



स्वयनता और पेटोंको पटाना अधिक मङ्गलजनक है ।  
वैष्णव-सेवासे नामसे निष्कपट रुचि होगी ।

१० वैष्णवोंका अनुकरण मत करना, नहीं  
तो जलकर मर जायेंगे; उनको अकपट सेवाके  
लिए प्रार्थना करें ।

११ हरि-सेवाका अर्थका भोग करनेसे सबसे  
अधिक पापण्ड होता पड़ता है ।

१२ साधारण चोरका शायद कभी मङ्गल  
होता है, किन्तु गुरु-वैष्णवका अर्थका भोग करने-  
वालेका कभी भी मङ्गल नहीं होता ।

१३ सभी भगवत्तत्वोंके मध्यमें कृष्ण जैसे सबसे  
अधिक वञ्चक हैं, उन्हीं प्रकार सभी वैष्णवोंसे  
रूपानुग-वैष्णव सबसे श्रेष्ठ वञ्चक हैं ।

१४ अन्याभिलाषके साथ गुरु-वैष्णवकी सेवा  
करनेसे वे सेवकाभिमानीको लाभ प्रजा-पतिपटा  
देकर अलग हो जाते हैं ।

१५ जिसने मेरी सेवा की है, उसको पेटके लिये  
कोई कष्ट पाना नहीं होगा, या चिन्ता करना नहीं  
होगा । जो मेरे निकट उदर-पूर्तिका रसद अदाकर  
ही सन्तुष्ट हुआ, वह कृष्ण-सेवा नहीं पायेगा ।

१६ प्रत्येक गृहस्थको गुरुपादपद्मका आश्रय कर  
गिरिधारीका अर्चन करना कर्त्तव्य है ।

१७ अपराधशून्य होकर श्रीनाम-कीर्तन करना  
ही महाप्रभुकी शिक्षाका मार है ।

१८ गुरु वैष्णवका अनुगत होकर गौरनाम  
प्रचार करना ।

१९ आनुगत्यही श्रेष्ठ सदाचार है । स्वतन्त्रता  
ही भ्रष्टाचार है ।

२० हरिसेवासे कर्त्तव्यवृद्ध और सन्तोष

रहनेसे प्रकृत सेवार्थि प्रकाशित नहीं होती ।

२१ सर्वदा सभी प्रकारसे सेवा करके भी  
अतृप्तिबोध (असन्तोष) मालूम होनेसे सेवार्थिका  
उन्मेष होता है ।

२२ रातको जागकर साधुसङ्गमें एकादशी पालन  
करना ।

२३ प्रति एकादशीको आत्मपरीक्षा करना कि  
तुम्हारा निष्कपट हरिभजनमें आप्रद बढ रहा है  
या अन्याभिलाष बढ रहा है, इसको विशेषरूपसे  
अनुसन्धान कर गुरु वैष्णवोंके चरणोंमें आत्म-  
निवेदन करना ।

२४ हरिभजन करनेके लिये सहिष्णु, अमानी  
और मानद होना एवं शत बाधा और विघ्नसे भी  
परमोत्साही रहना ।

२५ एक मुहूर्त भी हरिकथा-श्रवण-कीर्तन और  
वैष्णव-सेवाके बिना नहीं रहना, रहनेसे माया  
ग्राम करेगी ।

२६ सभी वस्तु और व्यापारके द्वारा विष्णु और  
वैष्णवकी सेवाका अनुसन्धान करना ।

२७ सिद्धान्त-विरोध और रसाभासकी गन्धभी  
रहनेसे वैष्णवाधिकार प्राप्त नहीं हुआ ऐसा जानना  
होगा ।

२८ परञ्छिद्रान्वेषणके बदले अपने दोषोंको दूर  
करनेकी चेष्टा करना ।

२९ शरणागत नहीं होनेसे श्रवण और गुरुसेवाके  
बिना मायाजाल छिन्न नहीं होता ।

३० कृत्रिम स्मरण-पद्धति रूपानुग-पथ नहीं है ।

३१ श्रीनाम-कीर्तन-द्वारा स्वाभाविक स्मरण ही  
गौड़ीय लोगोंका सिद्धान्त है ।

## श्री श्रील आचार्यदेव और राय बहादुर मदन गोपाल सार्हाना ।

सार्हाना सा:—हरिनाम-ग्रहण करनेके समय कितने ही को प्राणायामादि करने देखा जाता है ?

आचार्यदेव—वह शुद्धभक्ति पथ नहीं—श्रीनाम-कीर्तनका पथ नहीं, अभक्ति पथ है। ये लोग कभी भी हरिनामकी कृपा प्राप्त नहीं करेंगे।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनाहत युष्मदङ्घ्रयः ॥

सार्हाना सा:—मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हरिनामग्रहणका पथ सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है।

आचार्यदेव:—केवल श्रेष्ठ ही नहीं यही एकमात्र वास्तव सनातन पथ है। तब अनुकूल विषयका सङ्कल्प, प्रतिकूल विषयका वर्जन करके हरिनाम ग्रहण करना होगा।

सार्हाना सा:—कुछ लोग मारे दिनके कार्यादिके बाद सांसारिक संभटसे पृथक् होकर किसी निर्जन स्थानमें हरिनाम करते हैं, तो क्या वह उनका कार्य अनुकूल नहीं होता ?

आचार्यदेव:—यदि अनुकूल कार्य हो, तो वह साधुमङ्गल-रहित नहीं होगा।

सार्हाना सा:—सब समय तो साधु लोगोंके साथ बैठा नहीं जाता ?

आचार्यदेव:—सब समय साधु-मङ्गल करना होगा। साधु मङ्गलके लिये, और साधु लोगोंकी वाणी श्रवण करनेके लिये आकाशपाताल मथन करना होगा, एक महर्त्त भी साधु-मङ्गल बूटनेसे फिर हरिनाम नहीं होगा। दुष्ट मन या उसकी अधीश्वरी माया या प्रकृति या संसार विषय भोग या त्यागवासना उसको कवलित कर देगी।

सार्हाना सा:—यह तो व्यवहारिक बात नहीं

है। किस प्रकारसे मनुष्य सर्वज्ञ साधु-मङ्गलमें हरिनाम ग्रहण कर सकता है ? उसको तो अन्यान्य कार्यसमूह भी है ?

आचार्यदेव: साधु लोगोंके मङ्गलमें हरिनाम श्रवण-कीर्तन करना ही एकमात्र कार्य है, जीव लोगोंके पक्षमें और कोई काम ही नहीं। २४ घंटोंमें चौबीसों घंटे साधु-मङ्गल और हरिनाम कीर्तन करना होगा।

सार्हाना सा:—I want a practical solution, मैं एक व्यवहारके योग्य मार्ग (वा निर्णय) चाहता हूँ।

आचार्यदेव:—The so-called practical aspect is direly erroneous, फलकामना-मूलक कर्म वा भोग ही क्या Practical aspect है ? और हरिसेवा—जो एकमात्र नित्य वास्तव सत्य है, वह theory वा utopian etherial speculation मात्र है ? ( विकृत मस्तिष्कके लोगोंकी कल्पना वा अवास्तव और शून्य मतवाद विशेष है ) ?

सार्हाना सा:—मान लीजिये कि कोई ऑफिसमें कार्य करता है, उसको मान आठ घण्टे तक ऑफिसमें कार्य करना पड़ना है, कुछ देर तक विश्राम करना पड़ना है, और कुछ देर तक सोना पड़ना है। वचे हुए समयमें वह किस प्रकार हरिनाम कर सकता है ?

आचार्यदेव:—वह किस लिये ऑफिसका कार्य, विश्राम, निद्रा-उपभोग वा आहारादि करता है ? क्या अपनी आत्मेन्द्रिय-तृप्तिके लिये, या पुरुषोत्तमकी इन्द्रिय-तृप्तिके लिये ? इसीका सबसे पहले

निर्णय होना चाहिये। यदि पुरुषोत्तमकी इन्द्रिय-  
नृपिके लिये ये सब कार्य साधित होते हैं, तो  
हरिनाम-ग्रहणके अनुकूल कार्य हुआ; और यदि  
इन्द्रिय-तर्पणोद्देश्यसे मायाबन्धन वृद्धिके लिये  
हो, तब परमेश्वर क्रियाके अनुष्ठानमें हरिनाम किस  
प्रकार हो सकता है ?

सार्दाना सा.—मैं यदि भगवानकी सेवाके लिये  
ही सब कुछ करता हूँ, ऐसा मनमें समझ लूँ ?

आचार्यदेव—केवल मन-ही-मन मनको Hood  
wink कर लेनेसे वा आरोप वा कल्पना करनेसे  
ही हरिभजन नहीं हो सकता, वास्तवमें ऐसा विज्ञान  
लाभ करना चाहिये।

सार्दाना सा.—प्राथमिक पक्षमें वह किस  
प्रकार सम्भव हो सकता है ?

आचार्यदेव—साधुके सङ्गमें रहकर श्रद्धा-पूत  
सेवोन्मुख कर्णोंके द्वारा उसकी शुश्रूषा करने करते  
यह सम्भव हो सकता है।

सार्दाना सा.—जो लोग महापुरुष हैं उनको  
तो आहार, निद्रा, विश्राम प्रभृतिमें समय व्यतीत  
करना पड़ता है तब वे किस प्रकार २४ घण्टे  
हरिनाम कर सकते हैं ?

आचार्यदेव—जो कृष्णके सम्पूर्ण शरणागत  
हैं, उनलोगोंकी समस्त चेष्टा ही हरिनाम-कीर्तन-पर  
है। वे आहार, निद्रा, विश्राम, भ्रमण, शयन सभी  
कार्यमें ही हरि कीर्तन करते हैं, यह मायाबद्ध जीव  
समझ नहीं सकता है। मुक्त पुरुष आत्मिक कार्य  
करते समय भा हरि कीर्तन कर सकते हैं। ठाकुर  
भक्तिविनोदने विचारकका कार्य करते समय भी  
सर्वेन्द्रियद्वारा सर्वदा हरि कीर्तन किया है। शरणा-  
गत हरि कीर्तन करनेवाले समझते हैं कि हरिनाम  
प्रभु ही एकमात्र सेव्य वस्तु हैं। उनकी सेवाके

मिवाय उनका और कोई कार्य नहीं है। उनकी  
सेवाके अनुकूल ही वे सभी कार्य करते हैं। अकपट  
शरणागत हरिनाम-ग्रहण करने वालेका विचार  
ही ऐसा है। यह कल्पना वा आरोप नहीं है।

सार्दाना सा.—ऐसा विचार क्या आसानीसे  
आ सकता है ? धीरे धीरे होनेकी सम्भावना है।

आचार्यदेव—कृष्ण और उनके भक्त साधु  
लोगोंकी कृपासे बहुत आसानीसे भी आ सकता  
है। धीरे धीरे आवेगा ऐसा समझकर इतर कार्योंमें  
व्यस्त रहनेमें काम नहीं चलेगा। सर्वदा साधु लोगों-  
के सङ्गमें मुहूर्त भावसे शरणागतिके पथपर चलते-  
चलते इस प्रकारकी चित्त वृत्तिका विकास होगा।

सार्दाना सा.—But during the transi-  
tion period he should have recourse  
to निर्जन-भजन (किन्तु अवस्थान्तर प्राप्ति कालके  
शीघ्रमें तो उसको कुछ समय तक निर्जनमें रहना  
चाहिये) ?

आचार्यदेव—उस निर्जन स्थानमें कौन उसे  
पथ दिखलावेगा ? वह तो उस समय दुष्ट मनके  
पल्लवमें पड़ जावेगा ? उसका दुष्ट मन उसे अकेला  
पाकर उसके ऊपर सवार होगा—प्रभुत्व करेगा।  
उस समय वह किसका परामर्श लेकर चलेगा ?  
अपना परामर्श अर्थात् दुष्ट मनके परामर्शसे  
चलनेसे तो वह मारा जायगा। केवल सांसारिक  
कार्य अर्थात् जञ्जालसे कुछ समय तक दूर रहा,  
किन्तु साधु लोगोंके सङ्गमें श्रवण-कीर्तन न कर दुष्ट  
मनका ही सङ्ग किया,—इस प्रकार निर्जनतासे ही  
क्या उसका मन वशीभूत होगा वा उन्नति होगी ?  
जिस प्रकार जागतिक शिक्षाक्षेत्रमें Private tutor  
से regular coaching ग्रहण करना पड़ता  
है, दुष्ट मनको दमन करनेके लिये भी उसी प्रकार

साधु-गुरुके निकट regular coaching वा training ग्रहण करना पड़ता है। साधु-गुरुकी वाणी श्रवण करते-करते दुष्ट मन क्रमशः आनुपङ्गिक भावसे दमित होगा अर्थात् अनर्थ-निवृत्ति होगी एवं क्रमशः हरिनाममें रुचि उत्पन्न होगी। इसीलिये श्रीचैतन्यदेवका उपदेश है कि—

मजातीयाशये भिगधे सार्धो सङ्गः स्वतोदरे ।

श्रीमद्भागवतार्थानामाभावाद् रसिकैः सह ॥

(मः रः मिः)

एकही जातीय वासनाद्वारा भिगध, पर अपनेसे श्रेष्ठ साधु लोगोंका सङ्ग करेगा; उसी प्रकार साधु रसिकगणोंके साथ ही श्रीमद्भागवतका अर्थ आभासन करेगा।

सार्हाना साः—मैं इसे अस्वीकार नहीं करता हूँ। साधु-सङ्गकी प्रयोजनीयताका यथेष्ट स्वीकार करता हूँ। किन्तु ही उसको करते हैं। किन्तु हरिनाम ग्रहण करनेके समय साधु सङ्गकी क्या आवश्यकता है—केवल साधु नामाक्षर उच्चारणके द्वारा नाम-ग्रहण नहीं होता ?

असाधु-सङ्गे भाई कृष्णनाम नाहि दय ।

नामाक्षर बाहिराय बटे, नाम कसु नय ॥

कसु नामाभास हय, सदा नामापराध ।

ये सब जानिबे भाई, कृष्णभक्तिर बाध ॥

यदिः करिबे कृष्णनाम, साधुसङ्ग कर ।

भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-वाञ्छा दूरे परिहर ॥

‘असाधु सङ्ग’ भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि कामी लोगोंका सङ्ग और फल्गुवैराग्यपर निर्जनतारूप दुष्ट मनके सङ्ग को कहते हैं। साधु लोगोंके सङ्गमें कौन नामाभास, कौन नामापराध, और कौन शुद्धनाम है यह प्रति क्षण जान लेना चाहिये। दुष्ट मन प्रति मुहूर्त हमलोगोंको आवृत्त और विक्षिप्त करनेकेलिये

प्रस्तुत रहता है। मायाकी आवरणात्मिका और विक्षेपात्मिका वृत्तिसे दुष्ट मन कभी भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता। इसीलिये सर्वदा साधु सङ्गमें श्रवण-कीर्तन करना होगा।

सार्हाना साः—गुरुदेवके निकटसे जिसने एकबार हरिनाम श्रवण किया है एवं उनका उपदेश श्रवण किया है, उसको सर्वदा स्मरण रखनेसे ही तो कार्य हो सकता है। प्रति मुहूर्त साधु-सङ्गका क्या प्रयोजन है ?

आचार्यदेव—गुरुदेवके निकटपट अनुगत और अपनेसे श्रेष्ठ वैष्णव लोगोंका सर्वदा सङ्ग न करनेसे गुरुदेवका उपदेश स्मरण नहीं रहता। बीसों वर्ष तक अद्वितीय सद्गुरुके सहस्र-सहस्र उपदेशोंके श्रवण करनेका अभिनय करके भी बहुत लोग विपथगामी हो गये हैं—दुष्ट मनके कवलमें कवलित हो पड़े हैं। इसीलिये साधु सङ्गके निर्वाहप्रवाहमें सर्वदा अवस्थान करना होगा, सर्वदा सेवान्मुख करके द्वारा अपनेसे श्रेष्ठ साधुकी शुश्रूषा करनी होगी, केवलमात्र mechanically हरिनामाक्षर उच्चारण करनेसे नहीं होगा। जहां हरिनाम ग्रहणके साथ ही साथ हरिनामके सम्बन्ध में clear conception, perception वा realisation और चेतनमयी भक्ति-वृत्तिका Progress नहीं, जहां श्रीनामके परिस्तरणोंके प्रति अकपट अनुगत वृद्धि नहीं वह Static वा Stagnant अवस्था मात्र है। श्रीहरिनाम सेवाके द्वारा आत्माका dynamic devotional Progress होगा—आत्मा inert वा Stagnant अवस्थामें नहीं रहेगा। जीवात्माकी सेवावृत्ति (dynamic) है static नहीं।

सार्हाना साः—हाँ, यह बात स्वीकार करता

है। बहुत ठीक बात है।

आचार्यदेव—सर्वदा अपनेसे श्रेष्ठ वैष्णवोंका सङ्ग करना होगा। उनका regular tutelage coaching और training ग्रहण करना होगा। उस प्रकारके साधुको eternal tutor बनाना होगा—जो साधु हमारी मुशामद नहीं करते, हमको कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा देकर वञ्चना नहीं करते सद्गुरु भी वैसी बन्तु देकर बहुत बार हमलोगोंकी परीक्षा करते हैं, किन्तु अकपट होकर अपनेसे श्रेष्ठ और निष्कपट साधु लोगोंका सङ्ग करनेसे गुरुदेवकी उस परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकते हैं, उनकी वञ्चनामें पतित नहीं होना पड़ता। राय बहादुर, आप श्रील प्रभुपादसे सम्बन्धयुक्त हैं आपको अति विनती भावसे मैं यही निवेदन कर रहा हूँ कि हमलोगोंका दिन बहुत शीघ्रतापूर्वक शीतता जाता है, हमलोगोंको इस समय अकपट होकर अनन्य चिन्त होकर हरिभजन करना होगा श्रील प्रभुपादकी अहेतुकी, अभीम कपाका भिखारी और उससे अभिषिक्त होना होगा।

सार्हना साः—आप मेरे प्रति विशेष कृपा रखते हैं। मैं आपके उपदेशानुसार यथामाध्य चेष्टा करूँगा।

आचार्यदेव—आप वास्तवमें कौन हैं, आपका स्वरूप क्या है। यह कृपापूर्वक एकवार उपलब्धि करनेकी चेष्टा कीजिये। आप स्वरूपतः श्रीकृष्ण-चरणमें उत्सर्ग करने योग्य सुनिर्मल शुभ्र पवित्र कुसुम हैं। आपकी जरासृन्त्य नहीं है, आप पञ्चनद वा युक्तप्रदेशवासी नहीं हैं, आप पुरुष वा स्त्री नहीं हैं, आप मृदु वा बालक नहीं हैं। आपको शोक-मोह-भय नहीं है। आप श्रीगुरुपादपद्मके पद स्वच्छ नैवेद्य हैं। पृथ्वीका कोई निःस्वार्थी बन्धु वा आत्मीय-

स्वजन भी आपको यह सब बात नहीं कह सकता है। जगतके सभी व्यक्ति आपको Commercial interest वा bartering system का ही (वर्तित वृत्तिका) परामर्श ही देंगे। मैं नम्रतापूर्वक कर जोड़ कर आपकी प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप अपने प्रकृत नित्य चेतनमय आनन्दमय स्वार्थका अनुसन्धान कीजिये। आप पूर्ण प्रस्फुटित पुष्परूपसे श्रीगुरुगौराङ्गके श्रीचरणमें आत्मनिवेदन कीजिये।

सार्हना साः—मैं कुछ ग्रन्थ पढ़ना चाहता हूँ, अंग्रेजी और हिन्दी ग्रन्थ होनेसे सुविधा होगी।

आचार्यदेव—ग्रन्थ पढ़नेके पहले जो भगवद्-जनमें सर्वदा प्रतिष्ठित हैं, ऐसे Living source के निकटसे भगवत्प्रसङ्ग श्रवण करना और अन्वेषण है।

गिरि महाराज—आज हरिवामर है, आचार्यदेव निरम्बु उपवामी हैं। आगामी कल और आलोचना हो सकेगी।

सार्हना साः—आज एकादशी ?

आचार्यदेव—हाँ, आज हरिका वामर हरिका दिन—साग दिन हरिकथा श्रवण-कीर्तनका दिन है। आज आहारादिके लिये यत्न न कर साग दिन हरिकथामें नियुक्त रहना होगा।

सार्हना साः—आज क्या कुछ ग्रहण नहीं किया जाता ?

आचार्यदेव—एकान्त असमर्थके लिये सामान्य दुग्धफलादि अनुकल्पकी व्यवस्था है, किन्तु निरम्बु उपवास ही विधि है।

सार्हना साः—आप जबतक यहाँ रहेंगे, प्रति-दिन जिसमें मैं आपका सङ्ग पा सकूँ इसके लिये चेष्टा करूँगा। किन्तु इन कई दिनोंके सिवाय दूसरे समय, जब आपके निकट नहीं आ सकूँगा,

उस समय किस प्रकार आपकी सेवा कर सकता हूँ ?

आचार्यदेव— श्रीगुरुपादपद्मसे मुनी हुई जाँ सब कथा आपके निकट निवेदन की आप वह सब अपनी भाषामें यथामाध्य लिपिवद्ध कीजिये; उसका सशोधन कर दिया जायगा, ऐसा होनेसे ही आप समझ सकेंगे कि कहाँ कहाँ defect वा deficiency है। इससे ग्रन्थ पाठसे भी आपका अधिक उपकार होगा; क्योंकि यह direct training, regular coaching है। मैं आपकी और क्या सेवा कर सकता हूँ, कहिये ?

सार्हाना साः— मैं कल फिर आपके समीप आकर आपकी वाणी श्रवण करूँगा।

आचार्यदेव— आपके निकट प्रार्थना है कि स्वार्थगतिकी सेवासे लाभवान होइये—प्रतिदिन

जिससे भजनमें उन्नति लाभ कर सकें, इस प्रकार रद्द सेवान्मुख होइये। क्योंकि समय तेजीसे बीतता जा रहा है।

सार्हाना साः— मैं नहीं समझता, इसीलिये वृथा कार्यमें कितना मूल्यवान समय नष्ट कर देता हूँ।

आचार्यदेव— मुझे स्मरण है आपने मुलतान-से गत १६३३ खृष्टाब्दकी १ ली जनवरीको गुरुपदाराजके (श्रीश्रील प्रभुपादके) निकट एक पत्र लिखा था। गुरु महाराजने मेरे द्वारा ढाकासे उस पत्रका उत्तर लिखवाया था।

सार्हाना साः— हाँ, मुझे स्मरण हो रहा है। मैं उस समय आठ मासकी छुट्टी लेकर मुलतानमें था। आपका उपदेश मुनकर सचमुच ही जान हुआ कि आपने श्रीगुरुमहाराजकी कृपा उपलब्धि की है। मैं कल फिर आऊँगा। दण्डवत।

## भजन

आमार (मेरा) जीवन, सदा पापे रत,  
नाहिक (नहीं है) पुण्ये र लेश।

परेरे (दूसरेको) उद्वेग, दियाछि जे कत,  
दियाछि जीवेरे क्लेश ॥१॥

निज सुख लागि, पापे नाहि डरि  
दयाहीन स्वार्थपर (स्वार्थी)।

पर सुखे दुःखी सदा मिथ्या-भाषी,  
परदुःख सुखकर ॥२॥

अशेष कामना हृदि (हृदयमें) माझे मार  
क्रोधी दम्भपरायण  
मदमत्त सदा, विषय मोहित,  
हिंसा गर्व विभूषण ॥३॥

निद्रालस्य-हत, मुकार्ये विरत,  
अकार्ये उद्योगी आमि।

प्रतिष्ठा लागिया, शाठ्य (कपटताका) आचरण,  
लोभहत (लोभी) सदा-कामी ॥४॥

ए हेन (ऐसा) दुःखीन, मञ्जन-वर्जित,  
अपराधी निगन्तर

शुभकार्यशून्य, सदानर्थमना,  
नाना दुःखे जर जर ॥५॥

• वार्द्धक्ये (वृद्धापेमें) एखन, उपायविहीन,  
ताने दीन अकिञ्चन (निष्किञ्चन)।  
भक्तिविनोद, प्रमुर चरणे,  
करे दुःख निवेदन ॥६॥

## नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदास (३)

भागवतके पृथ हो सभ्याओंमें नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदासके गुणोंका कुछ कुछ कीर्तन किया गया है। भक्तका गुण-गान करनेमें आत्म-मङ्गल होता है एवं हरि-भक्ति प्राप्त होती है। इसलिए इस प्रबन्धमें भी उसी विषयकी आलोचना की गयी है।

महाभागवत ठाकुर हरिदासके निकट जाकर जब बाह्यगोले कहा कि आपकी गुफामें एक महा-नाग रहता है जिसकी ज्वालामें यहाँपर कोई ठहर नहीं सकता, और इस कारण उस भजनस्थानको छोड़ देनेके लिये उससे अनुरोध किया तब ठाकुर हरिदासने कहा कि मैंने तो किसी प्रकारका विषय ज्वाला अनुभव नहीं की परन्तु जब आपलोग मेरे लिये व्यस्त हैं तब आपलोगोंके मन्त्रोंके लिये मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। आपलोग अब चिन्तारहित हो कृष्ण गुण-गान कीजिये। महाभागवत ठाकुर हरिदासके ग्यान त्याग करनेके मङ्गलको सुनकर महानाग सभ्या समय उनके भजन कुटीके गढ़ेमें निकलकर सबोंके सामने ही अन्य स्थानको चले गये। सर्पके चले जानेके उपरान्त वहाँपर और ज्वाला नहीं रही जिससे विप्रगण अत्यन्त आनन्दित हुए।

अब उनकी एक और अद्भुत लीला सुनिये। एक दिन किसी एक बड़े आदमीके सान्द्रपर मन्त्रके प्रभावसे आविष्ट एक सँपेरा, बिपैले दांत खड़े हुए सर्पके साथ, नाना प्रकारसे नृत्य कर रहा था और उसके चारों ओर उसके उच्चरित मन्त्रके प्रभावसे मुग्ध होकर उसके साथी लोग भाल, मृदङ्गादि बाजे बजाकर उच्च स्वरमें गीत गा रहे थे। दैवात् वहाँपर ठाकुर-हरिदास पहुँचे

और एक ओर खड़े होकर नृत्य देखने लगे। उस समय नागराज (वामुकि, अनन्त) मन्त्रके प्रभावसे मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट होकर आनन्दमें नाच रहे थे और कालिय-दहमें कालिय-सर्पके ऊपर चढ़कर जगद्गुरु कृष्णने जैसा ताण्डव नृत्य किया था, वैसा ही भाव अवलम्बन कर सँपेरेके साथी लोग उच्च स्वरमें कालिय-नागके प्रति भगवानके दण्डदानके बहाने महादया मूचक गीत गा रहे थे। अपने प्रभुकी करुणा-मूचक गीतमें मुग्ध होकर उद्दीपनके कारण ठाकुर-हरिदास प्रेमानन्दसे मूर्छित हो गये और उनका श्वास-प्रश्वास रुक हो गया। कुछ देरके बाद चेतना प्राप्त कर ठाकुर आनन्दके सारे हुङ्कार कर नृत्य करने लगे। महाभागवत वैष्णव ठाकुर हरिदासको कृष्ण प्रेमावेशमें नृत्य करने देखकर अनन्त देवाविष्ट सँपेरा मन्त्रमके साथ एक ओर खड़ा होकर उनकी अद्भुत लीलाको देखने लगा। श्रीकृष्ण-प्रेमके आवेशमें ठाकुर-हरिदास अप्राकृत अश्रु-कम्प-पुलकान्वित अप्राकृत शरीरमें तन्मय होकर दुष्ट सर्पकुलमें उत्पन्न महाकूर कालियनागके प्रति कृष्णकी अतुलनीय महादयाकी बात श्रवण एवं स्मरण करते २ पृथ्वीपर लोटने लगे और रोने लगे और उन्हें घेरकर सब कोई गीत गाने लगे। कुछ समयके बाद जब ठाकुर-हरिदासने बाह्यज्ञान प्राप्त किया तब उस सँपेरेने अपना नृत्य आरम्भ किया। हरिदास ठाकुरके कृष्ण-प्रेमको देखकर सब कोई अत्यन्त आनन्दित हुए और जहाँ २ उनके चरण पड़े थे वहाँ वहाँकी धूल लेकर वे लोग प्रेमसे अपने २ शरीरमें लगाने लगे। इस व्य.पारको एक विषयी और नीच विप्र देख रहा था। उसने दुर्बुद्धि-

के वेश महा-भागवत वैष्णव ठाकुरके अलौकिक भाव-क्रिया-मुद्राको अपने प्राकृत बुद्धि और कृत्रिम रूपसे अनुकरण करनेकी इच्छा की। उसने मन-ही-मन विचार किया कि साधारण मूर्ख लोग अपने अन्धविश्वासके कारण किसी व्यक्तिके सामान्य वर्तानुष्ठान तथा एक प्रकारके नृत्य-गीतको देख तथा श्रवण करके ही नाना प्रकारसे भक्तिके साथ उसका बहुत सम्मान करने हैं। इसी कारण यवन-कुलमें जन्म ग्रहण करनेवाले एक सामान्य मनुष्य ठाकुर-हरिदामको जब इतनी अधिक पूजा, सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्रदान की गयी, तो मैं यदि हिन्दू जातिके सर्व-श्रेष्ठ ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर कपटतापूर्वक वैष्णव ठाकुरके अलौकिक अष्ट-मात्त्विक भाव तथा क्रिया-मुद्रादिका अनुकरण करके नृत्य करूँ तो मुझे कितना लाभ और मेरी कितनी पूजा प्रतिष्ठादि हाँगी इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। जब एक मामूली मनुष्य ठाकुर-हरिदामके भावको देखकर ही उनके प्रति लोगोंकी इतनी श्रद्धा हुई तब मैं देव-शर्मा नामका शीक ब्राह्मण-तनय होकर उनके अप्राकृत भाव-मुद्राको नकल करके न जाने कितनी

- पूजा-प्रतिष्ठा सम्मानादि प्राप्त करूँगा। कृत्रिम भाव दिखलानेमें ही मेरी जुद्ध जड़प्रतिष्ठा अप्राकृत वैष्णव-के अप्राकृत वैष्णवी प्रतिष्ठामें अत्यन्त अधिक होगी। ऐसा विचारकर वह पाखण्डी विषयामक्त विप्र अपनेको बड़ा भारी भक्त दिखलानेके लिये अचानक पृथ्वीपर गिरकर लोटने लगा तथा संज्ञाहीन भाव प्रदर्शित करने लगा। उस विप्रके कपट, लणभङ्गुर और कृत्रिम भावाभास दिखलाने-के साथ ही सँपेरा अपने नृत्यमें बाधा देखकर और उसकी कपटताको समझकर अत्यन्त क्रोधकर वेंतोंमें बड़े जोगीसे उसपर प्रहार करने लगा।

शरीर, कन्धा, मस्तक इत्यादि पर निर्दयताके साथ प्रहारित होकर वह विप्राधम 'बाप रे बाप, मर गये' कहते हुए वहाँसे भागा और वह सँपेरा अत्यन्त आनन्दके साथ नृत्य करने लगा। तब दर्शक लोगोंने विनयपूर्वक सँपेरेमें पूछा कि आप हरिदामके नृत्यके समय सादर कर जोड़-कर एक ओर खड़े थे और इस विप्रके मूर्च्छित होनेपर आपने निर्दयताके साथ इसपर इतना प्रहार क्यों किया? इसके उत्तरमें सँपेरेके शरीर-में अवस्थित अनन्तदेव उस सँपेरेके मुखसे सवों-को कहने लगे कि तुमलोगोंने जो पूछा वह आश्चर्य-जनक तथा अनिर्वचनीय है। परन्तु रहस्यपूर्ण होनेपर भी मैं तुमलोगोंके प्रश्नका उत्तर दूँगा। हरिदाम-ठाकुरके प्रेमावेशको देखकर तुमलोगोंने उनके पति जो श्रद्धा दिखलाई उसको देखकर यह ब्राह्मण हाँग करके मात्सर्य बुद्धिमें पृथ्वीपर गिर पड़ा। परन्तु मत्सरतावश मेरे (अनन्तदेवके) अलौकिक नृत्यको भङ्ग करनेकी शक्ति किसी विषयी, मर्त्य जीवको नहीं है। अप्राकृत हरिजन ठाकुर-हरिदामके साथ इस विषयी व्यक्तिको बराबरी करनेकी इच्छा हुई इसी कारण इसकी इतनी मज्जा हुई। हरिदाम ठाकुर—निष्कपट अप्राकृत और सहज-प्रेमिक और यह विप्र घृणित विषयामक्त तुच्छ जीव है। निष्कपट शुद्धभक्तके साथ मिथ्या पतिव्रतताके कारण उनकी नकल करनेकी चेष्टा ही विषयी पाखण्डी व्यक्तिकी कुटिलता है। तब विचार अनाभिज मूर्खलोगोंके निकट जड़ प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी इच्छासे ही कपटता कर महाभागवत वैष्णव ठाकुरके प्रति हिंसा करनेके कारण ही मैंने इसको पूर्णरूपसे दण्ड दिया। इस नकली ब्राह्मणके तौरपर



पावणदी भक्तगण भी संसारके लोग जिसमें उसको भक्त समझें उस दृष्टान्तसे कृत्रिम भावाभासका प्रदर्शन करते हैं। ऐसे दाम्भिकोंको कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं होती कारण कपटनिरहित (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष वासना रहित) होनेसे ही कृष्ण भक्ति प्राप्त होती है। जो महाभागवत-वैष्णवोंके अलौकिक क्रिया मुद्राको कृत्रिमरूपसे नकल करके 'भक्त' कहलाकर सांसारिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं, भगवच्चरणमें उनकी किसी प्रकारकी सेवा प्रवृत्ति नहीं होती। अपने जड़-इन्द्रिय-मुखके लिये दम्भ-से कृष्ण भक्त होनेका अभिमान करके भी भक्तिमुद्रा प्रदर्शन करनेकी उसकी चेष्टा लोक वञ्चनाके लिये ही हुई है। जहां इस प्रकारका धर्मश्वजत्व नहीं रहता है वहां पर ही कपटनिरहित कृष्णभक्ति होती है और जहां ये सब दोष विराज रहे हैं वहां दम्भ, कपटता, और कृष्णमेवा छोड़कर अन्य प्रकारकी दृष्टान्त है। सेवानुगुण वैष्णवोंका कृष्णप्रीति-वाञ्छामय नृत्य देखनेसे दर्शक लोगोंका जहां भवबन्धन विनष्ट होता है, वहां विषयासक्त जीवोंकी क्रिया-मुद्रा उनलोगोंके भवबन्धनको ही बढ़ाती है। वैष्णवोंके कृष्ण-इन्द्रिय-प्रीति-वाञ्छामय नृत्य-दर्शन करनेसे वैष्णवोचित निष्कपट भाव उत्पन्न होता है, और नकल करने वालोंकी चेष्टासे संसारमें कुफल ही उत्पन्न होता है। ठाकुर हरिदास जिस समय अप्राकृत नृत्यलीला प्रदर्शन करते हैं उस समय उनके निष्कपट प्रेमसे वशीभूत होकर उनके साथ पार्षदोंके सहित स्वयं भगवान् कृष्णचन्द्र नृत्य करते हैं। संसारके सौभाग्यवान् जीव उस अप्राकृत नृत्यको देखकर बहुत जन्मके संचित पाप-पुण्यसे मुक्त होकर भक्तोन्मुखी सुकृति प्राप्त करके शुद्ध हो जाते हैं। जिनके हृदयमें

कृष्णचन्द्र निरन्तर वास करते हैं उनके ही योग्य 'हरिदास' नाम है। हरिदास-ठाकुर सभी प्राणियोंके प्रति स्नेहहृष्टिसम्पन्न एवं स्थावर तथा जङ्गम सबोंके उपकारी हैं। भगवान् के प्रत्येक अवतारमें वे भी अवतरित होते हैं अर्थात् लीला-सचिव पार्षद हैं। हरिदास-ठाकुर साक्षात् भगवत्पार्षद हैं इसलिये उनका विष्णु तथा वैष्णवोंके प्रति कभी अपराध नहीं होता। साधारण विषयी पुरुषोंकी नाई उनकी कृष्णसेवन-मयीचेष्टा कभी, यहां तककि स्वप्नावस्था-में भी, विषयमें नहीं जाती। अन्यन्त थोड़े-समयके लिये भी यदि किसी जीवका जन्म-जन्मान्तरके मञ्चित महामौभाग्यके कारण हरिदासका सङ्ग प्राप्त हो तो उस संगके प्रभावसे वह जीव अवश्यही भगवच्चरणारविन्द प्राप्त करेगा। नामाचार्य हरिदास-ठाकुर सदृश महा भागवत भक्तोंका संग प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मादि देवगण सर्वदा इच्छा करते हैं। प्राकृत सत-असत कर्मका फल भोगने-के लिये बद्धजीव ऊँच नीच गतिमें जन्म ग्रहण करता है—वह जीवके कर्मफल-भोगको ही दिव्यलाता है। परमार्थ-विचारसे जाति वा संसारी वंश मर्यादाका कुछ मूल्य नहीं है—इस परम सत्य-को संसारमें सबोंको बतलानेके लिये ही मंगलमय भगवान् की मंगलमयी इच्छासे ही हरिदास-ठाकुर यवन कुलमें आविर्भूत हुए थे। कर्मफल-की उत्तमता तथा अधमताका पहचान उत्तम तथा अधमवंशमें जन्म प्राप्तमे ही किया जाता है, किन्तु जीव स्वरूपतः विष्णुभक्त होनेके कारण तात्कालिक वंश-परिचयके अनुसार छोटा या बड़ा होनेपर भी भगवद्भक्तिके परिमाण-अनुसार ही उत्तम अथवा अधम कहा जाना चाहिये—यही शास्त्रों-में उच्च स्वरसे कहा गया है। निम्नकुलमें जन्म

लेनेसे ही जीवको विष्णुभक्तिका अधिकार नहीं होगा, ऐसी बात नहीं। नीच कुलमें उत्पन्न व्यक्ति वैष्णव होनेपर उच्चकुलोद्भूत अभक्तोंका पूज्य, गुरुदेव तथा ब्राह्मण है। सन कर्मके फलसे अति उत्तम कुलमें जन्म ग्रहण करके भी भगवद्भजनसे उदासीन रहनेसे उसको अवश्य ही नरक प्राप्ति होती है। विदेहराज-निर्मि तथा नवयोगेन्द्रके सम्वादमें कहा है (भा: ११-५-३)

य एषं पुरुषं साक्षादात्म प्रभवमीश्वरम् ।

न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टोः पतन्त्यधः ॥

इन मय वेदवाक्योंको यथार्थ रूपसे प्रदर्शन करनेके लिये ही हरिदाम-ठाकुर यवनकुलमें अवतीर्ण हुए थे। जिस प्रकार विष्णुविद्वेषी दैत्यकुलमें श्रीप्रह्लाद और पशुकुलमें श्रीहनुमानजीने जन्म ग्रहण किया था, उसी प्रकार यवनकुलमें ठाकुर-हरिदाम प्रभुकी इच्छानुसार प्रकट हुए थे। साधारणतः मनुष्य देवताओंको स्पर्श करके एवं गङ्गाजीमें स्नान करके पवित्र होनेकी इच्छा करते हैं किन्तु ब्रह्मादि देव, यहांतक कि विष्णुचरणमें प्रकट हुई परम पवित्र गङ्गाजी भी, महाभागवत परमहंस वैष्णवाचार्य सर्वदेवमय हरिदाम-ठाकुरको स्पर्श करके धन्य होनेकी इच्छा करती हैं। हरिदाम-ठाकुर-

को स्पर्श करना तो दूर रहे उनका दर्शन करने से ही जीवके अनादिकालकी अविद्याका बन्धन-सूत्र (शरीराभिमान, शरीरमें आत्म बुद्धि) उसी क्षण नष्ट हो जाता है। नामाचार्य-हरिदासमें जो अप्राकृत गुरुका भाव रखते हैं (अर्थात् उनको अप्राकृत गुरु समझते हैं) उन भक्तोंको देखनेसे भी (अर्थात् हृदय मन वचन द्वारा उनका आनुगत्य स्वीकार करनेसे) बद्धजीवोंका संसार बन्धन नष्ट हो जाता है। तदुपरान्त नागराज मन्त्रसिद्ध (जिसने अनन्तदेवके मन्त्रकी सिद्धि प्राप्ति की थी) सँपेरने कह। कि तुमलोग अत्यन्त भाग्यवान् हो क्योंकि तुमलोगों के प्रसन्न करनेसे ही आज मेरे मुख्यसे भगवद्भक्तकी थोड़ीसी गुण-महिमा कीर्तित तथा प्रकाशित हुई है। मैं यदि सौ वर्षों तक सौ मुखों द्वारा ठाकुर-हरिदासकी अप्राकृत गुणमहिमा गान करूँ, तौभी उनका अन्त नहीं होगा। एकबार भी यदि कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक 'हरिदाम' इस अप्राकृत चिन्मय वैष्णव ठाकुरका नाम उच्चारण करे तो वह निश्चय ही भगवद्धाम प्राप्ति करेगा। इतना कहकर वह सँपेरा चुप हो गया और उसके मुखसे हरिदास-ठाकुरका माहात्म्य सुनकर सज्जनलोग अत्यन्त प्रसन्न हुए।

(क्रमशः)



## गुरु-सेवा

श्रुति-स्मृति पुराणादि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही आचार्य सेवा करनेका माहात्म्य गान किया गया है। सद्गुरुसेवाके सिवाय बद्धजीवकी अनर्थ निवृत्ति (अनर्थ चार प्रकारके हैं—स्वरूपभ्रम, असन्तुष्टता,

हृदयदौर्बल्य और अपराध) और भगवत्सेवाप्राप्तिका और दूसरा उपाय नहीं। शास्त्रोंने आचार्यको भगवत्प्रकाश वा आश्रयजातीय भगवद्विग्रह कहा है। गुरुदेव भगवान्से अभिन्न हैं। वे जीवोंको नित्य

सेवाश्रिता देनेके लिये प्रपञ्चमें सेवक-विग्रहरूपसे एकट हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेसे जीव विषयस्वरूप भगवानको प्राप्त कर सकता है। सद्गुरु सेवा करते करते जब बद्धजीवके हृदयकी अविशारांश दर हॉती है और चित्त-दर्पण निर्मल होता है, तब गुरु कृपासे जीवके चम निर्मलहृदयमें परमार्थय दानकरनेवाली ब्रह्मविद्याका उदय होता है। जीवकी तबतक मुक्ति कामना प्रबल रहती है, तबतक वह सद्गुरुके समीप आभिगमन नहीं कर सकता। अर्थात् कहते हैं—

परोक्ष्य लोकान् कर्मचिन्तान् ब्रह्मणो ।

निर्वेदमायात्राम्यकृतः कृतेन ॥

नद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।

समित्तपाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

ब्रह्मण चम द्वारा अर्जित स्वर्गादि लोकममृहको केलके छिलकेके समान अमार समझकर और "नित्य भगवद्धाम आनन्द कर्मके द्वारा प्राप्त नहीं होता" ऐसा समझकर, कर्मफलमें निर्वेद (विराक्त) लाभ करते हैं। इस प्रकार भुक्ति-कामनामें निर्वेदप्राप्त पुरुष अति विनीतभावसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये वेदतात्पर्यवित (वेदके तात्पर्यको जानने वाले) और भगवत्सेवापरायण सद्गुरुके चरणमें सम्पूर्णरूपसे शरण ग्रहण करते हैं।

श्वेताश्वतर भूतिने कहा है—

यस्य देवे परमार्त्तर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

जित अधिकारी पुरुषकी भगवानमें अहैतुकी परमार्त्तिक वर्तमान है और जो सद्गुरुमें भी ऐकान्तकी भक्ति विशिष्ट है, उन्हीं महात्मके निकट आत्मतत्त्व-विषयक सभी उपदेश प्रकाशित होते हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपादने

भी कहा है—

"ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन ।

माया जाल छूटे, पाय कृष्णोर चरण ॥"

अर्थात् त्रिगुणात्मिका दुष्पार मायाके हाथसे उद्धार प्राप्तकर नित्य भगवत्सेवा पानेके लिये गुरुसेवा एवं गुरुके आनुगम्यमें भगवद्भजनके सिवाय और दूसरा उपाय नहीं। सद्गुरु शिष्यके भुक्तिमुक्ति-कामनाको निराशकर एकमात्र अहैतुकी सेवा शिज्ञादान करते हैं। जहां गुरु (१) शिष्यको अपना माग्य समझते हैं एवं शिष्य भी आत्मेन्द्रिय प्रीतिवांछा लेकर गुरुके निकट गमन करते हैं, वहां गुरुसेवा नहीं होती। इस प्रकार गुरु और शिष्यका सम्बन्ध नरक जानेका द्वारस्वरूप एवं सद्गुरुसेवा वैकुण्ठ जानेका द्वारस्वरूप है। गुरु नित्य भगवत्सेवामें प्रतिष्ठित हैं अतः वे शिष्यको भी भगवानकी सेवामें नियुक्त करते हैं। सद्गुरुकी सेवाके सिवाय अन्य कोई भी दूसरा कृत्य नहीं है इसलिये एकमात्र सद्गुरुकी सेवा करनेमें ही युगपत गुरुसेवा और भगवत्सेवा सिद्ध होती है। प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य श्रीरामानुजपादका नाम परमार्थी लोगोंने श्रवण किया होगा। उन्होंने मायारूपी अन्धकार और कर्ममार्गीय म्मान्तोंके चक्करसे जीवोंके उद्धार करनेके लिये संसारमें भक्त और भगवानकी सेवामाधुर्यका प्रचार किया है। एकवार उन्होंने शिष्योंके साथ श्रीशैलोद्देश्य गमन किया। उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्तन करते करते वे अग्रसर होने लगे। दो तीन दिनोंके बाद वे एक ग्राममें आ पहुँचे। उसी ग्राममें रामानुजके दो शिष्योंका वासस्थान था। एक धनी और एक निर्धन थे। धनी शिष्यका नाम यज्ञेश एवं दूसरे शिष्यका नाम बरदाचार्य था। रामानुजने उक्त

धनाढ्य शिष्यके निकट शिष्योंके साथ अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये अपने दो शिष्योंको भेजा। यज्ञेश श्रीगुरुदेवके आगमनकी वार्ता सुनकर आनन्दसे इतना अधीर हो गये कि अन्नःपुरमें जाकर किस प्रकार प्रभुकी अभ्यर्थना करेंगे इसके लिये व्यस्त हो पड़े। इधर दो गुरुभ्राता जो उनके घरके द्वारपर बैठे हुए थे उनके विषयमें वे उदासीन हो गये। रामानुजके दोनों शिष्योंने यज्ञेशके इस व्यवहारसे दुःखित होकर गुरुके निकट यह सब निवेदन किया। रामानुज भी धनाढ्य शिष्यके व्यवहारसे अत्यन्त दुःखित होकर द्वािद वरदाचार्यके घरमें आतिथ्य स्वीकार करनेके लिये शिष्य लोगोंके साथ पहुँचे। वरदाचार्य प्रतिदिन प्रातःकाल भिन्नाके लिये बाहर जाते एवं सारा दिन भिन्नाकर जो कुछ पाते, उसे गुरु और नागयणको निवेदन कर उनलोगोंका अवशेष ग्रहण करते। उनके लक्ष्मी नामकी परम साध्वी रूपलावण्यवती सहधर्मिणी थी। वे प्रकृत स्वामीके धर्मकी सहायता करनेवाली थी। जिस समय रामानुज वरदाचार्यके दृटे फटे भोंपड़ेपर शिष्य लोगोंके साथ उपस्थित हुए, उस समय वरदाचार्य भिन्नाके लिये बाहर गये हुए थे। लक्ष्मी, स्नान करके एक क्षुद्र शतलिद्र फटा वस्त्र किमी प्रकार धारणकर दूसरा एक फटा मलिन वस्त्र वृषमें सुखा रही थी। वे ऐसी अवस्थामें गुरुदेवके सामने आकर उनका अभिनन्दन नहीं कर सकती थीं, इस बातको उन्होंने कर्तलध्वनि द्वारा ज्ञापन किया। रामानुजने उसी समय बाहरमें अपना चादर गृहके भीतर फेंक दिया। लक्ष्मी उसके द्वारा अपना शरीर आच्छादनकरके गुरुके सम्मुख उपस्थित हुई एवं गुरुदेवको पुनः पुनः साष्टाङ्ग प्रणामकरके कहने लगीं, 'प्रभो, आपत्ताग

कृपापूर्वक बैठिये, मेरे स्वामी भिन्नाके लिये बाहर गये हैं, मैं शीघ्र ही विष्णु नैवेद्य प्रस्तुत कर देती हूँ।" इधर गृहमें चावलकी खुद्दी भी नहीं। क्या करेंगी कुछ स्थिर न कर सकी। किन्तु प्राण देकरके भी यदि गुरु और वैष्णवलोगोंकी सेवा हो सके तो वह अवश्य करनी चाहिये यह चिन्ता करते नारायणको स्मरण करने लगीं। अन्तमें लक्ष्मीदेवीको एक उपाय सूझ पड़ा। निकट ही एक धनाढ्य वर्णिकका वामस्थान था। उक्त वर्णिक चरित्रहीन था। उसने लक्ष्मीदेवीके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर कष्टवार उनको अपनी विलासिनी होनेके लिये अनुरोध किया था और कहा था कि जिस समय लक्ष्मीदेवी उसकी मनोकामना पूर्ण करेंगी उसी समयसे उनके और उनके स्वामीका दारिद्र्य दूर हो जायगा। उन्हें और किसी बातका अभिभाव नहीं रहेगा। किन्तु सती साध्वी लक्ष्मीदेवीने वर्णिकके ऐसे विचारकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया था। आज देखनी हैं कि श्रीगुरुदेव और वैष्णववृन्द द्वारपर उपस्थित हैं। यदि सामान्य देहके चौरिक वा नैतिक धर्मको त्यागकर भी उनलोगोंकी सेवा हो सके तो उनके देह धारण करनेकी सार्थकता होगी। वे इतने दिनोंतक अपने भोगके लिये वर्णिकके असाधु (निकृष्ट) प्रस्तावसे सहमत नहीं हुई थीं। किन्तु आज हरि, गुरु-वैष्णवसेवाके लिये ऐसा घृणिता कार्य करनेके लिये भी उत्तर हो गई और इससे उन्हें नरकमें जाना पड़ेगा इसके लिये चिन्ता नहीं की क्योंकि उससे वैष्णवोंकी प्रीति होगी। आत्मेन्द्रिय-प्रीतिवांछा ही काम है। किन्तु कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवांछाका प्रेमनाम दिया गया है। कालिधन नामक एक महाभागवतने चोरी कर भगवान्की सेवा की थी। तिरुमङ्गई आलयरने

दम्युर्वृत्तिके द्वारा अर्थ अपहरण करके भी अपने इष्ट गङ्गनाथके श्रीमन्दिरका निर्माण कराया था। “नरक जाने पर भी मैं गुरुसेवा और वैष्णवसेवा त्याग नहीं करूँगी”; ऐसा सङ्कल्प कर लक्ष्मीदेवी उस धनाढ्य वर्णिकके निकट गई और उसी दिन रात्रिमें उसका मनोवासना पूर्ण करनेका वचन दिया। वर्णिक कितना अनुरोध कर, और कितना प्रलोभन दिखाकर भी जिसका ऐसे असत् कार्यमें प्रेरित नहीं कर सका था वही आज प्रार्थी होकर उसके द्वारपर उपस्थित हुई है। यह देखकर वर्णिक आनन्दमें अर्धोर हो गया। लक्ष्मीदेवीने वर्णिकके निकट ज्योंही अपने गुरु और वैष्णव वृन्दोंके आतिथ्य भस्कार करनेके लिये द्रव्यसमूहकी आवश्यकता बतलाई त्यों ही बरदाचार्यकी कुटीमें बहंगीपर तण्डुल, दुग्ध, दधि, घृत, चीनी और नाना प्रकारका फल-मूल प्रेरित होने लगा। लक्ष्मीदेवीने शीघ्रतापूर्वक नैवेद्य बनाकर विष्णुको निवेदन किया और उसे गुरु और वैष्णव लोगोंको प्रदान किया। सबोंने सन्तुष्ट होकर प्रसादका सम्मान किया एवं दरिद्रके घरमें प्रसादका ऐसा सुन्दर आयोजन देखकर आश्चर्यित हो गये। इधर लक्ष्मीदेवीके पति भिक्षा-मे लौटकर अपने गुरुदेव और गुरु भ्रातृगणको अपने टूटे फूटे भोपड़ेपर देखकर अतिशय आनन्दित हुए एवं श्रीगुरुदेव और वैष्णववृन्दोंकी परिचर्या करनेके लिये उन्हें व्यग्र होते देखकर वैष्णव लोगोंने कहा कि उनलोगोंने परम सन्नोपके साथ प्रसाद सम्मान किया है। बरदाचार्य सुनकर अतिशय विस्मित हुए एवं घरके अन्दर जाकर सहधर्मिणीसे पृष्टा। लक्ष्मीदेवीने नम्रतापूर्वक भयभीत होकर वर्णिकके निकट अपनी की हुई

प्रतिज्ञाका निवेदन किया। बरदाचार्य यह सुनते ही आनन्दमें विह्वल होकर नृत्य करते हुए लक्ष्मीदेवीसे कहने लगे—लक्ष्मी, यथार्थमें तुम मेरी सहधर्मिणी हो, आज मैं धन्य हुआ। मैं इतने दिनोंसे समझता था कि तुम मेरे हाड़-मांसके देहको ही पति समझती हो किन्तु आज साक्षात् देखा कि तुम्हारे ऊपर गुरु कृपाकी पूर्णरूपसे वर्षा हुई है। तुम्हारा सम्बन्ध-ज्ञानोदय हुआ है। तुमने समझ लिया है कि श्रीनारायण ही एकमात्र पति हैं और सभी जीव प्रकृति हैं। अतएव आज तुमने यह श्वशुराल-भक्ष्य देहके द्वारा जो परमपतिकी सेवा की है यह भ्रमण कर मैं पुनः पुनः आनन्दित होता हूँ। धीरे धीरे श्रीरामानुज और वैष्णवगण भी लक्ष्मीदेवीकी ऐसी सेवा-प्रवृत्तिको जानकर विस्मित हुए एवं श्रीरामानुजने उन दम्पतिको कहा। तुमलोग दोनों इस वर्णिकके घरमें जाकर उसको कुछ महाप्रसाद दे आओ। दम्पति उस वर्णिकके निकट महाप्रसाद ले गये। बरदाचार्य बाहर रहे। लक्ष्मीने वर्णिकके निकट जाकर उसको महाप्रसाद अर्पण किया। लक्ष्मीदेवीके अनुरोधमें वह वर्णिक रामानुजाचार्यका अवशेष ग्रहण करने लगा। किन्तु वैष्णव लोगोंके उच्छिष्टका क्या माहात्म्य है! प्रसाद ग्रहण करते करते वर्णिकका मन फिर गया। वर्णिकके चित्तमें अनुताप होने लगा—हाय, मैंने किसके प्रति ऐसा असदभिलाप किया है। “आप वैष्णव गृहिणी है, आपके नारायणके प्रति समर्पित देहमें मैंने भोग बुद्धि की है। हे माता मुझको नरकसे उद्धार करो। आपके श्रीगुरुदेवकी कृपामें क्या मैं वञ्चित रहूँगा? वैष्णवगण अदोषदर्शी हैं। क्या वे हम-पर कृपा करेंगे?”

सतीने स्वामीके निकट आकर सब घटना सुनाई

एवं तत्पश्चात् बनियेकी बात श्रीगुरुदेवके चरणमें भी निवेदित की। पतितपावन श्रीरामानुजाचार्यने वणिक्को बहुत दुःखित देखकर दीक्षा प्रदान की। इसके बाद उस बनियेने श्रीगुरुदेवके निकट उन वैष्णव-दम्पत्तिका दाग्द्वय दूर करनेके लिये अपना धन देनेकी इच्छा प्रकट की। यह सुनकर बरदाचार्यने गुरुदेवके निकट बहुत नम्र भावसे कहा—“प्रभो, ऐसी कृपा कीजिये, जिसमें यह अधम हरि-गुरुवैष्णवसेवाधिकारसे अलग न हो। प्रभो, धन, जन वा पुत्रिप्रादिके द्वारा जिसमें मेरा चित्त आपके चरण कमलोंकी सेवासे म्बलित न हो।” रामानुजने भी बरदाचार्यके ऐसे भावको देखकर बनियेसे जैसा कहा था वैसाही ज्यों का त्यों हम श्रीचैतन्यभागवत-में देखते हैं—

यत्तु देव्य वैष्णवेण व्यवहार-दुःख ।

निश्चय जानिहूँ मेह पगानन्द सुख ॥

विषय-मदान्ध सब क्लिष्टुई ना जाने ।

विद्या-धन कुलमदे वैष्णव ना चिने ॥

इधर रामानुजके धनाह्वय शिष्य यज्ञेश श्रीगुरु-सेवा न कर सकनेके कारण बहुत दुःखित होकर बरदाचार्यके घरपर पहुँचे एवं श्रीगुरुदेवसे हृदयका दुःख प्रकट किया। रामानुजने यज्ञेशसे कहा तुमसे वैष्णवापराध हुआ है, इसीलिये हमने तुम्हारे गृहमें आतिथ्य ग्रहण नहीं किया। तू अपने दोनों गुरु-भ्राताओंकी अभ्यर्थना न कर अन्तःपुरमें चला गया था। उस समय यज्ञेश ने कहा प्रभो

आपके शुभागमनकी वार्ता सुनकर मैं आनन्दमें विह्वल होकर आपकी अभ्यर्थना करनेके लिये आयोजन कर रहा था। उस समय रामानुजने कहा कि आनन्दमें विह्वल होना कुछ सेवा नहीं है।

“निज प्रेमानन्दे कृष्ण-सेवानन्द बाधे ।

से आनन्देर प्राति भक्तेर हय महाकोधे ॥”

जहां अपना आनन्द लाभ करनेकी लेशमात्र भी इच्छा है, वहां भुक्तिकामना है सेवा नहीं; सेवामें केवलमात्र इष्टदेवकी सुखकामना रहती है। वैष्णवों-का त्यागकर कभी गुरु-सेवा नहीं हो सकती। वैष्णव वा गुरुसेवक सभी श्रीगुरुदेवके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। अतएव तू जो ‘अर्द्धकुक्कुटीजरती’ वाली कथाका अनुसरण कर वैष्णवका सम्मान न कर केवल मेरी सेवा-चिन्तासे ही विह्वल हो उठा था उसमें तुमसे वैष्णवापराध हुआ। इसलिये मैं तुम्हारे गृहमें नहीं गया। यज्ञेश उस समय अपना अपराध समझकर श्रीगुरुदेव और वैष्णवगणोंके चरणोंमें बारंबार अपना अपराध ज्ञापन कर क्रन्दन और जमाकी भिन्ना मांगने लगे। श्रीरामानुजाचार्यने यज्ञेशके गृहमें आतिथ्य स्वीकार किया। सद्गुरु धन, कुल, विद्या नहीं देखते, वे सेवा प्रवृत्ति देखते हैं। सद्गुरु सेवा एवं भुक्ति और मुक्तिका पार्थक्य प्रदर्शन करते हैं। सद्गुरु शिष्यको पतित रखकर पतितपावन नाम नहीं धारण करते हैं। शिष्यको सचमुच ही पवित्र करते हैं। सद्गुरु निष्किञ्चन और निरपेक्ष शिष्यके अन्याय आचरणका प्रश्रय नहीं देते।

## विविध-संवाद

पटना

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराज सभाकी शाखा पटना

श्रीगौड़ीयमठमें परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवके (नियन्त्रणमें) नियमितरूपसे पाठ, कीर्तन और

सर्वदा हरिकथा हो रही है। शहरके विभिन्न स्थानोंमें कई शिक्ति और सम्मान मज्जन मठमें आकर श्रीपादपशुपाल पङ्कजदत्त दामाधिकारी भक्ति प्रभु प्रभु निकट प्रस्तादिके साथ साथ हरिकथा श्रवण कर रहे हैं।

श्रीपाद भक्ति प्रभुने विहार और उड़िसाके Postmaster General Mr. N. N. Banerjee महोदयके निकट श्रीगौड़ीयमठके प्रचारका वैशिष्ट्य, श्रीचैतन्यमहाप्रभुका जीवके प्रति असमोद्ध-दानकी कथा—आत्मधर्मकी कथा—जीवके एकमात्र निरन्तरमङ्गल प्राप्त करनेकी कथाका प्रायः १ घण्टे तक कीर्तन किया था। Postmaster General महोदय श्रीपाद भक्ति प्रभुने प्रभुके निकट हरिकथा श्रवणकर मठके प्रति विशेष आकृष्ट हुए हैं अब यथासाध्य मठकी सेवामें सहायता देने और कभी कभी श्रीमठमें आनेके लिये भी कहा है। Postmaster General महोदय महोदय व्यक्ति हैं। उनका हरिकथा-श्रवणमें आप्रह्म देखकर हमलोग परमानन्दित हैं।

### लखनऊ

लखनऊमें श्रीगौड़ीयमठके सेवकोंकी चेष्टा और लखनऊ मौलाभगवज्जनिवासी बाबू विपुलरि शरण श्रीवास्तवके यत्नसे लखनऊ रेकाबगज्ज-निवासी श्रीयुक्त बाबू वामुदेव प्रसादकी ठाकुरवाड़ीमें गत ७ वीं मई रविवार को छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण-लीलाका कीर्तन हुआ था। श्रीपाद मुदर्शन ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्राजी ने कई सेवकोंके साथ ७ बजे सन्ध्याको उपस्थित होकर छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्णलीला और श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाका कीर्तन किया था। उनकी मर्मस्पर्शिनी वार्त्ता सुनकर उपस्थित सज्जनमण्डली बहुत प्रसन्न और कीर्तनकी ओर

आकृष्ट हुई थी। उस दिन श्रीकृष्ण-लीला सुननेके लिये उत्सुक होकर अनेक शिक्ति सज्जन और महिलायें उपस्थित हुई थीं। इनमें लखनऊके बेकारगज्जस्थित वामुदेव-कीर्तन सभाके सभापति श्रीयुक्त पण्डित दयानजी बी. ए., रेलवेके अवसर प्राप्त कर्मचारी श्रीयुक्त बाबू मथुरा प्रसाद आदि कई मुख्य सज्जनोंके नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रीपाद मुदर्शन प्रभुने तीन सप्ताह तक लखनऊ श्रीगौड़ीयमठमें रहकर मठके ब्रह्मचारियों और मठमें आये हुए सज्जनोंके निकट सतत हरिकथाका कीर्तन किया था और शहरके विभिन्न स्थानोंमें भी निमन्वित होनेपर हरिकथा सुनाकर भगवान की भक्तिका उपदेश किया था।

### दिल्ली

भागवतके सम्पादक महोदय कई दिनोंसे दिल्ली गौड़ीयमठमें ठहरकर निरन्तर श्रीहरिकथा कीर्तन कर रहे हैं। उनके मुखसे हरिकथा श्रवण कर सेवकोंको बहुत आनन्द हो रहा है। उनकी हरिकथाकी विशेषता यह है कि “वे आचार्य निष्ठा ही माधकोंका एकमात्र साधन हैं” इसीका उपदेश कर रहे हैं। आचार्यपादपद्ममें मर्त्यबुद्धि रखकर हमलोग चाहे जितना श्रवण कीर्तन और प्रचारदि करें, उसका कोई मूल्य नहीं। शरणार्थी ही वैष्णवधर्म है। शरणार्थीके तारतम्यानुसार ही वैष्णवधर्मका तारतम्य है।

जो शरणार्थीका मूल्य न समझकर सांसारिक कर्म-दत्तताको प्रधान समझते हैं, वे वैष्णवधर्मकी कथा नहीं समझते हैं। इसी प्रकारके अनेक उपदेश उन्होंने किये। उनकी हरिकथासे मठ सर्वदा ही गूंजा करता है। उनकी निष्कपट श्रीहरिकथा कीर्तन-सेवा चेष्टा प्रशंसनीय है।

## SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

---

### SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding --Rs 2-8-0.

---

### RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

---

### THE BHAGVAT

Its Philosophy, its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Prabhupad Full calico bound—Rupoe One • Thick, paper bound—Twelve Ans.

---

( बंगलामें )

### श्रीमद्भागवतम्

महापि श्रीकृष्णहृदपायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन्न सध्याचार्यकृता नातपर्य निगम्यटीका, श्रीमद विश्वनाथ चक्रवर्ती डाक्टर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्त्यादियुक्त । प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथामार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय मारके साथ सुविस्तृत नातपर्यादि विवृत हैं । श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित । प्रथममें १२वां स्कन्धतक दुपा सम्पूर्णरूपमें शेष हो गया है । भित्ति प्रथममें १२वां स्कन्धतक ४०), ६०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र ।

### श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रीन्न कविराज गोस्वामीकृत । श्रीभक्तिविनोद डाक्टर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुवाद लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं । श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिप्रेय संयोजित हैं । प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथामार लिखा हुआ है । श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृद्ध सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी-समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व भस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है । उत्तम कागजपर सजावटके साथ माटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १२०० पृष्ठमें सम्पन्न है । भित्ति बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र ।

### श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुवाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आगतन—  
क्राउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १२४० पृष्ठ भित्ति—६)मात्र ( बिना बंधा हुआ ) ।



## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—( तृतीय खण्ड )

आचार्य प्रकट निधिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जितद भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिन्ना १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० बोयारी, ढाका ।

### सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मलसर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपूर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एष्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, २६० पृष्ठोंमें । विग्नन सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिन्ना ४)

### ‘सामयिक-संख्या’—गौड़ीय

सामयिक संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-रेखित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुसज्जित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिन्ना ॥) आना ।

### ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्त्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिन्ना ॥) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता ( बागबाजार ) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

### अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिन्ना २) मात्र ।

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

५ वामन  
गौराङ्ग  
४५३



अपाद कृष्ण ५  
संवत्  
१८८६ वि०

स वे पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी

स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—

उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है ।

प्रति संख्या } सम्पादक—पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० { वार्षिक  
-॥ } १

Editor :—Pundit Sripad Rupbilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

## विषय सूची

| विषय                               | पृष्ठांक | विषय                                    | पृष्ठांक |
|------------------------------------|----------|---|----------|
| भक्ति के प्रति अपराध               | ६५       | नामाचार्य श्रीयुत ठाकुर हरिदास (४) .... | ७३       |
| श्री श्रील आचार्यदेव और राय बहादुर |          | आदौ श्रद्धा                             | ७७       |
| मदन गापाल साहाना                   | ६६       | विविध-संवाद                             | ८०       |

## भक्तिके अन्यान्य पत्र

१ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अनन्त वामुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज सम्पादित आंग्रेजी पार्ष्णिक पत्रिका । प्रति एकादशीको कलकत्ता बागवाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होते हैं । भिन्ना डाक व्यय समेत ६) मात्र ।

४ परमार्थी—श्रीयुक्त रघुनाथ महापात्र द्वारा सम्पादित उत्कल पार्ष्णिक । कटक श्रीसच्चिदानन्द मठसे प्रकाशित । वार्षिक भिन्ना १॥ मात्र डाक व्यय समेत ।

२ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद मुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला मासिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित । वार्षिक भिन्ना २) डाकव्यय समेत ।

५ श्रीगौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद मुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला पार्ष्णिक । कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित । वार्षिक भिन्ना १॥०) मात्र डाक व्ययके साथ ।

### SREE CHAITANYA MAHAPRABHU

The teachings and characteristics of Sree Maamahaprabhu have been clearly published in this book. It has been written by Tridandi Swami Sreemad Bhakti Pradip Tirtha Maharaj. Price Rs. 4/-

To be had:-Nand Kishore Bhaktishastri,  
Sree Jogpith, Sree Mandir  
P. O Sree Mayapur (Nadia)

## वैष्णवाचार्य श्रीमध्व

गौड़ीय सम्पादक-सम्पादित, इस ग्रन्थमें श्रीमध्वाचार्यका जीवन चरित, सिद्धान्त और शिक्षा भली भाँतिसे आलोचित हुआ है । यह एक अपूर्व मौलिक विराट् ग्रन्थ है । भिन्ना २) मात्र ।

## श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित पद्यावली श्रील आचार्यदेव-विरचित "सौरभ" नामक भाष्यके सहित प्रकाशित हुआ है । श्रील प्रभुपादके बहुतसे अप्रकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं । भिन्ना १०) आठ आना मात्र ।

## श्रीश्रीभक्तिविनोदवाणीवैभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंसे सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनाकारमें प्रश्नोत्तररूपसे उनका वाणी-सङ्कलन । भिन्ना ३) मात्र ।



वर्ष ५

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

मंख्या ५

अपाढ़ कृष्ण ५, १४३३ स० १९६६ वि०, ७ जून सन १९३६ ई०

## भक्ति के प्रांत अपराध

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

यह एक भयङ्कर बात है। हमलोग बहुत तरहसे भक्तिका अनुष्ठान करते हैं। सम्प्रदायमुक्त ब्राह्मण गुरुके समीप मन्त्र ग्रहण करते हैं। प्रतिदिन द्वादश तिलक लगाकर श्रीकृष्णकी पूजा करते हैं। एकादशी करते हैं। यथासाध्य नाम स्मरण करते हैं। श्रीवृन्दावनादि स्थानका दर्शन भी करते हैं। किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि भक्तिदेवीके प्रांत अपराध न हो इसके लिये यत्न नहीं करते। श्रीभक्तिदेवीके प्रांत अपराधका लक्षण श्रीमन्महा-प्रभुने भक्तलोगोंके लिये मुकुन्दको लक्ष्यकर इस प्रकार वर्णन किया है :—

मुकुन्द मेरा दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता, कारण वह कभी तृणादपि सुनीच (तृणके समान तुच्छ) हो

जाता है और कभी भाङ् मारनेके लिये प्रस्तुत हो जाता है—वह जहां जाता है वहांके लोगोंके अनुकूल बातचीत करके मिल जुल जाता है। वह अद्वैताचार्यके समीप योगवाशिष्ठ पढ़ता है और भक्तोंके सङ्गमें तृणादपि सुनीच होकर नाचता गाता है। वह अभक्तोंसे जब मिलता है तब भक्तिको नहीं मानता, भाङ् मारता है। उसने भक्तिदेवीके प्रांत अपराध किया है, इसलिए वह मेरा दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता।

श्रीमुकुन्द भी भगवन् पापदंथे। सुतरां प्रभुकी उस सम्बन्धमें जो बातें हैं, वे रहस्यमात्र हैं। किन्तु महाप्रभुका हृदय अतिशय गम्भीर था। उन्होंने जो बातें जिस समय कही थीं उनमें उपदेश था। वह उपदेश यह है कि केवल दीक्षादि ग्रहणकर (गुरु-

मुखसे मन्त्र ग्रहणकर) भक्ति के अङ्गोंका अनुष्ठान करनेसे ही कृष्ण प्रसन्न होंगे, ऐसी बात नहीं है। अनन्यभक्तिमें जिनको अनन्य श्रद्धा है वेही प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं। जिनके हृदयमें उस प्रकारकी श्रद्धा उत्पन्न हुई है वे शुद्धभक्तिके पक्षपातमें दृढ़ रहते हैं। जहाँपर शुद्धभक्तिका प्रसङ्ग नहीं है वहाँपर वे न जाते हैं और न बैठतेही हैं। जहाँपर शुद्धभक्तिके विषयोंकी आलोचना होती है वहाँपर वे प्रसन्नतापूर्वक ठहरते हैं। सरलता, दृढ़ता तथा एकान्तप्रियता ही शुद्धभक्तका स्वभाव है। वे, लोगों की प्रसन्नताके लिये कभी भक्तिविरुद्ध बातोंमें सम्मति नहीं देते। शुद्ध भक्तलोग सर्वदा निरपेक्ष रहते हैं।

आजकल बहुतसे लोग ऐसे " जो इस प्रकारके अपराधका भय नहीं करते। भक्तको देखनेसे ही अश्रुपुलकादि होता है। कभी कभी कथा-आलोचना में भी यह दशा प्राप्त होती है। और आध्यात्मिक सभामें आध्यात्मिक मतकी सहायता करते हैं। विषयमें आसक्त होकर विषय प्राप्त करनेके लिये नितान्त उन्मत्तवचन व्यवहार करते हैं। हे पाठकवर्ग ! लोगों की इस प्रकारकी निष्ठा कैसी है ?

हमलोग विचार करते हैं कि प्रतिष्ठाके लिये ही

वे भक्तोंके निकट भक्तिका लक्षण दिखलाते हैं। कहींपर प्रतिष्ठाके लिये एवं कहींपर अन्य जड़-विषय प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारका व्यवहार करते हैं। दुःखकी बात यह है कि वे संसारके लोगोंको इस प्रकारके व्यवहार की शिक्षा देकर शुद्धभक्तिके प्रति अपराध ही नहीं बल्कि संसारके जीवोंका सर्वनाश करते हैं।

हे पाठको ! आइये हमलोग सावधान हो जायें। भक्तिदेवीके प्रति हमलोगोंका जिसमें अपराध न हो, वैसा करें। पहले हमलोग निरपेक्ष होकर भक्ति याजन करें। ऐसी प्रतिज्ञा करें—“किसी पक्षका समर्थन करके हमलोग भक्तिप्रतिकूल कोई बात नहीं कहेंगे और न कोई काम करेंगे। सभी कामोंमें सरल रहेंगे। हृदयमें एक, तथा व्यवहारमें दूसरा, ऐसे नहीं होंगे। भक्तिप्रतिकूल पक्षके लोगोंको कृत्रिम लक्षण दिखलाकर उनसे प्रतिष्ठा प्राप्त करने का यत्न नहीं करेंगे। शुद्धभक्तिका ही पक्षपात करेंगे। और किसी प्रकारके सिद्धान्तका पक्ष समर्थन नहीं करेंगे। हमलोगोंका हृदय तथा व्यवहार एक ही प्रकारका हो।”

## श्री श्रील आचार्यदेव और रायवहादुर मदनगोपाल सार्दाना

सार्दाना साहेब—निर्जनस्थानमें बैठकर हरिनाम करना क्या वैष्णवधर्मसे अनुमोदित पथ नहीं है ?

आचार्यदेव—जिस समय दुर्भाग्यवश हमलोगोंको साधुओंका दर्शन नहीं मिलता, उस समय बहिर्मुख जनसङ्गकी अपेक्षा निर्जनमें एकान्तस्थानमें हरिनाम ग्रहण करनेकी विधि देखी जाती है। वस्तुतः अकपट साधुलोगोंका सङ्ग ही प्रकृत निजंजना है।

सार्दाना साः—हमलोगोंको तो प्रकृत साधुका दर्शन नहीं मिलता।

आचार्यदेव—आपको प्रकृत साधुका अनुसन्धान करना होगा। इस विषयमें आलसी वा उदासीन होनेसे नहीं चलेगा। प्रकृत साधुका सङ्ग प्राप्त करनेके लिये सभी प्रकारसे चेष्टा करनी होगी। आपकी सच्छास्त्र और भगवान्के प्रति आन्तरिक श्रद्धा रहनेसे कृष्ण-कृपासे प्रकृत साधुका दर्शन अवश्यही

मिलेगा ।

सार्हाना साः—प्रकृत साधुको पानेपर भी हम-  
लोंगोंके सदृश संसारी जीवको वैसा साधुसङ्ग  
करनेका समय कहाँ है ?

आचार्यदेव—हम नश्वर परिवारवर्गोंका पोषण  
करनेके लिये इतना समय और शक्ति नियोग कर  
सकते हैं, किन्तु हमारे पास अपने आत्माका और  
आत्मसम्बन्धी आत्मीयगणोंके नित्यसङ्गलके लिये  
साधुसङ्ग करनेका समय नहीं है, यह विचार लाना  
बड़े ही दुर्भाग्य की बात है । साधुसङ्गके लिये ही  
संसार वा देहयावानिर्वाह करनेकी आवश्यकता है;  
नहीं तो इन सबोंकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है ।  
जिस उद्देश्यके लिये संसार है, उसी मूल उद्देश्यको  
परित्याग कर जो संसारमें प्रवृत्ति हो वह पशु-प्रवृत्ति  
में भी नीच है !

सार्हाना साः—तो क्या जिस समय मैं हरिनाम  
ग्रहण करता हूँ, उस समय अकेला नहीं रहूँगा ?

आचार्यदेव—किसी प्रकारसे भी अकेला रहना  
नहीं होगा । अपनेसे श्रेष्ठ अकपट वैष्णवके  
सङ्गमें रहकर हरिनाम करना होगा; श्रीहरिनामकी  
कृपाके लिये प्रार्थना करनी होगी । यदि निकपट  
साधुका अभाव हो, तो हरिनामके निकट इस प्रकार  
प्रार्थना करनी होगी कि जिसमें शुद्ध नामाचार्यके  
अर्थात् हरिनाम परायण प्रकृत वैष्णवका सङ्ग प्राप्त  
हो । श्रीनाम प्रभुके निकट सकातर प्रार्थना जनानेसे  
वे प्रकृत साधु प्रदर्शन करायेंगे एवं साधुसङ्गमें रहकर  
नामप्रभुकी सेवा करनेकी योग्यता और बल प्रदान  
करेंगे ।

सार्हाना साः—जिस समय साधुसङ्ग पाऊँगा,  
उस समय क्या करूँगा ?

आचार्यदेव—उस समय साधुके निकट अकपट

होकर आत्मसङ्गलका परिप्रश्न करेंगे एवं वे जो कुछ  
कीर्त्तन करते हैं उसे सेवोन्मुख कर्णके द्वारा श्रवण  
कर तदनुरूप जीवन यापन करेंगे । इसीका नाम है  
—‘साधुसङ्ग’ ।

सार्हाना साः—मैं यदि साधुसङ्गमें हरिकथाके  
इतना समय दान करूँ तो निर्दिष्ट एकलक्ष हरिनाम  
करनेका समय किस प्रकार पाऊँगा ?

आचार्यदेव—हरिकथा और हरिनाम एकही  
वस्तु हैं । जो हरिकथा श्रवण और कीर्त्तन करते  
हैं वे हरिनाम नहीं करते, इस प्रकार जड़ और  
मण्ड प्राकृत विचार नहीं करना चाहिये । तब  
निर्वन्धरूपसे जो हरिनाम ग्रहण किया जाता है  
वह यदि हरिसेवा वा हरिकार्यमें नियुक्त रहनेके  
समय सम्पूर्ण नहीं हो, तो अन्यान्य दैहिक कार्य—  
जैसे निद्रादिको कम करके हरिनाम कर सकते हैं ।

सार्हाना साः—उस प्रकारसे जो हरिनाम ग्रहण  
किया जायगा वह तो अकेला ही करना होगा; नहीं  
तो किस प्रकार निवन्धकी रक्षा होगी ?

आचार्यदेव—पहले ही तो बार बार कहा है—  
अपनेसे श्रेष्ठ और नामपरायण साधुका सङ्ग नहीं  
होनेपर विवश हो अकेले दुःसङ्ग वा नामापराध  
छोड़नेमें यत्नवान होकर वैधर्म्य से श्रीनाम करना  
होगा । साधुके मुखसे हरिकथा और हरिनाम  
माहात्म्य सुनते सुनते हरिनामका आदर करते करते  
श्रीनाम ग्रहण करना होगा ।

सार्हाना साः—ऐसा होनेसे उस प्रकारका हरि-  
नाम ग्रहण तो mechanical हो जायगा ?

आचार्यदेव—इससे हरिनाम स्मृतिके पक्षमें  
और भी सहायता मिलेगी । साधुकी श्रीमुखनिःसृत  
उपदेशवाणी हरिनाम कीर्त्तनका ही पोषक है । साधु  
के श्रीमुखवाणीका श्रवण और हरिनाम ग्रहणका

तात्पर्य भिन्न नहीं है। श्रीहरिनामप्रभुकी जो इन्द्रिय-  
वृत्ति करता है, वह हरिनामस्मृति का ही पुष्टिकारक  
है। जिस प्रकार हरिनाम और हरि एक हैं, उसी  
प्रकार हरिकथा और हरिनाम अभिन्न हैं। हरिकथा  
ही हरि हैं,—हरिनाम ही हरि हैं। अतएव हरि-  
कथा ही हरिनाम है। जो हरिकथा कीर्तन करते  
हैं, वे हरिनाम ही करते हैं। हरिनाम ग्रहण के समय  
हरिकथा मनसे चिन्ता विक्षेप नहीं होता; क्योंकि  
वह एक ही तात्पर्यमय है। हरिकथा हरिनाम की  
अधिकतर भूति करती है। दोनों के मध्यमें किसी  
प्रकार विजातीय भाव नहीं है। हरिकथा और  
हरिनाम, दोनों ही एक स्वरूप हैं।

सार्हना सा:—मेरे पितृदेव भुव अर्चनप्रिय  
और वेदान्ती थे। वे वैष्णव नहीं थे, वे निर्जनमें  
बैठकर लगानार कई घण्टे ध्यान करते थे। मैं जब  
बहुत छोटा (बालक) था, उसी समयसे वे मुझको  
निर्जनमें आँख मंदकर ध्यान करनेके लिये उपदेश  
देते थे। इसीलिये मैं बाल्यकालसे ही निर्जनमें  
ध्यानादिके द्वारा चित्त-निरोध करनेका पक्षपाती हूँ।  
उसके विपरीत विचार पर विश्वास कर नहीं सकता।

आचार्यदेव—कार्य देखकर कारण निर्णीत होता  
है। आप बाल्यकालसे निर्जनमें ध्यानादिमें अत्य-  
न्त रहकर कितना आत्मोन्नति कर सके हैं ?

सार्हना सा:—मैं तो इस विषयमें ऐकान्तिक  
नहीं हुआ। ऐकान्तिक होनेसे, समझमें आता है  
कि इस विषयमें उन्नति लाभ कर सकता था।

आचार्यदेव—यह तो आपका अनुमान है।  
श्रीमद्भागवतने बहुत स्पष्टरूपसे हृदयके साथ कहा  
है कि, चित्त सम्पूर्ण रूपसे शुद्धसत्त्व-भूमिमें  
उपस्थित न होने तक किसी आकार का ध्यान  
करनेसे, वह पौल्लिकताके (पुतलीके से भावके)

मिवाय और कुछ नहीं हो सकता। अभोक्तज  
परमेश्वरके सच्चिदानन्द आकारको तृतीयमानके  
किसी ध्यान वा धारणाके द्वारा साधना नहीं जा सक-  
ता। परमेश्वर वश्य जीव तत्त्वके कल्पनाके द्वारा  
निर्यामन नहीं होते यही उनका अभोक्तजत्व है।

सार्हना सा: तो क्या जो हरिनाम ग्रहण  
करेंगे, वे एक मात्र आप्त स्पन्दनके करनेके मिवाय  
और कुछ नहीं करेंगे ? उस समय उनका मन कहाँ  
रहेगा ?

आचार्यदेव—श्रीहरिनाम ग्रहणकारी पहले ही  
अद्वायुक्त और शरणागत होंगे। पहले ही आत्म-  
निवेदन कर श्रवण कीर्तनमें रत होंगे। इस आत्म-  
निवेदन वा शरणागतिके छः लक्षण हैं। उसी छः  
लक्षणोंके द्वारा चित्तवृत्ति अभिपिक्त रहनेसे हरिनाम  
ग्रहण करनेके समय मन उसी नामका ही सेवानु-  
कूल्य करेगा। शरणागतका मन साधारण भोगी  
और त्यागी जीवके मनके समान भोग वा त्यागके  
मन्थानमें डूबकर उभर नहीं घूमता। जो शरणा-  
गतिके पथमें चले हैं वेदोक्तमन्त्रके द्वारा सर्वप्रथम ही  
उनलोगोंका मनोधर्म नियन्त्रित हुआ रहता है एवं  
हरिनाम ग्रहणके द्वारा कृष्णपादपद्ममें चित्त क्रमशः  
सम्पूर्णरूपसे तृष्णायुक्त हो जाता है। मुतरां  
हरिनाम ग्रहण करनेके समय उनलोगोंको प्रथक्-  
रूपसे मनके अभिपिप्त वस्तुको देनेकी आवश्यकता  
नहीं होती। मन उस समय आपसे आप हरिना-  
मके औदार्य और माधुर्यसे आकृष्ट होता है।  
हरिनामके निकट कृपा प्रार्थना करने करते उसीसे  
आर्त्त और आकुल हो उठता है। वह आर्त्त और  
आकुलता जितनी ही वृद्धि पाती है उतना ही चित्त  
हरिनाममें अधिकतर आकृष्ट होता है और जड़  
मनोधर्म नहीं रहता है। श्रीनामप्रभुकी ओरसे जितनी

कृपा अवतीर्ण होती है, उतनी ही चेतनकी वृत्ति विकसित होकर सभी एकतात्पर्यपर हो जाता है। उस समय श्रवण कीर्तन और स्मरणमें जड़ भेद नहीं रहता। श्रीहरिनामकी सेवाके तात्पर्यमें सभी पर्यवसित (शेष) होकर उत्तरोत्तर उत्कण्ठाकी वृद्धि करते रहते हैं। इस उत्कण्ठा का विगम नहीं, यह क्रमशः वर्द्धमान रहता है।

सार्हाना सा.—आपने जो शरणागतिके लक्षण बतलाये हैं वह क्या क्या हैं ?

आचार्यदेव—जो विषय श्रीहरिनामके नित्य नर्पणविधानमें सहायता करते हैं, उन सब अनुकूल विषयोंके ग्रहण करनेमें मुद्द मङ्गल्य होना ही प्रथम लक्षण है।

सार्हाना सा.—श्रीहरिनाम ग्रहण करनेके अनुकूल विषय क्या क्या हैं ?

आचार्यदेव—निष्कपट हरिनाम लेनेवाले साधुका प्रीतिपूर्वक सङ्ग ही हरिनाम ग्रहणके अनुकूल है। पहले ही आपको कहा है,—कर्णिके द्वारा उसी साधुकी शुश्रूषा वा सङ्ग करना होगा। उस प्रकार नामपरायण साधुकी वाणी श्रवण करनेमें परम उत्साही होना होगा। उर्माके द्वारा ही हमलोगोंका चरम मङ्गल होगा, इसका मुद्द निश्चय कर लेना होगा। अनर्थकी प्रवृत्तताके कारण हरिनामकी स्फूर्ति न होने देखकर श्रीहरिनामका पथ परित्यागकर किसी प्रकारका दूसरा आरोहमार्ग स्वीकार करतेहुए आशु फल पानकी चेष्टामें न दौड़ कर विशेष धैर्य और साहिष्णुताके साथ गुरु वैष्णवके आनुपत्यमें हरिनाम ग्रहणकरनेमें धैर्य, साधुगणोंकी प्रदर्शित और कथित सेवाका अनुशीलन, अमनमङ्गल्यार्ग और साधुगणोंकी सेवामयी वृत्तिका अनुसरण करना होगा। ये सब हरिनाम ग्रहणके अनुकूल हैं।

यही आत्मनिवेदनका प्रथम लक्षण है।

सार्हाना सा.—शरणागतिका दूसरा लक्षण क्या है ?

आचार्यदेव—जो विषय हरिनाम श्रवण कीर्तनमें प्रतिबन्धक रूपमें उपस्थित होने हैं वा उसका किसी-रूपसे प्रातिकूल्य विधान करते हैं, उन सर्वोंको सर्वप्रकारसे वर्जन करनेके लिये मुद्द मङ्गल्य होना चाहिये। 'आज प्रातिकूल विषय कुछ ग्रहण करें, कल वा भविष्यमें इसका परित्याग किया जायगा', इस प्रकारके विचारको प्रातिकूल वर्जनका मङ्गल्य नहीं कहा जाता। जिस समय प्रातिकूल विषय उपस्थित होगा वा हुआ है, उसी समय कुछ भी विलम्ब न कर दृढ़ताके साथ उसको वर्जन करना होगा।

सार्हाना सा.—यदि उस प्रकारका मुद्द मङ्गल्य हृदयमें नहीं आये, तब क्या करूँगा ?

आचार्यदेव—प्रकृत साधुलोगोंका सङ्ग करनेसे उस प्रकारका मुद्द मङ्गल्य हृदयमें अवश्य आयेगा। श्रीनामके निकट और श्रीनामपरायण वैष्णवोंके निकट उसके लिये अकपट कृपा प्रार्थना करनी होगी, जिससे प्रातिकूल वर्जनकी दृढ़ता उपस्थित हो।

सार्हाना सा.—शरणागतिका और लक्षण क्या है ?

आचार्यदेव—'कृष्ण ही हमारी रक्षा करेंगे' इस प्रकार मुद्द विश्वास। जगतके कोई धन, ऐश्वर्य, लोकजन, विद्याबुद्धि वा अन्य किसी प्रकारकी वस्तु जीवकी रक्षा नहीं कर सकती। कृष्ण ही एकमात्र रक्षक हैं यत् हृदयमें विश्वास—और कृष्णको ही एकमात्र पालनकर्ता समझकर वरग—शरणागतिको चतुर्थ और सर्वश्रेष्ठ लक्षण है। कृष्णमें Unconditional full surrender अर्थात् पूर्ण आत्मनिक्षेप पञ्चम लक्षण—एवं 'कृष्णसेवा कर



नहीं सका—इस प्रकार अधिकतर कृष्ण सेवाके लिये सकलजानित दैन्य और आर्त्ति अर्थात् अप-  
नेको गुरु धेनूधक के पादपद्मका हेयतम (सबसे नीच)  
भूलीजानरूप दैन्य ही—पण्ड लक्षण है ।

सार्धाना साः—सत्कण जिस समय हरि कीर्त्तन करते हैं, उस समय तो त्रिह्लाका कार्य होता है, उस समय मन कहाँ जायगा ? यदि मनमें किसी रूपादि की चिन्ता नहीं की जाय वा भगवान् के रूपका ध्यान न करें तो मन क्या कभी स्थिर हो सकता है ?

आचार्यदेव—आप वह एक ही बात पुनः पुनः कह रहे हैं ? विषयकी अच्छी तरहसे अवधारण कीजिये । श्रीनामग्रहणके आनुपाङ्गिक फलस्वरूप चित्तदर्पण परिभाजित होगा, संसाररूप महादावाग्नि निर्वापित होगी (बुझ जायगी) ; यह हरिनाम ग्रह-  
णका आनुपाङ्गिक फल है—This is the secondary effect of Harinam. The net result of Harinam is attainment of pure re-  
statement in true unconditioned self and love of Sri Krishna.

चेतादर्पणमार्जनं भव महादावाग्नि-निर्वापणम्  
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावभूजीवनम् ।  
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृताम्बादनं  
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्त्तनम् ॥

(शिक्षाष्टक प्रथम श्लोक) ।

श्रीकृष्णसंकीर्त्तन मलिनाचित्त जीवके हृदय दर्पण-  
को मार्जन करते हैं, संसाररूपी वनकी दावाग्नि का निर्वापण करते हैं, जीवके परममङ्गलरूप कुमुदके शुभ्रत्वाविकाशक कल्याण-कारण वितरण करते हैं, वे अप्राकृत विद्यावधूके जीवनस्वरूप और जीवके अप्राकृत-कृष्णसेवानन्दवर्द्धनकारी हैं । वे पद पदमें पूर्णामृतका आम्बादन कराते हैं एवं सर्वात्माके

कृष्णप्रेममलिनमें स्नान सम्पादन कराते हैं । उसी सर्वोत्कृष्ट श्रीकृष्ण कीर्त्तन की जय हो ।

सार्धाना साः—जिस समय हमलोग कृष्णनाम उच्चारण करें, उस समय यदि कृष्णका कोई रूप स्मरण हो, तो क्या उसको भी परित्याग करना होगा ?

आचार्यदेव—आप अपने किसी कल्पनाके मायमें नहीं जायगे । आप केवल श्रीहरिनाम उच्चारण करेंगे, एवं अनुक्षण आर्त्ति और प्रपत्तिके साथ उनकी करुणा प्रार्थना करेंगे, और इसके बाद सब हरिनाम ही आपके लिये विधान करेंगे । हरिनाम—सर्वशक्तिमान हैं, वे स्वतःकर्तृत्वधम-  
विशिष्ट और स्वगट् हैं ।

सार्धाना साः—हरिनामग्रहण करनेके समय क्या कृष्णके रूपकी कथा की बिलकुल ही चिन्ता नहीं करनी होगी ?

आचार्यदेव—इस विषयमें हरिनामकीर्त्तनके लिये चेष्टाविशिष्ट अनर्थयुक्त व्याक्तकी आगये किसी प्रकार की चेष्टा नहीं होगी । श्रीहरिनामही उसको भूर्त्ति करानेके साथ साथ अपना नित्यरूप प्रदर्शन करायेंगे ।

सार्धाना साः—हमलोगोंका क्या कोई पुरुषाकार (चेष्टा) नहीं रहेगा ?

आचार्यदेव—साधन फलभोगकामी कर्मोंके पुरुषाकार जातीय नहीं है, वह कृत्रिमता वा कल्पना नहीं है । हमलोग अशुद्ध मलिनमनमें अधोक्षज पुरुषोत्तमके किसी रूप वा आकारकी कल्पना नहीं कर सकते । कल्पना एक प्रकारकी पुतली है । Harinam is not impotent—He is potent—He can show his Eternal Form अर्थात् हरिनाम पुरुषत्वहीन वस्तु नहीं हैं; वे सम्पूर्ण

शक्तिशाली हैं वे अपने स्वतः कर्तृत्वधर्मके द्वारा ही अपना निज रूप स्वयं प्रदर्शन करेंगे। “शुद्धे चान्तःकरणे रूपम्य स्फुरणम्”।

सार्दना सा:—हरिनाम करनेके समय चतु बन्द करना उचित है कि अनुचित ?

आचार्यदेव—हरिनाम-ग्रहणकारीकी ऐसी चेष्टा-का कोई प्रयोजन नहीं। मुनिये श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने क्या कहा है :-

तुण्डे ताण्डावनी रतिं चितनुते तृण्डावलीलक्ष्यये  
कर्णकरोडकडम्बनी घटयते कर्णार्धदेभ्यः स्पृहाम् ।  
चेतः प्राङ्गणमाङ्गनो विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं  
नो जाने जानता किराद्भिरमृतेः कृणोति वर्गद्वयी ॥  
(विदग्धमा: १।१२)

‘कृष्ण’ यह दो वर्ग कितना अमृतके साथ उत्पन्न हुआ है, यह नहीं जानता:—देखो, जिस समय नदीके समान वह भूयमें नृत्य करता है, उस समय वहन तुण्ड मुख) पानेके लिये रति विस्तार (अर्थात् आसक्ति वर्द्धन) करता है। जिस समय कर्णकुहर में प्रवेश करता है (अङ्कुशित होता है) उस समय अर्बुद (दश करोड़) कर्णके लिये स्पृहा जन्माता है, जिस समय चित्तप्राङ्गणमें (साङ्गिनीरूपसे) उद्भूत होता है, उस समय समस्त इन्द्रियकी क्रियाको विजय करता है।

If any empiric or mechanic effort is shown or attempt made by you to conduct your senses which is not accepted by Harinam that effort may not reach its goal—no empiric (physical or mental) attempt should be mechanically made by a novice—अर्थात् यदि अपनी ओरसे इन्द्रियों के चलानेके लिये किसी प्रकारकी

चेष्टाकी जाय, जो हरिनामके अनुमोदित नहीं है, उसके द्वारा आपका उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। नवीन व्यक्तिकी ओरसे किसी प्रकारकी कृत्रिम आध्यत्मिक चेष्टा करना कर्त्तव्य नहीं है।

सार्दना सा:—मैं तो अन्य कोई उद्देश्यसे यह नहीं कर रहा हूँ। जिसमें हरिनाममें मेरी एकाग्रता हो, उसीके लिये कर रहा हूँ।

आचार्यदेव—यह आपका अनुमान (Hypothesis) मात्र है चतु बन्द करनेके लिये अपने किसी प्राकृत इन्द्रियकी चेष्टा करनी नहीं होगी। सेवान्गुष्व इन्द्रियमें स्वतः ही अवतीर्ण होंगे। स्मरण रखेंगे—कृष्णकी समाप्त शक्ति उनके नाममें युक्त है। तो पर भी हरिनाममें रुचि नहीं हो रही है—विश्वास नहीं हो रहा है—शरणागति नहीं आ रही है—यही हमलोगोंका दुर्दैव, अनर्थ वा अपराध है। इमालिये श्रीगौरमुन्दर ने कहा है,—

नाम्नामकारि बहुधा निज सर्वशक्ति  
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।  
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि  
दुर्दैवमीदृश मिहाजनि नानुगागः ॥

—शिलाष्टक २५ श्लोक ।

[ हे भगवन, तुम्हारे नामही जीवका सर्वमङ्गल विधान करते हैं, इमालिये अपना ‘कृष्ण’ ‘गोविन्दादि’ बहुविध नाम तुमने विस्तार किया है। उस नाममें तुम्हारी सर्वशक्ति नित्य निहित है एवं उस नाम स्मरणके कालादिका नियम (विधि वा विचार) नहीं किया। प्रभो, जीवके पक्षमें ऐसी अनुलनीय कृपा कर तुमने अपने नामको मुलभ किया है, तथ पि मेरा नामापराधरूप दुर्दैव हमको इस प्रकार जकड़े हुए है, कि तुम्हारे ऐसे दयालु नाममें भी मेरा अनुगाग नहीं हुआ। ]

सार्धाना सा—आपका धन्य करनेसे क्या हरिनाम की शक्तियों कुछ कम कहा जा रहा है या उनकी शक्तियों पर आविर्भाव किया जा रहा है ?

आचार्यदेव—आप कोई ऐसा चेष्टा क्यों कीजियेगा जिससे विषयमें आप स्वयं निश्चित नहीं कि वह हरिनाम प्रभुके द्वारा गृहीत होगी कि नहीं। आपके पहले जो प्रकृत मङ्गलकर है उस विधानके करनेकी परिपूर्ण शक्ति हरिनाममें है। आप क्यों पहले ही ऐसी कल्पना करते हैं कि हरिनाममें वैसी शक्ति नहीं है।

सार्धाना सा—तो क्या मैं सम्पूर्ण निवेष्ट (चेष्टा रहित) रहेगा ?

आचार्यदेव—आप श्रीहरिनामप्रभुके इन्द्रिय-तर्पणके लिये निश्चित चेष्टाविशिष्ट होंगे। जो हरिनामका अनुशीलन करते हैं, उन लोगोंके समान सर्वेन्द्रियद्वारा श्रीनामप्रभुकी सेवामें अखिल चेष्टा-विशिष्ट व्यक्ति और कोई नहीं है। वे जगत्के प्राकृत फलभोगी वा फलत्यागी स्वमुखकामी सर्वश्रेष्ठ परिश्रमीके भी कभी कभी विश्राममुखवांछा शान्तिसुख लाभकी उच्छ्वासे से आलस्य प्रदर्शन वा निश्चेष्टता प्रदर्शनको धिक्कार, घृणा वा परित्यागकर सर्वदा चेतनकी वृत्तिमें प्रतिष्ठित हैं। आप हरिनाम श्रवण कीर्तन करते-जिस समय हरिनाम प्रभुकी सेवा और कृपा प्रार्थना करते रहेंगे, उस समय देखेंगे आपका चित्त उनकी सेवा करनेके लिये किस प्रकार चेष्टाविशिष्ट हो उठा है ! हरिनामप्रभुकी सेवाके लिये उस समय आप अत्यन्त चञ्चल हो उठेंगे। यह स्वभाव आपसे आप प्रकाशित होगा।

सार्धाना सा—तो क्या हमलोग निर्जन स्थानका अनुसन्धान वा चक्षु वन्द्यकर हरिनाम करनेकी चेष्टा कुछ भी नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव—आपके सामयिक भावसे वैसा करनेपर भी उस प्रणालीके द्वारा आपके हृदयमें शुद्ध हरिनामके प्रकाश पानेकी कोई सम्भावना नहीं। हरिनामकीर्तनधर्म स्वतन्त्र है। उसका प्रथम आनुपूर्विक फलही मनका सम्पूर्ण नियमन (दमन) —चित्तदर्पण मार्जन है। यह प्रथम फल होनेपर भी मुख्य फल नहीं है।

सार्धाना सा—किन्तु वही सबसे अधिक प्रयोजनीय है।

आचार्यदेव—आपके निकट। किन्तु आपको उसके लिये व्यग्र होना उचित नहीं है। आप केवल एकमात्र हरिनामका इन्द्रियतर्पण अनुसन्धान करेंगे। आपका मन नियन्त्रित करनेके लिये श्रीगुरुपादपद्मकी वाणी और हरिनाममें यथेष्ट शक्ति है। आपका धर्म यह है कि हरिनामका किस प्रकारमें इन्द्रिय तृप्ति विधान हो सकेगा उसके लिये सर्वदा चेष्टाविशिष्ट रहें।

सार्धाना सा—चित्तका वित्तेप दूर नहीं होता ? किस प्रकार हरिनाम करूँगा और उनका सुखानुसन्धान करूँगा।

आचार्यदेव—युव उच्चस्वरसे हरिनाम करेंगे—आर्त्तनाद कर हरिनाम प्रभुको पुकारेंगे, ऐसा होनेसे चित्तवित्तेप क्रमशः सङ्कुचित होता रहेगा।

सार्धाना सा—हां उच्चस्वरसे हरिनाम करनेसे चित्तवित्तेप नष्ट होता है। अच्छा, तुलसी माला-में—हरिनाम करनेमें मार्थकता क्या है ?

आचार्यदेव—तुलसी कृष्णके अतिशय प्रिय हैं, तुलसी—गुरुपादपद्म—Ever Benevolent Mediator—She shows and invokes mercy of Krishna for the Chanter, तुलसी परमहितकारिणी आवेदनकर्त्ता हैं। वे स्वयं कृपा कर

कृष्णके निकट हरिनाम कीर्तनकारीके लिये आवेदन- निरन्तर आनुगत्य और सङ्गमें कृष्णनाम करना कर कृष्णकी कृपा आकर्षण करेंगी। तुलसीके होता है।

(४)

## नामाचार्य श्रीयुत ठाकुर-हरिदास

भागवत की चौथी संख्या में ठाकुर हरिदास का गुण-गान करते हुए कहा गया है कि वे कालिय-नागके प्रति भगवानके दण्डदानके बहाने उनका महादया सूचक गीत सुनकर अपने प्रभु के कृपा-सूचक गीतसे मुग्ध होकर उद्दीपनके कारण प्रेमानन्दसे मूर्छित होगये तथा कुछ देरके बाद चेतनता प्राप्त कर आनन्दके मारे नृत्य करने लगे। उन्हें कृष्ण प्रेमावेशमें अप्राकृत अश्रु-कम्पादि होने लगा। महाभागवत ठाकुर-हरिदासने क्यों हरिनाम संकीर्तन किया, उनका क्या अभिप्राय था यह कोई नहीं समझ सका। कारण, महाप्रभु श्रीगोविन्दने उस समय तक इस संसारमें कृष्णनाम-प्रेम भक्तिका प्रचार आरम्भ नहीं किया था। हरिकथा-कीर्तनके अभावमें लोग विष्णुभक्तिरहित हो गये थे, सुतरां वैष्णवोंके सर्वश्रेष्ठ पदवाक्यों नहीं समझनेके कारण वैष्णवोंका उपहास करते थे। विषयी लोगोंको हरि-विस्मृति निरन्तर घनी रहती है, वे लोग किसी-न-किसी उपायसे हरिस्मरणरूपी भक्तिसे दूर रहकर अपने इन्द्रियोंकी प्रसन्नताके कामोंमें प्रमत्त रहते हैं। दुःसङ्ग छोड़कर भक्त लोगोंके एक साथ निर्जन में परस्पर कृष्णकीर्तन करनेसे दुष्टलोग क्रुद्ध होकर कहते कि उदरभरण तथा जीविकाके लिये ये सब उच्च स्वरसे कीर्तनकारी ब्राह्मणलोग हरिनाम कीर्तन करते हुए भावुक होगये हैं। धर्मानुष्ठानके बहाने अपने उदर पोषणके अतिरिक्त इनलोगोंका और कोई उद्देश्य नहीं है। इनलोगोंके ऐसे आचरणसे इस देशमें महा-दुर्भिक्ष होगा, सुतरां भिक्षा-वृत्तिको

चलाकर ये संसारकी अत्यन्त बुराई करेंगे।

भगवद्भक्तोंके प्रति इस प्रकारका मिथ्या दोषा-रोपण करनेसे जीवों का कभी भी मङ्गल नहीं होता, बल्कि नरक जाना पड़ता है। भक्तलोग मुग्धसे कृष्णकीर्तन करते हुए भगवानकी सबसे श्रेष्ठ सेवा करते रहते हैं। वे लोग तमोगुणकेवश आलस्य करके साधारणलोगोंके उपाधिर्जन धनको प्राप्त करनेके लिये लोभी होकर उसको ग्रहण वा भोग नहीं करते, परन्तु साधारणलोगोंके अपनी इन्द्रियों की प्रसन्नताके लिये दुर्बुद्धिसे सिञ्चित किए हुए द्रव्यादिको हरि सेवाके कामोंमें लगाकर उन लोगोंके नित्य एवं परम मङ्गलका उपाय करते हैं।

इन सब कामोंमें आसक्त भ्रान्त पाखण्डीलोग कहते थे कि चातुर्मास्यके समय भगवान विष्णु शयन करते हैं, अतएव श्रावण, भाद्र, आश्विन तथा कार्तिक—इन चारों महीनोंमें किसीको भी कृष्ण नाम लेना उचित नहीं है। इन महीनोंमें कृष्णकीर्तन करनेसे योगनिद्रामें निद्रित भगवानकी निद्रामें बाधा होनेके कारण वे अप्रसन्न हो जाते हैं। इस-लिये शास्त्रके आदेशको उलङ्घन करके यदि वैष्णव-लोग विष्णुके शयनके समय भी उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्तन करेंगे, तो भगवान् अवश्य ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस देशमें भारी दुर्भिक्षादि कग देंगे।

बहुतसे कर्मासक्तलोग निरपेक्षता दिखलाने हुए कहते हैं कि प्रति दिन भगवान्को उच्च स्वरसे बार-बार पुकारनेसे क्या फायदा। जीव जब अपने किये कर्म फलको भोगनेके लिये बाध्य है तथा ईश्वर भी

जब कर्म के आधीन हैं, तो ऐसी अवस्था में जीव ईश्वरको पुकारकर केवल अपने पिताको बढ़ाता है— यमक्त तथा भक्तोंके बीचमें रहनेवाले मीमांसक समाजके लोग इस तरहसे नाना प्रकारका प्रजल्प (वक्तवाद) तथा विचार किया करते थे। भक्तलोग इन सब बातोंको सुनकर अत्यन्त दुःखित होते थे, परन्तु हरिनाम-कीर्तनमें अचल तिष्ठा रहनेके कारण वे हरिसंकीर्तन नहीं छोड़ते थे।

अन्याभिलाष (भगवद्भक्तिको छोड़कर अन्य किसी विषयकी अभिलाषा होना), कर्म, योग तथा ज्ञान प्रभृति चैष्टाके आचरणमें (परदे) आवृत्त रहकर भगवन् सेवाका अभितय, या भगवन् प्रतिकूल आचरण भक्ति कहलाने योग्य नहीं है। किन्तु इसी प्रकारकी अभक्तिके विचारमें उस समय लोगोंकी प्रवृत्ति थी। देह तथा मनके धर्मे बद्ध जाशोंका भक्तिपक्षसे विमुख करके उनलोगोंमें विमलभक्तिकी महिमाको छिपा रखा था। ठाकुर हरिदास सामाजिक लोगोंको इस प्रकार अपने-अपने अमङ्गलोंके साधनमें प्रवृत्त देखकर हृदयमें अत्यन्त दुःखित होते थे और उच्चस्वरसे नाम सङ्कीर्तन करने रहते थे। परन्तु पापीलोग उसे सुन नहीं सकते थे। हरिनदी-प्राप्तका एक दुर्जन नास्तिक ब्राह्मण ठाकुर-हरिदासको देखकर कहने लगा 'अथ हरिदास तुम्हारा ऐसा व्यवहार क्यों है, इतना चिल्लाकर नाम लेनेसे क्या फायदा है। मन-ही-मन जपनेसे ही तो धर्म होता है चिल्लाकर नाम लेनेको किस शास्त्रमें कहा गया है। इसके उत्तरमें ठाकुर-हरिदासने दीनतापूर्वक अपनेको मानगर्हित समझते हुए और उस ब्राह्मणके प्रति आदर करने हुए कहा कि मैंने हरिनाम कीर्तनका अतुल्य माहात्म्य स्वयं शास्त्र पढ़कर प्रथम ही दर्शनके नहीं प्राप्त किया। नामत-

त्वाविन शुद्धनामोच्चारणकारी लोगोंके मुखसे जो सुना है, वही तुमलोगोंको कहता हूँ। मन-ही-मन श्रीनाम ग्रहण वा उच्चारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है उच्चस्वरसे नाम कीर्तन करनेसे उसमें सौगुणा अधिक फल होता है—यही सब शास्त्रोंका मन है। जैलोग महामन्त्र हरिनामको केवल 'जप' कहते हैं, वे शास्त्रमर्मको नहीं समझते हैं। 'हरे' 'कृष्ण' एवं 'राम'—यह सम्बोधनका तीनों पद 'जाय' भी है और कीर्तनीय भी है। भगवान् मन-ही-मन पुकारे जा सकते हैं तथा उच्चस्वरसे भी पुकारे जा सकते हैं। उच्चस्वरसे पुकारनेसे बहुतलोग भगवन्नाम श्रवण कर सकते हैं और उससे बहुतलोगोंका भगल होता है। नाम-श्रवण नवधाभक्तिका एक पञ्चम अंग है। साधुलोगोंके उच्चस्वरसे हरिकीर्तन नहीं करनेमें किसीको भी श्रवणाख्य भक्तिका अधिकार नहीं होता है। सुतगं उच्चकीर्तन-विरोधीलोगोंका असन्तुर्क—कलि प्रणोदित मात्र है। ध्यान, यज्ञ तथा अर्चन द्वारा श्रीनाम कीर्तन अव्यक्तरूपसे होता है। इमीलिये कलिकालमें ध्यान, यज्ञ, तथा अर्चन विधिमें नानाप्रकारका विवाद उपस्थित होता है। कलिकालके मारे लोग जिस समय परमार्थी लोगोंके हरिभजनमें बाधा देनेके लिये अग्रसर होते हैं उस समय सत्ययुग त्रेता तथा द्वापरके अभिधेय क्रमशः ध्यान, यज्ञ तथा अर्चन करनेवाले सज्जनलोग उनलोगोंके साथ कुतर्कमें प्रवृत्त नहीं होते किन्तु कलिकालका अभिधेय हरिनाम संकीर्तन है इमीलिये वे हरिनामोच्चारणकारी सज्जनलोग कलिकालके वशीभूत लोगोंकी असन्तु प्रवृत्तिको दूर करके उनलोगोंके नित्यमङ्गलके लिये श्रीनामकी अनन्त महिमाकी कीर्तन करते रहते हैं जिससे कुतर्कीकलोलोंको कुतर्करोगग्रस्त चित्तवृत्तिका उपयुक्त औषध मिलता

है। तब उस विप्रने पूछा कि उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्तन करना सौगुना अधिक लाभदायक है इसका क्या कारण है। इस प्रश्नके उत्तरमें ठाकुर-हरिदासने कहा कि वेद तथा श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें जो कहा गया है उसे सुनिये। ऐसा कहकर ठाकुर-हरिदास जिनके मुखमें सर्वशास्त्रकी स्फूर्ति आपसे आप होती थी कृष्णानन्दमें मग्न होकर कहने लगे कि हे विप्र माधु, भक्त अथवा वैष्णवोंके मुख्यमें श्रीनाम श्रवण करनेसे शुश्रूषु जीवमात्रके (पशु, पक्षी कीटादिके) कर्णके छिद्रसे वह उच्चरित वैकुण्ठशब्द प्रवेश करके उस जीवको मायाबन्धनसे छुड़ा देता है। कारण, वैकुण्ठनाम जीवको भोग-बुद्धिसे विमुक्त करके उसमें वैकुण्ठ वस्तुकी सेवा-बुद्धि विकसित करते हैं। साधारण नाम उच्चारण करने के समय शब्द जड़ आकाशमें पैदा होता है अतः नाम लेने वालेकी भोग बुद्धि बनी रहती है किन्तु भक्तोंकी जिह्वामें जो शुद्ध नामका उच्चारण होता है वह वैकुण्ठ धामकी वस्तु होती है इसलिये उसमें भोग बुद्धिरूप किसी प्रकारका अज्ञान नहीं रहने पाता। वह वैकुण्ठनाम अद्वयज्ञान वाचक होता है। इन्हीं कारणोंसे इस नामके उच्चारण करने वाले जीवको कोई भोगात्मक बुद्धिका बन्धन होने नहीं पाता। सुतरां, वैकुण्ठ भगवन्नाम ग्रहण करनेसे जीव जीवनमुक्त हो जाता है।

बद्धजीवको अपने संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये मुक्तपुरुषके निकट मन्त्रदीक्षारूप अनुग्रह ग्रहण करना चाहिये। मन्त्रसिद्ध होनेसे उन्हें उच्चस्वरसे नामग्रहण करनेका अधिकार होता है। उस समय वे जगद्गुरुके रूपमें बद्धजीवोंको जो, शुद्ध कृष्ण नामसे भिन्न इस जड़ आकाशमें उत्पन्न चित्तको लुभाने वाले असत् शब्दों और प्रजल्पनाओं

(वक्त्रवादी) के सुननेमें, अनर्थ दर्शन होता है उससे द्रवीभूत और दुःखी होकर उन्हें उनकी इस जड़ानु-भूतिमें विमुक्त करके शुद्धमत्त्व वैकुण्ठ राज्यमें जानेकी प्रेरणा करते हैं। साधारण मूढलोग समझते हैं कि केवल एक बार वैकुण्ठनाम लेने, श्रवण करने तथा कीर्तन करनेमें जो हमारे शास्त्रोंमें वैकुण्ठ गमन का कथन है वह केवल अर्थवाद है (अर्थात् कहने सुनने की बात है)। किन्तु वास्तवमें वैकुण्ठनामका अतीन्द्रिय प्रभाव ऐसे भ्रान्त और जड़विचारपरायण लोगोंके लुप्त मस्तिष्कके भीतर नहीं पहुँचता है। वैकुण्ठनामका मायिक शब्दोंके समान समझनेमें जीवोंकी भोगमयी कुप्रवृत्ति अप्राकृत तथा अधोक्षज (ज्ञानार्थी) भगवानको जानने नहीं देती। पशु, पक्षी कीटादि गो बाल नहीं सकते वे वैकुण्ठ नाम सुनकर तर जाते हैं। जो वैकुण्ठनाम जप करते हैं वे केवल अपनाही मङ्गल करते हैं; और जो वैकुण्ठनाम उच्चस्वरसे सङ्कीर्तन करते हैं वे अपने मङ्गल के साथ श्रोतालोगोंका भी मङ्गल करते हैं। एकमात्र कृष्णकीर्तनकारी श्री सद्गुरुदेव ही जीव पर दया अथवा पराधकार करने में समर्थ हैं, और कोई नहीं। अतएव उच्चस्वरसे संकीर्तन करनेमें उसका सौगुण-अधिक फल होता है। यह बात युक्तिसंगत भी है कारण जपकर्त्ता केवल अपनेको ही पवित्र करते हैं, किन्तु उच्चस्वरसे हरिकीर्तन करने वाले व्यक्ति अपने को तथा श्रोतृवृन्दको भी पवित्र करते हैं। मुख्य गुरुके समीप हरिनामके बदले और कोई शब्द सुनकर यदि कोई व्यक्ति भोगकी इच्छासे सकाम उपासना करता है, तो उससे उसे कभी नित्य मङ्गल प्राप्त नहीं होता। किन्तु महाभागवत मुक्त गुरुदेवके मुखमें सुना हुआ शुद्ध हरिनाम कीर्तन करने वालोंको यदि हरिनामकी महिमा समझमें न आवे तो अन्य

श्रोतृ-वैष्णवगण उसे समझा देते हैं इसलिये भी जप करनेवालोंकी अपेक्षा उच्चस्वरमे नामकीर्तन करनेवालोंको अधिकही मंगल लाभ होता है। नामापराध नामाभास तथा शुद्ध श्रीनाम ग्रहण इन तीन प्रकारके विचारकी उपलब्धि जिसको नहीं हुई रहती है वह व्यक्ति बहुत दिनों तक दश अपराधों में से एकनिष्ठ नामाश्रित साधु वा वैष्णव की निन्दाका अपराध करता ही रहता है। वह पुनः गुरुश्रवणारूप भीषण अपराध तथा गुरुको मर्त्यजीव समझकर उनकी निन्दा का अपराध भी किया करता है। प्राकृत-वस्तुमें देवज्ञान करके वैसेही देवताओं को सर्वेश्वर विष्णुके समान समझनेका अपराधभी उसे होता है जिसमें वह एकान्तिक वैष्णवोंके प्रति श्रद्धाहीन होकर वैष्णवापराधी होजाता है। उससे श्रीनामप्रभूकी सेवामें अनवधान (मनोयोग शून्यता) होनेका एवं नाम-महिमामें अर्थवाद समझनेका अपराध होजाता है। अन्य शुभक्रियाके साथ नाम-ग्रहणको बराबर समझता है एवं नामके भरोसे पापमें प्रवृत्त होकर पापासक्त होजाता है। वह लोभवश गुरुका आसन ग्रहण करके अर्थान (अर्थात् गुरु वनकर) अश्रद्धानु व्यक्तियोंको सौदा बेचने की नाई नामउपदेश करनेका झूल करके संसार का अमङ्गल करता है। 'मैं' 'मेरा' भावसे प्रमत्त होकर क्रमशः वेदशास्त्र तथा वेदानुग ब्राह्मणोंका विरोधी हो जाता है। इस प्रकार दशपूकारके अपराध जपकरनेवालेके अधःपतनका कारण होते हैं, किन्तु श्रीनाम-कीर्तन करने वाले व्यक्ति सतसंगतिके प्रभावसे इन सब अपराधोंकी जानकारीके कारण निर्जन-भजनकी असुविधासे छुटकारा पाते हैं।

मनुष्यको छोड़कर और और प्राणियोंको भी

जिह्वा रहती है जिसके द्वारा वह नाना-पूकारकी ध्वनि उच्चारण करते हैं, परन्तु मनुष्यके अतिरिक्त कोई दृमरा प्राणी कृष्णनाम उच्चारण नहीं कर सकता है। कुछ लोग कह सकते हैं कि पक्षी भी तो कृष्ण-नामके सदृश शब्द अनुकरण (उच्चारण) करता है तो क्या उससे वह भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है? इसका उत्तर यह है कि 'अनुकरण' तथा 'अनुसरण' बिल्कुल पृथक् बात है। अनुकरणकारीके कृष्ण-नामके सदृश जड़ाकाशमें इन्द्रियोंको प्रसन्न करने-वाले शब्दोंके उच्चारण करनेपर भी उसकी सेवोन्मुख जिह्वा पर चिदिन्द्रियग्राह्य चिदाकाशविराजित कृष्णनाम उच्चारित नहीं होता है। शुद्धसत्त्व कृष्ण नामके अतिरिक्तविषय-भोगकी इच्छासे वा सकाम-भावसे उच्चारित नाम-प्रतिम शब्द, 'वैकुण्ठ-नाम' नहीं है। वह तो तुच्छफल देनेमें समर्थ होने के कारण नामापराध कहा जाता है, परन्तु वह शुद्धनामके फल कृष्णप्रेमका उदय नहीं करा सकता। जीवमात्र वैकुण्ठनाम ग्रहण नहीं कर सकनेपर भी कर्ण द्वारसे वैकुण्ठ नाम श्रवण कर सकते हैं। वैकुण्ठनाम श्रवण करनेकी जिम्मेदारी योग्यता नहीं हुई, उसका जीवन सचमुच ही वृथा है। जिस वैकुण्ठनाम-कीर्तनके श्रवण का अधिकार प्राप्त कर उसके प्रभावसे प्राणी जीवनमुक्त हो सकता है, वह उच्च हरिनाम कीर्तन कभी भी दोष वा तर्कद्वारा समालोचना का विषय नहीं हो सकता।

कोई स्वार्थवश अपने पोषण पालनमें लगा रहता है और कोई अपने पोषण पालनके साथ साथ अन्य हजारों व्यक्तियोंका भी पोषण करता है,—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है यह स्वीकार करना होगा। इतना तो विचार करनेसे समझमें आ जाता है कि उच्च-कीर्तनकारी निःस्वार्थी तथा परोप-

कारी होते हैं। अतएव केवल नाप-जपकी अपेक्षा उच्चनामसङ्कीर्तन हजारों गुणा श्रेष्ठ है।

ठाकुर हरिदासके उपदेशको सुनकर वह पाखण्डी विप्राधम क्रोधवश व्यंग्य वचन कहने लगा,—भारत-वर्षमें छः प्रधान दर्शनशास्त्र प्रसिद्ध हैं। ये सब शास्त्र न्यूनाधिक वेदानुगत हैं। अब हरिदासका विचार पड़दर्शनके बदले ‘सप्तम दर्शन’ नामसे विख्यात होगा। यह कालकाल है, मुनरंग वैदिक पञ्च कालके प्रभावसे हरिदासके सहश श्रौतपन्थी शुद्ध वैष्णव लोगोंके द्वारा ध्वंस होनेके लिये चला! कपिल तथा पतञ्जलि, कणाद तथा अक्षपाद, जैमिनी एवं व्यास—यही लोग अबतक पड़दर्शनके मालिक

थे। इस समय हरिदास उपस्थित होकर सप्तम-दर्शनके मालिक हो गये! समय समयपर कितने प्रकारके विचार उपस्थित होते हैं।

इस प्रकार वह अभक्त और शौकाभिमानि विप्र (जातिकुलका अभिमान करने वाला) गुरु वैष्णवोंके प्रति सामान्य जाति तुद्धि आरोप करके महापरायण वश नरकका भागी हुआ और हरिदाससे कहने लगा कि यदि तुम्हारी कटी हुई नाम-महिमा पुण्य-रूपसे शाम्बोक्त न हो तो मैं सबके सामने तुम्हारा नाक कान काट लूँगा।

क्रमशः ।

## “आदौ श्रद्धा”

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा और श्रीरूपगोस्वामी प्रभुकी वाणीमें “आदौ श्रद्धा” का उपदेश पाया जाता है। प्रेमभक्ति प्राप्त करनेके क्रमानुगुणमें भक्तिसाम्राज्यके मूल महात्मा श्रीरूपने “आदौ श्रद्धा” अर्थात् सबसे पहले ‘श्रद्धाकी’ कथा का उल्लेख किया है। ‘श्रद्धा’ ही प्रेम भक्तिकी प्रथम कथा है। ‘श्रद्धाके’ बिना भक्तिमें अधिकार नहीं होता। ‘श्रीसनातनशिक्षामें’ श्रीमन्महाप्रभुने हमारे शब्दोंमें यों कहा है, कि

“श्रद्धावान जन ह्य भक्ति-आधिकारी।”

—चैः चः म २३६४

एकमात्र श्रद्धावान व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी हैं। जबतक श्रद्धा नहीं होती, तबतक जीवका अभक्तिमें अर्थात् अन्याभिलाष कर्म, ज्ञान, योगादिमें वा आध्यत्मिकतामें ही स्वाभाविक अधिकार रहता है। गीतामें भी श्रीभगवान् जीने अर्जुनसे कहा है,—

“श्रद्धावान लभते ज्ञानम्”

(गीता प्रा३९)

अर्थात् श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अश्रद्धालुका विनाश अवश्यम्भावी है—

“अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति।”

(गीता प्रा३९)

अज्ञ, अश्रद्धान और संशयात्मा पुरुष ज्ञान का प्राप्त होने हैं अर्थात् वह कभी भी आत्मसङ्गल प्राप्त नहीं कर सकते।

श्रीसनातनशिक्षामें श्रील कविराज गोस्वामी प्रभु कहते हैं,—

कोन भाग्ये कोन जीवैर ‘श्रद्धा’ यदि हय।

तवे सेइ जीव ‘साधुसङ्ग’ करय ॥

चैः चः म २३६९

किसी विशेष भक्त्युन्मुखी मुक्तिके फलस्वरूप जीवके हृदयमें श्रद्धादेवी का आविर्भाव होता है। श्रील कविराज गोस्वामी प्रभुने ‘भाग्य’ शब्दके पहले



एक 'कोन' (कोई) और 'जीवेर' शब्दके पहले पुनः 'कोन' (कोई) शब्द का प्रयोग कर भाग्य वा सकृन्निर्णयं मुकृन्निर्णयम् जीव मुदुर्लभ हैं—यही मतलाया है। इससे वे भाग्यवश इनेगिने (बहुतरुम) जीवके हृदयमें प्रकाश उदय होती है एवं श्रद्धा के उदय होने ही से कृष्णभक्तिकी जड़ साधुमङ्गलके प्रति जीवकी रीच होती है। इससे यही सिद्ध होता है कि श्रद्धाका अभाव रहनेसे सच्चे महापुरुषों को सामने पाकर भी वा फल साधुके पास रहने हुए भी हमें साधुका सङ्ग नहीं मिलता।

क्या गीता, क्या भागवत, क्या उपनिषदादि-शास्त्र सर्वत्र ही कहा गया है कि अश्रद्धालु को शास्त्र उपदेश नहीं करना चाहिये। शास्त्र और साधुओंने एकस्वरसे अश्रद्धालु का 'प्रवेश निषेध' किया है। अश्रद्धालुको नामोपदेश करनेसे 'नामापराध' होता है। श्रीगीतामें भगवान् "सर्व-धर्मान्परित्यज्य" श्लोकके बाद ही कहते हैं कि अभक्त और अश्रद्धालुको कभी भी गीताशास्त्र श्रवण नहीं करना। श्रद्धालु और विद्वेष शून्य व्यक्ति ही गीता श्रवणकर मङ्गल प्राप्त कर सकते हैं।

श्रद्धाके तात्पर्यानुसार ही भक्तके वङ्गनका नारतम्य समझा जाता है। जो शास्त्रके वचनोंमें निपुण हैं और हृदयश्रद्धा रखते हैं, वे ही संसारके उद्धार करनेवाले उत्तम अधिकारी हैं; जो हृदय शास्त्र-युक्त नहीं जानते, किन्तु श्रद्धालु हैं, वे मध्यमाधिकारी हैं; और जिनकी श्रद्धा अत्यन्त कोमल है, वे मान्यताधिकारी हैं। कोमलश्रद्धा व्यक्ति जब हृदयश्रद्धा होता है तब उसे उत्तमाधिकार प्राप्त होता है। अतएव प्रोढ़, मध्यम और कनिष्ठ-भेदसे श्रद्धा जैसे तीन प्रकारकी है, वैसे ही भक्त भी तीन प्रकारके हैं।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीमन्महाप्रभुका जो वाक्य मिलता है, उसमें श्रद्धा शब्दका ऐसा अर्थ है—

"श्रद्धा"—शब्दे विश्वास कहें, मुदृढ़ निश्चय।

कृष्ण भक्ति कहे सर्व कर्म कृत हय॥

—चै. च. म २५६२

कृष्ण-भक्ति करनेसे सभी कर्म सम्पादित हो जाते हैं ( किसी कामका करना याकी नहीं रहता)—ऐसा मुदृढ़ निश्चयात्मक हार्दिक विश्वास पृथ्वीके प्रायः सैकड़ों एक मनुष्यमें भी नहीं है। जिनका ऐसा विश्वास है वे ही भाग्यवान् हैं। प्रतिदिन प्रसाद-सम्मान करनेके समय जो 'साधु साधवान' की ध्वनि महात्मा लोग हमलोगोंके कानोंमें प्रवेश कराते हैं, उसमें भी यही बात साबित होती है—

"महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे।

स्वल्पपुण्यवतां राजन विश्वासा नैव जायते॥"

जो अति अल्प-पुण्यवान् हैं, अर्थात् जिनलोगोंकी भक्त्युन्मुखी सुकृति नहीं है, उनलोगोंको महाप्रसादमें, श्रीविग्रहमें, नामब्रह्ममें और वैष्णवमें विश्वास नहीं होता।

यह श्लोक भक्तिविज्ञानकी कर्मोटीके सदृश है। आध्यात्मिक ( इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला व्यक्ति) महाप्रसादको बाल-भानके सिवाय और कुछ नहीं समझ सकता। इसका कारण यह है कि वह पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को ही ज्ञानका साधन समझता है। अर्चावतार, नामब्रह्म और वैष्णव-सम्बन्धमें भी वह यही देखता और समझता है। गुरु और वैष्णवमें मर्त्यबुद्धि और अमूया करना बद्ध जीवका स्वाभाविक धर्म समझकर ही श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवान्को कहना पड़ा है—

आचार्य मां विजानीयात् नावमन्येत कर्हिचित्।

न मर्त्यबुद्धयामुयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

आम्नायमूत्रमे श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने कहा है—“अन्योपायवर्जं भक्तियुग्मुखी चित्तवृत्तिविशेषः । ज्ञान और कर्म प्रयोजन-सिद्धिका उत्तम उपाय नहीं है, भक्ति ही एकमात्र शुद्ध उपाय है; शास्त्र-विश्वासके सहित अन्नन्यभक्तिके प्राति जो इस प्रकारकी चित्तवृत्ति है, उसका ही नाम श्रद्धा है।”

‘तत्त्वाविन पण्डित श्रद्धा और शरणापत्तिको एक कहते हैं (एक ही समझते हैं) । सच्चिदानन्दसिंह,—

कर्म-परित्याग-हेतुत्वेनाभिधानाच्छ्रद्धाशरण-पर्यायेकार्थं लभ्यते । तच्चायुक्तं । श्रद्धाहि शास्त्रार्थ-विश्वासः । शास्त्रञ्च तदशरणस्य भय तच्छरणस्याभयं वर्धति । अतो ज्ञाताया श्रद्धा-याम्नात् शरणापत्तिरेव लिङ्गमिति ।

‘तावत् कस्माणि कुर्वीत’ इत्यादि भगवद्वाक्यमें श्रद्धाको ही कर्म त्यागका हेतु बतलाकर निर्दिष्ट किया है इससे श्रद्धा और शरणापत्तिको एकार्थ-सूचक प्रमाणित किया गया है । शास्त्रार्थ-विश्वास का नाम श्रद्धा है । शास्त्रार्थ यह है कि श्रीकृष्णके शरणागत नहीं होनेसे जीवको भय है, शरणागत होनेसे फिर भय नहीं रहता । अतएव श्रद्धा उत्पन्न होनेके साथ ही शरणापत्ति-उत्पन्न होती है और उसीसे श्रद्धाका बोध होता है । सब शास्त्रों-पर विचार करनेपर ही यह मारा सिद्धान्त प्राप्त होता है । सब शास्त्रोंके सिद्धान्तके रूपमें श्रीभगवद्-गीता का यह श्लोक कहा गया है,—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।  
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

हे अर्जुन तुम कर्म, ज्ञान, योग प्रभृति शास्त्रोक्त सभी धर्मोंको त्याग कर मेरी शरणमें आओ तो मैं तुम्हारा सभी प्रकारके पापोंसे उद्धार करूँगा,

शोच मत करो ।

‘श्रीकृष्णचरणमें शरणापत्तिके बिना और किसी उपायसे मेरा मङ्गल नहीं । अतएव मैं उम्मी अर्भय पदमें शरणापन्न हुआ’—इस दृढ़ विश्वासका नाम श्रद्धा, शरणापत्ति वा प्रपत्ति है । (सज्जनतोपणी ४ र्थ खण्ड, ६म संख्या ‘श्रद्धा और शरणागति’ ।)

श्रद्धाके अविर्भावके साथ ही साथ शरणापत्ति वा प्रपत्तिका उदय होगा । जो श्रद्धान् होनेका अभिनयकरने वाले हैं किन्तु श्रद्धामय व्यक्तिमें शरणागत नहीं है, उनलोमेंसे श्रद्धाका अभिनय केवल धोखा है ।

बहुत लोग कहते हैं, कि जबरदस्ती श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती वा जबरदस्ती कोई किसीको श्रद्धान् नहीं बना सकता । बहिर्मुख व्यक्तियोंके अनर्थरोग-की प्रचलताके कारण यदि हरि-गुरु-वैष्णवमें श्रद्धाका उदय न हो तो उससे यह नहीं प्रमाणित होता कि प्रकृत हरि-गुरु-वैष्णव सभारमें नहीं हैं । पृथ्वीके अधिकांश लोगोंको ही महाप्रसाद, गोविन्द, नामब्रह्म और वैष्णवमें श्रद्धाका उदय नहीं होता यह कहकर इन वस्तुओंकी वास्तवता वा गुरुत्वमें इनकार नहीं किया जा सकता । विण्ठाभोजी कुत्तेसे यदि श्रीनलसीदेवी बलपूर्वक श्रद्धा अदा नहीं करा सकती तो इसलिये तुलसी कृष्णप्रिया वैष्णवी नहीं हैं वा अप्राकृत वस्तु नहीं हैं, यह विचार भ्रम्य नहीं है । इन्द्रियविमूढ़में अर्चावतार बलपूर्वक श्रद्धा नहीं करा सकते इसलिये श्रीविग्रह अप्राकृत वस्तु नहीं हैं, ऐसी बात नहीं—‘याहारे देखिले मुखे आढमे कृष्णनाम । तहाँके जानियो तूँम वैष्णवप्रधान ।’ इस उक्तिके अनुसार यदि कोई वैष्णव-विद्वेषी पाण्डेईसे प्रकृत महाभागवत श्रद्धा नहीं करा सकते, तो क्या उस महाभागवतका वैष्णवत्व अस्वीकृत

होगा ? महाप्रभुओं समुद्रमें से उठानेके कारण मन्दर्गके देहमें भी सान्त्विकविकार प्रकाशित होकर उनके मयमें हरिनाम उच्चारित हुआ था, यद्यपि कि विधर्मी यवनके मुगमें भी महाप्रभुके दशनाभावसे ही कृपापानाम उच्चारित हुआ था किन्तु रामचन्द्रपुरी या पाण्डुरङ्गी पाठकोंको वैसा नहीं हुआ इसलिए क्या केवल इसी नृनियादपर महाप्रभुका महाप्रभुत्व अस्वीकृत किया जा सकता है ?

अप्राकृत वस्तुके प्रति अद्वैत अभावके कारण

वस्तुदर्शन ही नहीं होता। श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुसङ्ग नहीं होता; श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुका परममङ्गलकर उपदेशासूत भी विष मालूम पड़ता है, उनकी वाणीको नानाप्रकारकी समालोचनाके शृङ्खलमें आवद्ध करनेकी चेष्टा होनी है। जिसके प्रति हमलोगोंकी श्रद्धा नहीं रहती, वह यदि संसारके परममङ्गल का कार्य भी करे तो वह कार्य हमें बड़ा अहितकर मालूम पड़ता है।

क्रमशः ।

## विविध-संवाद

### पटना

भागवत सम्पादक पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी, भक्तिशाम्बी, ब्राह्मण दिल्ली, एताहावाद, लखनऊ प्रभृति स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार करने हुए पटना पहुँचे। यहाँ पर उन्होंने सठवासी तथा श्रद्धावान् भक्तोंके निकट निरन्तर हरिकीर्तन करके प्रत्येक व्यक्तिको दृढयत्न-वचन द्वारा हरिभजन करनेके लिये उत्साहित किया। उन्होंने यह भी बतलाया कि अगतसंगसे रहकर हरिभजन नहीं होता। सद्गुरुके आनुगम्यसे रहकर ही हरिभजन करना चाहिये।

यहाँ पर पहला जुलाई शनिवारमें श्रीमठके सेवक लोगोंने चातुर्मास्य-व्रत आरम्भ किया है।

### दिल्ली

परमाविश्ववैष्णवराजभाके श्रेष्ठ प्रचारक पण्डित श्रीपाद अप्रमेय दामाधिकारी भक्तिशाम्बी महोदयजीने श्रीगौड़ीयमठ न्यू दिल्लीमें अवस्थान करके शहरमें विभिन्न स्थानोंमें श्रद्धालु सज्जनोंके

समीप श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीगौड़ीयमठके प्रचार्य विषयको कीर्तन किया। उनकी हरिकथामें आकृष्ट होकर दिल्लीके विख्यात धनी तथा बैंकर लाला श्रीयुत मङ्गतराण महोदय प्रतिदिन दो घन्टेतक अत्यन्त आग्रहकेसाथ शुद्धभक्तिकी कथा श्रवण करते थे।

### मीतापुर

श्रीगौड़ीय मिशनके प्रचारक पण्डित श्रीपाद सुदर्शन ब्रह्मचारी, भक्तिशाम्बीजीने कई ब्रह्मचारियोंके साथ यहाँपर पधारकर शुद्धभक्तिकी कथा श्रद्धान्वित-लोगोंके समीप घरघर घूमकर कीर्तन की। शहरके स्वनामधन्य दानवीर सेठ जयनारायणजीने प्रचार मंडलीको समीप प्रकारसे महायत्ना करके अत्यन्त मुकुरित अर्जन की।

### काशी

श्रीयुत श्रीनिवास राण, एम-ए, डी-लिट् महाशयने काशी श्रीसनातन गौड़ीयमठमें आकर हरिकथा श्रवण की।

## SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

### SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs. 2-8-0.

### RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

### THE BHAGBAT

Its Philosophy, its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick, paper bound—Twelve Ans.

( बंगलामें )

### श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णार्जुनायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन् महाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सागरार्थदर्शिनी टीका, बंगालुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त । प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथामार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत हैं । श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित । प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है । भिन्ना प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र ।

### श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत । श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिमिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं । श्लोककी सान्ध्य व्याख्या, बंगालुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संचित अभिधेय संयोजित हैं । प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें ठमी अध्यायका कथामार लिखा हुआ है । श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृहत् सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी-समन्वित हूय तरहका अभूतपूर्व भंस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है । उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १२०० पृष्ठमें सम्पन्न है । भिन्ना बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र ।

### श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिमिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन—काउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १२४० पृष्ठ भिन्ना—६) मात्र ( बिना बंधा हुआ ) ।

## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—( तृतीय खण्ड )

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व मार्गदर्शक उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामा व सत्यका अनुपन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आधिपत्यके पहले के बाद भाग १, बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व सामाजिक अन्तर्गत भाग्यजन्यता अवस्था, साम्प्रदायिक एवं धार्मिक अवस्था, नवहोषका परिचय व अन्य गौरवपूर्ण विषयों पर विचार करनेवाले के लिये अत्यन्त उपयोगी साहित्य के रूप में प्रकाशित किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व सार्वजनिक चित्रों के साथ-साथ अनेक साहित्यिक व विज्ञानिक चित्रों के द्वारा समझने योग्य यह ग्रन्थ उपयोगी । प्राप्ति देनेवाला हागा । भिन्ना ३ । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, ढाका ।

### सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मलसर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपूर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एंग्रेजक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिन्ना ४ )

### ‘सामयिक-संग्रह’—गौड़ीय

सामयिक-संग्रह गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-छोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकग्रन्थोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें सर्वसाधारणोंके लिये भिन्ना ॥) आना ।

### ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिन्ना ॥) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता ( बागबाजार ) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

### अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिन्ना २) मात्र ।

# भागवत

एकमास  
पाठमार्थिक  
मासिक पत्र

५ श्रीधर  
मोहर  
४५३



श्रावण कृष्ण ५  
संवत्  
१८८६ वि०

प्रातः संख्या १॥ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।  
अहेतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

त्रिमये इन्द्रिय जानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिमन्धान-रहिता ऐकान्तिकी  
स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है--  
उसा भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आपना प्रयत्नता लाभ करता है ।

मम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।

Editor:—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari,  
Bhaktishastri B A.

## विषय सूची

| विषय                   | पृष्ठांक | विषय                       | पृष्ठांक |
|------------------------|----------|----------------------------|----------|
| प्रवृत्ति तथा निवृत्ति | ८१       | साधु अनुसन्धान             | ६०       |
| प्रभक्तिसिद्धान्तवाणी  | ८६       | श्रीधामनाथार्यकी उपदेशावली | ६५       |
| श्राद्धोपदेश           | ८८       | भजन                        | ६४       |
|                        |          | पचार-प्रसङ्ग               | ६६       |

## भक्तिके अन्यान्य पत्र

१ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अन्तर्धामनाथपरिवाराभरण गोस्वामी महापूज सम्पादित श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होता है। वार्षिक अग्रेजी पत्रिका। प्रति पचादशीको कलकत्ता भागवाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होती है। भिन्ना श्री डाक महसूल समेत।

२ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद मुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला साप्ताहिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिन्ना २) डाकगर्भ समेत।

३ दैनिक नदीया-प्रकाश (बंगभाषामें प्रकाशित)—भारतमें सर्वत्र प्रचारित—नदीया जिलेकी एकमात्र दैनिक भिन्ना ११०) मात्र डाक व्ययके साथ।

### SREE CHAITANYA MAHAPRABHU

The teachings and characteristics of Sree Mahamahaprabhu have been clearly published in this book. It has been written by Tridandi Swami Sreemad Janki Pradip (Tirtha Maharaj). Price Rs. 4/-

To be had:- Nand K. Shore Bhaktinastri,  
Sree Jagadipati, Sree Mandir,  
P. O. Sree Mayapur (Nadia)

### वैष्णवाचार्य श्रीमद्व

गौड़ीय संपादक सम्पादित, इस ग्रन्थमें श्रीमध्वाचार्यका जीवन चरित, सिद्धान्त और शिक्षा भली भाँतिसे आलोचित हुआ है। यह एक अपूर्व मौलिक विराट् ग्रन्थ है। भिन्ना २) मात्र।

### श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद रचित पद्यावली श्रील आचार्यदेव विरचित "सौरभ" नामक भाष्यके सहित प्रकाशित हुआ है। श्रील प्रभुपादके बहुतसे अप्रकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं। भिन्ना ॥०॥ आठ आना मात्र।

### श्रीश्रीभक्तिविनोदवाणीविभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंमें मुख्यतः, अभिषेय और प्रयोजनाकारमें प्रश्नोत्तररूपमें उनका वाणी-सङ्कलन। भिन्ना ३) मात्र।

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गो जयतः



वर्ष ५

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

श्रावण कृष्ण ५, ४४३ स० १९६६ वि०, ६ जुलाई सन १९३६ ई०

} संख्या ६

## प्रवृत्ति तथा निवृत्ति

(ऊँ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनाद ठाकुर)

जिस समयसे मनुष्य जातिकी सृष्टि हुई है, उसी समयसे प्रवृत्ति तथा निवृत्ति सम्बन्धी विचार उपस्थित हुए हैं। सभी समय तथा सभी देशोंमें इन दोनों विषयोंकी आलोचना होती रहनी है। जितने प्रकारके लिखे शास्त्र इस देश तथा विदेशमें देखनेमें आते हैं, वे सभी प्रवृत्ति तथा निवृत्तिकी समालोचनासे परिपूर्ण हैं। आर्य जातिके वैदिक शास्त्र, मुसलमानोंके कुरान, गृष्टोंके बाइबिल तथा बौद्ध समाजके वेद-विरुद्ध व्याख्यान इसके प्रमाण हैं। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति विषय मानव-जातिका एक प्रधान तत्व है, यह पहले कही गई विशाल आलोचनाके दृष्टान्तसे साबित होता है। जब सभी समय तथा सभी देशोंमें किसी एक विषयकी

आलोचना और पूर्ण विचार किया जाता है, तब वह विषय सत्य सम्बन्धी है, इसमें क्या सन्देह हो सकता है? मृत्यु होनेपर फिर कोई व्यक्ति लौटकर नहीं आता, अतएव जीवके शरीर वियोगके द्वारा अस्तित्वका अभाव नहीं होता ऐसे विश्वासका आधार क्या है? जनसाधारणमें इस विश्वासकी व्याप्ति ही इसका प्रमाण है। उत्तरी ध्रुवका रहने-वाला कोई व्यक्ति इस विषयमें दक्षिणी ध्रुवके रहने-वाले किसी व्यक्तिसे मतभेद नहीं प्रकाश करता। बल्कि आत्माका अमरत्व सभी देशोंमें तथा सभी कालोंमें स्वीकार किया गया है। यद्यपि बहुतसे अभागे कुतर्क करके असन् आलोचनाके कारण स्वतःसिद्ध आत्माकी अमरताके विश्वासको छोड़कर



स्वेच्छाचारी हो जाते हैं, नौमी इनलोगोंकी संख्या इतनी कम है कि उनके द्वारा संसारके साधारण विश्वासमें कुछ व्यवधान नहीं हो सकता। आर्यदेशमें वार्त्तिक प्रभृति एवं दूसरे-दूसरे देशोंमें सारङ्गने-पारमार्थिक यन्त्रोंसे प्रतियवादी पाखण्डी उत्पन्न हुए हैं, नौमी आत्माकी प्रसरताके प्रति जो स्वाभाविक विश्वास होता है उसका नश नहीं हुआ।

परमेश्वरके अस्तित्वमें बड़ा विश्वास एवं जीवके अन्तर्भव होनेसे सिद्धयता प्रभृति जो भव साधारणतः स्वतःसिद्ध विषय हैं, उनमें प्रवृत्ति-निवृत्ति विषयक तत्वभी प्रधान विषय है। बहुत दिनोंसे इस विषयके विचार लिपिवद्ध होकर परम्परासे हम-लोगोंको प्राप्त हुए हैं। सारा वेदभी कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड इन दो भागोंमें विभक्त हो गया है। इन विषयोंकी आलोचना नीचेकी जायगी। इस समय विचारणीय विषयकी आलोचना, जो विशेष-रूपसे यहां आवश्यक है, की जायगी।

हजार वर्षभी नहीं बीते कि आर्यविरोधी लोगोंने हमलोगोंकी अर्थभूमिको हस्तगत किया था। उनलोगोंकी भाषा, स्वभाव, चरित्र तथा धर्म इस देशके लिये अत्यन्त विरुद्ध होनेके कारण हम-लोगोंके पूर्व-पुरुष अत्यन्त क्लेशमें पड़ गये थे। उनलोगोंके स्वभावतः तथा धर्मतः निष्ठुर होनेके कारण इस देशकी सभी संस्कृतियोंका ह्रास होने लगा। जिस देशमें आदि काव वाल्मीकि तथा ज्ञानी श्रेष्ठ वेदव्यासने सरल संस्कृतके भिन्न २ सुन्दर छन्दोंमें अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थोंकी रचनाकर मनुष्योंका सांसारिक तथा पारमार्थिक मगल किया था, जिस देशमें हविश्चन्द्र, युधिष्ठिर इत्यादि धार्मिक राजा प्रजाके हितके लिये अपना अपना शरीर तथा इन्द्रियबल लगा कर वृद्ध हुए, जिस देशमें सावित्री,

अरुन्धती, वृन्दा प्रभृति महिलाएँ सत्तिवालङ्कारसे विभूषित होकर ऐतिहासिक यशाकाशमें नक्षत्ररूपसे शोभित हुई थीं, वही भुवन्विजयिनी भारतभूमि.... स्वदुर्गधारी व्यक्तियोंके हाथसे कितनी दुर्दशाको प्राप्त हुई यह वर्णन करने योग्य नहीं है। वेदशास्त्र लुप्त हो गये, ज्ञान गुप्त हो गया, और आर्य-चेतनता शीतकालके सर्पके मद्दश निद्रितम्बी हो गयी। ब्राह्मणोंका तर्क मुद्दीय पुष्पकोंके भीतर स्थान बनाकर तटस्थरूपसे रहा। क्षत्रियोंके शौर्य (बल) तथा वीर्य केवल शयनागारमें ही कुछ कुछ प्रकाशित होने लगे। दूसरी दूसरी जातिके लोग अपने धर्मोंके आचरण द्वारा जरण-पोषण करनेमें असमर्थ होकर वेदविधिको छोड़ने लगे। यद्यपि ऐसे आपत्ति-कालमें भी बहुतोंके लिये निवृत्ति-धर्म ही अवलम्बनीय रहा, तथापि कर्म-फलानुसार बहुतसे आर्य-वशके लोग वेद-धर्मको छोड़कर कितने प्रकारके स्वकपोलकल्पित उपधर्म सृष्टिकर उसीके अनुसार समय बिताने लगे।

विलायतवासी लोगोंके इस देशमें आनेसे हम कुछ बातोंमें सुखी जान पड़ते हैं। परन्तु कोई भी घटना अमिश्र सुख नहीं दे सकती। अंग्रजोंका भारतवर्षमें अधिकार होनेसे जहां हमें कुछ सुख प्राप्त हुआ वहां किसी किसी विषयमें हमारा अमङ्गल भी हुआ। अंग्रेजलोगोंने इस देशमें अपनी भाषा द्वारा कई तरहसे वैज्ञानिक उपदेश देकर प्रतिष्ठा प्राप्त की है। यहांके नवीन-सम्प्रदाय वालोंने उनलोगोंकी भाषा सीखकर तथा उनकी चलाई रेलगाड़ी, रेडियो प्रभृति यन्त्रों से प्रभावित होकर उन्हें अपना गुरु समझ लिया है। इससे अनेक भयङ्कर दोष उत्पन्न हो रहे हैं। आर्यभाषा एवं उसमें लिपिवद्ध विशाल तथा निर्मल ज्ञानविज्ञान

प्रायः लुप्त हो रहा है। इसका प्रमाण सहज है। किसी शिक्षित अंगरेजी विद्याके अध्यापकसे परम-पूजनीय सभी वेदोंके सार साक्षान् सामवेदरूपी श्रीमद्भागवतकी बात पृष्ठनेपर वह हँसकर उसे पुरानी पुस्तक कहकर तान्येपर म्बवेदनेको कहेगा। श्री श्रीमद्भागवतके आध्यात्मिक परमरमणीय अप्राकृत वृत्तान्तोंके मूलतत्त्वको न समझकर उसको लम्पटता बढ़ानेवाली तुच्छ पुस्तकोंमें उसे गिनेगा। अहा! कैसा मूर्खता है। इन सब बालकोंने अब अपनी संख्या बढ़ाकर दलबलके साथ कई उपधर्म स्थापन किए हैं। जो हो इंगलैण्डका प्राकृत विज्ञान ही मनुष्य जातिके प्रकृत उद्देश्य है, ऐसी शिक्षा पाकर वे अपक व्यक्ति अप्राकृत तत्त्वको स्वप्नवत् समझने लगे हैं। इसमें अंग्रेजोंका क्या दोष है।

इन सब ऐतिहासिक बातोंको कहनेका तात्पर्य यही है कि हमारे पाठक इस बातको जानें कि अंगरेजोंके संसर्गसे आर्यवासी निवृत्ति-तत्त्वको अप्राप्त्य समझने लगे हैं। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति इन दोनोंके बीच श्रेष्ठ मार्ग प्रवृत्ति है, ऐसा ही उन-लोगोंने स्थिर किया है; और निवृत्ति मार्गको पूर्वकालका भ्रम समझकर परित्याग किया है। जैसा सङ्ग होता है वैसे ही जीवके विचार, सिद्धान्त तथा स्वभाव हो जाते हैं। यह बहुतसे शास्त्रोंमें कहा गया है। इस समय अंगरेजोंने इन्द्रिय तथा मनोबलकी प्रचुरता द्वारा प्रवृत्ति-मार्गको भगवद्धामका एकमात्र पथ स्वीकार किया है। “इस समय” शब्दोंके व्यवहार करनेका तात्पर्य यह है कि, उनलोगोंके अवतार पुरुष वा धर्मगुरु ख्रीष्टने अपने प्रकाशित धर्ममें दोनों-अर्थात् प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-मार्गको स्वीकार करते हुए निवृत्तिकी उत्कृष्टताका स्थापन किया है।

किसी व्यक्तिने इसासे पूछा कि हे गुरु! बहुत दिनोंकी आयु पानेके लिये मुझे क्या करना चाहिये? इसासे कहा, “यदि सांसारिक धर्मोंका प्रतिपालन करके भी ऐसा पक्ष करते हो, तो सुनो, तुम्हारे पास जो धन है उसे बेचकर दरिद्रोंको दान कर दो एवं मेरा अनुगामी हो जाओ।” उस व्यक्तिने इस परामर्शके अनुसार नहीं चल सकनेपर उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा, देनो विद्यार्थियोंके लिये वैकुण्ठ प्राप्त अत्यन्त कठिन है। उन्होंने फिर कहा कि जिन मनुष्योंमें मेरा पथानुगामी होनेके लिये बर, भार्द, भगिनी, पिता, माता, स्त्री तथा पुत्रादिका परित्याग किया है उसीको अधिक लाभ होगा और वही अनन्त आयुका अधिकारी होगा।

इसमें कैसे बहुत उपदेश हैं। वे एक वैरागी पुरुष थे इसमें कुछभी सन्देहकी बात नहीं है। इस समय जो ख्रीष्टधर्मकी शिक्षा मिलती है, वह सधर्ममें ख्रीष्टका उपदेश नहीं है। यदि ऐसा न होता तो ख्रीष्टीयलोग राज्य प्राप्तिके लिये प्राणवध करना स्वीकार नहीं करते। युद्ध करना एक प्रकारकी प्रवृत्ति है, अतएव वैराग्यधर्म-विरोधी है, इसमें कुछ सन्देहकी बात नहीं।

हे महापुरुषों! क्या ख्रीष्टके इस उपदेशमें निवृत्तिमार्ग अनकृष्ट स्वीकृत नहीं हुआ? अंगरेजलोग क्या ख्रीष्ट धर्ममें च्युत नहीं हुए? केवल प्रवृत्ति मार्ग ही श्रेष्ठ है, ऐसा सब अंगरेज नहीं कहते यह बात ठीक है, किन्तु जो निवृत्तिके विरोधी हैं, वे लूथर नामक किसी धर्म-संस्कर्ताके शिष्य हैं। लूथरके समयमें उनने प्रवृत्ति-मार्गको ही उपामनाका एकमात्र उपाय स्वीकार किया है। वर्तमान समयके प्रोटेस्टेन्ट अर्थात् लूथरके शिष्यलोग मन्यासावलम्बी पुरुषोंको भ्रान्त कहते हैं। किन्तु

रूम, फ्रान्स इत्यादि देशोंमें लूथरका मन विशेषरूपसे स्वीकृत नहीं हुआ और इस कारण वहाँके पादरीलोग हमलोगोंके घेरागी तथा सहन्त्रोंके सहश स्त्रोमम्भाग छोड़कर निःसङ्ग भावसे उपासना करने पाये जाते हैं। इस मतको कैथलिक अर्थात् ख्रीष्टका यथार्थ मत कहते हैं।

लूथरने ख्रीष्टके उपदेशोंका लक्षण द्वारा मूलवर्थ करके तथा मत चलाया। हमलोगोंके देशमें जिस प्रकार श्रीशङ्कराचार्यने वेदान्तका तथा उपनिषद्के गौणार्थ द्वारा मायावादका अमन्त्रास्त्र प्रकाश किया है, इंग्लैन्डमें लूथरने भी उसी प्रकारसे वाङ्मय शास्त्रका गौणार्थ करके निवृत्तिमार्गको भ्रममार्ग कहकर प्रवृत्तिमार्गको श्रेष्ठ बतलाया है। हमारे नये अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियोंने ऊपर कहे हुए अंग्रेजोंके प्रति अद्वान्वित होकर इस प्रवृत्तिमार्गकोही श्रेष्ठ समझ लिया है। सन्न्यासी तथा वैरागियोंको देखतेही उन्हें दुःख होता है और वे कहते हैं कि अहा! ऐसे क्षमताशील व्यक्ति संसारकी उन्नतिके प्रति अकर्मण्य हो गये हैं। यह यदि विवाहादि करके जमीन जोतते तो उससे पृथ्वीदेवीका बहुत दुःख कम हो जाता।

जो इस प्रकारके विचार रखते हैं, वे मूर्ख हैं, ऐसा हमलोग नहीं कहते, बल्कि उनलोगोंमें बहुतसे अत्यन्त पाण्डित तथा विज्ञानविन् महापुरुष हैं। किन्तु रक्तमांससे बना हुआ मनुष्य भ्रमरहित नहीं हो सकता, अतएव उनको भ्रम रहेगा, इसमें सन्देह क्या है? प्रवृत्तिमार्गके पक्षपाती वस्तुतः बहुतसे पाण्डित देखनेमें आते हैं, अतएव इस विषयके विचार करनेके लिये श्री श्रीमद्भागवतमें कहे गये चार प्रमाणोंका अवलम्बन करना उचित है।

“श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्।”

अखिल शास्त्र, प्रत्यक्ष, इतिहास तथा युक्ति इन चार प्रमाणोंका अवलम्बन करनेसे विवेचना निर्मित होगी। किसी बातके निर्णय करनेके समय किसी एक मनुष्यके पाण्डित्यमें भ्रान्त वा भ्रान्त नहीं होना चाहिये। अतः हम स्वाधीनताके साथ विचार करें। परमसाध्य श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने हमलोगोंको ऐसा कहा है।

स्वाधीनता गत हय ईश्वरेण दत्त।

नाहारे त्वाजो कम् नारे नुत्तमान ॥

निर्मल युक्ति, शास्त्र, ऐतिह्य तथा प्रत्यक्ष प्रमाणोंके द्वारा जो स्थिर होगा वह हमलोगोंका निश्चय पड़्य होगा। शङ्कराचार्यके समान पाण्डित यद्यपि इस मिद्धान्तके विरुद्ध विश्वास करेंगे, तौभी उससे हम विचलित नहीं होंगे। अंगरेज पाण्डित ऐसा विश्वास करते हैं इसलिए प्रवृत्तिमार्ग सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अंगरेज भी तो मनुष्य ही हैं। हमारे नवयुवक जो परमसाध्य वस्तुकी प्राप्तिके मार्गमें प्राप्त हुए भ्रमके वशीभूत होकर आर्य-प्रकाशित निवृत्तिपथमें घृणा करते हैं, यह भी उनलोगोंके बहुतसे भ्रमोंमेंसे एक प्रधान भ्रम है। अब मुख्य विषयका विचार किया जाय।

दूसरोंके भ्रमको छोड़कर उनके साधुवाक्यको ग्रहण करना हमलोगोंके लिये वाङ्मनीय तथा आचरणीय है। इसके उदाहरणमें श्रीशङ्कराचार्यका मायावाद अनादरणीय होनेपर भी उनका लिखा निम्न-प्रकाशित युक्तवाक्य ग्रहण किया गया है। उन्होंने श्रीगीता भाष्यके प्रारम्भमें लिखा है:—

“द्विविधो हि वेदोक्तो धर्मः प्रवृत्ति-लक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च।”

धर्म वास्तवमें दो प्रकारका है—प्रवृत्तिमूलक तथा निवृत्तिमूलक सम्पूर्ण शास्त्रोंकी आलोचना

करके देखनेसे यही स्पष्टरूपसे देखनेमें आता है कि प्रवृत्ति-धर्मका फल भोग एवं निवृत्ति-धर्मका फल मुक्ति है। प्रवृत्ति-धर्मविलम्बन करनेसे संसारमें अधिकतर उन्नति होती है, जैसे दुर्गोन्मेष, अश्वमेध, अग्निहोत्रादि क्रियाके द्वारा प्रतिष्ठा तथा बहुतसे लोगोंके अनुग्रहका पाव हो सकता है। प्रवृत्ति-मार्गसे संसारकी बहुत उन्नति होती है।

पण्डितलोग प्रवृत्ति-मार्ग अवलम्बन करके अनेक द्रव्योंकी रचना करते, वैज्ञानिक तत्त्वका आविष्कार करते तथा भूगोलके अनेक भागों का वर्णन करते हैं। तरल पदार्थोंके गुणोंका अन्वेषण करके उमके द्वारा मनुष्योंको जो कुछ फल प्राप्त हो सके, उसे स्थिर करते हैं। विद्युत्तत्त्वका (electricity) आविष्कार करके वातावरण (telegraphy) शिल्पकी नींव देते हैं। वाष्पतन्त्र (steam) द्वारा जहाज, हवाईजहाज तथा मोटरगाड़ी इत्यादिका चलाते हैं। वृक्ष लतादिका गुण अनुसन्धान करके अपूर्व औषध-विषयका प्रचार करते हैं। संसारप-योगी अन्य विषयोंके सम्बन्धमें भी वे बहुतसा काम करते हैं। संसार-सम्बन्धी नानाप्रकारकी सम्भूतिका नियम स्थापन करते हैं। राजा प्रजाका सम्बन्ध, अर्थके द्वारा जीवन-यापन करनेका उपाय तथा अन्यान्य प्रकारके लाभको स्थिर करना, ऋण-ग्रहण तथा दानविचारके द्वारा अभावको पूर्ण करना, गृह, ग्राम, नगर तथा दूकान स्थापन द्वारा व्यावहारिक अभावका दूर करना इत्यादि विषय निश्चित हुए हैं। विवाहादि संस्कारोंके द्वारा प्रजा वृद्धि एवं न्यायपूर्वक स्त्रीसम्भोग द्वारा देह तथा बलकी रक्षा करते हैं। शिल्पकारलोग प्रवृत्तिके आधीन होकर कितने कितने अलङ्कार, वस्त्र, कप्ट-सन, दीपादि, अपर द्रव्याधार एवं-खाट, गृह, पलङ्ग

प्रभृति बनाकर प्रवृत्तिशाली लोगोंके सुखको बढ़ाते हैं। इन सब द्रव्योंके प्रति तथा विशेषतः गृह-परिवार-दि एवं यशके प्रति प्रवृत्त पुरुषोंको इतना प्रेम-उपजता है कि वे अन्यान्य आक्रमणकारी पुरुषोंके साथ युद्ध द्वारा रक्त-पादादि करते रहते हैं। यह सब न्यायानुगत प्रवृत्तियां हैं, किन्तु इन सबोंके अतिरिक्त अन्याय प्रवृत्तियां भी बहुतसी हैं। इन्द्रियोंके वश प्रवृत्त पुरुष स्त्रियोंमें अन्यायपूर्ण आसक्ति तथा पान-भोजनादिये गाढ़-प्रेम इत्यादि क्रियाओंके द्वारा जीवन-यापन करते हैं। प्रवृत्त पुरुष केवल इस संसारमें आवद्ध रहते हैं, ऐसा बात नहीं है, वे इन्द्रपुरी प्रभृति नानाप्रकारसे परलौकिक संसारके सुखही आशाकर उन सुखोंके हेतुवाले-देवताओंकी उपासना करते हैं। अश्व-मेधादि यज्ञ करके वे इन्द्रपुरीकी अप्सराओंके सहित इन्द्रिय चरितार्थ करके सुखी होनेका इच्छा करते हैं। वास्तवमें प्रवृत्तिशील लोगोंकी आशाका अन्त नहीं है। पृथ्वी पर राज्य, स्वर्ग पर राज्य, ब्रह्मपद, शिवत्व प्रभृति बहुतसे पदोंकी वाञ्छा करते हैं। इन सब विषयोंके बहुतसे उद्दहरण शास्त्रोंमें तथा इस संसारमें पाये जाते हैं किन्तु हम लोगोंने उन सबोंका यहांपर कुछ भी संग्रह नहीं किया, कारण पाठकगण उन सब बातोंको जानते हैं, यही हमारा विश्वास है।

प्रवृत्ति-पथ इन्द्रिय गोचर है, एवं उम पथके अवलम्बन करनेवालोंको प्रत्यक्ष फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं। मनुष्यजातिकी विचार शक्ति रहती है, अतएव उन लोगोंके सम्मुख प्रवृत्ति-मार्गका फल प्रकाशित होगा, इसमें कहनेकी कोई बात नहीं है। पशुओंकी वृद्धि आवद्ध रहनेपर भी वे भी प्रवृत्तिके फलको जानते हैं। 'विभर' नामक पशुका

गृह-निर्माण एवं वायुइके गोमलेका निर्माण केवल प्रवृत्तिका फल है।

प्रवृत्ति पथमें मनुष्यको बहुत सुख मिलता है, इसमें नन्देदकी कोई बात नहीं है। तेनली-बेली बोलनेसे ले वालक-बालिकाओंको गल्लमें लेना, घृत अन्नद्वारा स्नानाभ्यासन, स्त्रियोंके साथ नचनना एवं दृष्टिके फलके समान शय्यापर शयन करना, रेवनाइ सेठर उद्यानपर चढ़कर दूर देशमें भ्रमण करना अतिशय आनन्दकर है, इसमें क्या संदेह है। जायोंमें क्या करके परमेश्वरने समाररूपी धर्म-शालाको सुसज्जित किया है, अवश्य यही विश्वास होता है, करना जितके गलनके साथ उद्भूत पदार्थका जो कोशल सम्बन्ध, कर्णछिद्रके साथ गीतगाथादिका जो पितृ अन्वय, चक्षुके साथ दृश्य

पदार्थ प्रकाशादिका जो सौहार्द्र है, वह परमेश्वरकी आचिन्त्यशक्तिकी क्रियाशक्तिका फल है, यह कौन स्वीकार नहीं करेगा।

संसारमें जितने प्रकारके सुख हैं वे सभी 'प्रवृत्ति-सुख' हैं। प्रवृत्ति-सुखके वर्शभूत पुरुष दैहिक, मानसिक तथा सामाजिक उन्नतिके लिये सर्वदा व्यस्त रहते हैं। यह प्रवृत्ति-सुख यदि नहीं रहता, तो सामाजिक अवस्थामें मनुष्यकी बहुत दुर्दशा होती। कहाँसे नगर, कहाँसे रेलकी सड़क, कहाँसे नौका, कहाँसे दूकान, कहाँसे मन्दिरादि देखनेमें आते। मानवजाति पशुमदरा वन-वनमें भ्रमण करते करते नष्ट हो जाती। पृथ्वीका सौन्दर्य पृथ्वीमें ही अदृष्ट भावसे दिग्गम रहता।

कमल।

## श्रीभक्तिसिद्धान्तवाणी

जिनलोगोंकी सेवा करनेके लिये स्वयं-भगवान् भी व्यस्त रहते हैं, उन्हीं वेष्णव लोंगोंकी सेवा करना अत्र आहूत लोग नहीं चाहते। हमलोगोंका प्रधान कर्त्तव्य है—वैष्णवोंकी सेवा करना। बहुतसे प्रचारक भगवान्की ही सेवा करनेको कहते हैं, किन्तु श्रीगौर-मुन्दरने भक्त-सेवा को सर्वोत्तम बतलाया है। जो सजीव भगवद्विग्रह हैं—जिनसे भगवद्विग्रहकी जीती जागती कथा प्रकाशित होती है, जिनसे प्रभों के उत्तर मिलते हैं, और सेवा किसको कहते हैं जिनसे यह जाना जाता है, उन्हीं भगवद्वक्तों की सेवा भगवान्की अर्चामूर्तिकी सेवासे भी श्रेष्ठ है। अर्चामूर्तिकी सेवा भी भगवद्वक्तोंकी वाणीश्रवण किये बिना पूर्णरूपसे नहीं हो सकती। भगवद्वक्तों की पूजासे ही भगवान्की पूजाकी पूर्णता साधित होती है।

काँई काँई कहते हैं कि चुपचाप रहना ही अच्छा है; चुपचाप नहीं रहनेसे परचर्चा हो जायगी। किन्तु परोपकार करनेकी वृत्तिकी अपेक्षा प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी प्रवृत्ति ही जिनलोगोंकी प्रबल है, वे ही असत्यके प्रतिवादको 'परचर्चा' कहा करते हैं। जगत्का उपकार यदि काँई न करे, तो भगवान् क्यों उसका उपकार करेंगे? हमलोगोंका एकमात्र कर्त्तव्य है दुःसङ्ग परित्याग करना; दुःसङ्ग परित्यागका नाम ही तीर्थव्राम है। सत्यकी जहां प्रतिष्ठा है वहीं तीर्थ है और वह सर्वत्र ही सम्भव है। भजनमय गृह भी तीर्थ हो सकता है; किन्तु जहां कपटता है और कपटताकी आड़में जहां अमङ्गल वस्तुके ग्रहण करनेकी चेष्टा है, वह तीर्थ नहीं। 'यदि कोई यह कहे कि कलिकाल ही क्यों न हो पर हमारे ठीक रहनेसे ही सब ठीक हो जायगा तो इसका

स्तर यह है कि जिन इन्द्रियोंका हमलोगोंने आश्रय लिया है, वेही चक्षु, कर्ण, नाक, जिह्वा, त्वक् प्रभृति इन्द्रियाँ हमलोगोंके प्रति परम शत्रुता और विश्वासघात कर रही हैं। निसपर भक्तिमार्ग नाना-प्रकारके मनोधर्ममय मतवादरूप कण्टकोंसे आक्षीर्ण है। अतः मनुष्य इन्द्रियोंके सहारे असल मार्ग अवलम्बन करनेमें असमर्थ है। इसलिये श्रीचैतन्यचन्द्रके निज जनोंही शरणमें जानेके निश्चय और कोई उपाय नहीं।

यथार्थमें भोगी एकमात्र भगवान् हैं—वेही भोगपुरन्दर हैं। जीवके स्वरूपधर्ममें भोगवृत्ति नहीं है। जीव भोगपुरन्दरके भोगका उपकरणमात्र है। निष्कपट होकर हरिसेवा करनेके समय यदि कोई भक्तसेवकों भोगी वा त्यागी देखे तो देखे; हरिसेवक त्यागी भी नहीं हैं और भोगी भी नहीं हैं; किन्तु निष्कपट सेवक हैं।

महाभागवत निष्कञ्चन साधुका भी अभाव है और हमलोगोंकी हरिकथा सुननेकी प्रवृत्तिकाभी अभाव है। हमलोग अन्य विषयोंके सुननेके लिये खूब उपाय करते हैं। जहाँ शुश्रूषु और महत्का सम्मेलन है, वहाँ हरिकीर्तन होता है। वर्तमान समयमें निष्कपट होकर दूसरेकी भलाई करनेवाले बहुत ही कम हैं। भगवान्की कथाकी आलोचना करनेका अभिनय कर भी अनेकवार अवास्तव उद्देश्यसिद्धिकी यथेष्ट चेष्टा की जाती है किन्तु इसके भीतर दूसरा मतलब रहता है। जिनलोगोंमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अथवा अधर्म, अनर्थ, कामकी अतृप्ति एवं संसारप्रवृत्ति वर्तमान है, जगतमें उनलोगोंकी ही संख्या अधिक है। वे जो हरिकथा सुनानेका अभिनय करते हैं, वह भी अन्यान्य अवास्तव उद्देश्यसिद्धिके लिये ही। इसलिये

कपटी लोगोंके मुखसे कीर्तन सुननेसे कोई सुविधा नहीं होगी। हमलोग यदि सचमुचही अपना मङ्गल करना चाहते हों, और सचमुच दूसरोंके मङ्गल करनेकी इच्छा रखतेहों तो भगवान् निश्चय ही हमपर दया करेंगे। दूसरेको फाँसी देनेसे स्वयं भी फाँसीमें पड़ना पड़ेगा।

भगवान्के चरणमें शरण घटण किये बिना स्वाधीनता प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं। गुरुकी शरणमें लब्धोन्नत पूर्ण पुरुषके आधीन स्वतन्त्रताका सद्व्यवहार ही पूर्ण स्वाधीनता है। मनोयोग पूर्वक हरिकथा श्रवण करनेके द्वारा ही उत्तम साधुसङ्ग होता है। साधुलोगोंका उत्तम सङ्ग मिलनेसे भगवान्के योग और जगतके दोर्व्ययकी कथा हमलोग समझ सकते हैं। हमलोग तब साधुलोगोंके कथनानुसार सेवा करते करते कृष्णमें-वासें मुहूर्त् विश्वास, आभक्ति और प्रीति प्राप्त कर सकते हैं। कृष्णसेवामें प्रीति ही निश्चित जीवका चरम प्रयोजन है।

कृष्ण भजनीय वस्तु हैं, जीव भजनकारी वस्तु है, दोनोंके बीच वाली क्रिया 'भजन' है। सम्बन्ध जाननेके बाद क्रिया होती है; जैसे घड़ीमें देखकर समय जानतेकेबाद उस समय हमारा क्या कर्तव्य है यह समझमें आता है। तब उस समयका आवश्यक कार्य किया जाता है। ब्रह्म जिज्ञासाके बाद, ब्रह्म निर्मूलित होनेपर—ब्रह्मके साथ अपना सम्बन्ध जान होता है, तब उसके प्रति अपना क्या कर्तव्य है यह जानकर मनुष्य उसका आचरण करता है। जो भ्रान्त विचार वाला है, उसे ही "मैं कर्ताहूँ"—यह अभिमान रहता है; वह विमूढ़ है। तुच्छता रखी भगवद्वास्य ही हमलोगोंका वाञ्छनीय है। तृणसे भी छोटा बनने पर कर्तृत्वाभिमान विलकुल

नहीं रहेगा। कर्म और कुछ नहीं है—केवल दूसरों की चीजों में अपना कर्त्ताभिमान है।

भक्ति एक क्रिया है। निष्कपट हरि-भजन-परायण पुरुष वा भगवद्भक्त प्रसाद सेवा करते हैं—भोग नहीं करने। भक्त दाल भोगी खाता है। भक्त दाल खाना कर्म है। भगवद्भक्त प्रसाद-सम्मान

वाह्य दृष्टिसे कर्मके समान देख पड़ने पर भी उसका देह-प्राण और आत्मा के भगवत्सेवाके लिये समर्पित होनेके कारण 'कर्म' नहीं 'सेवा' है। मनमाना धर्म माननेवाले भजतीय वस्तु और भजनकारीके स्वरूप निर्णयमें असमर्थ होकर भक्ति और कर्मको एक समझते हैं।

## “आदौ श्रद्धा”

(गतांक में आगे)

जब किसीके प्रति हमलोगों की श्रद्धा कम रहती है, तो उस समय यदि वह हमलोगोंके तरफ दृष्टि न करे तो हमें मालूम पड़ता है कि वह निश्चयही अपने किसी स्वार्थ साधनके लिये मेरे प्रति दृष्टि निक्षेप कर रहा है। अप्राप्त गुरुदेव जिस समय अपने शिष्योंको निजसे भक्तोपदेश प्रदान करते हैं, उस समय श्रद्धाहीन आध्यात्मिक उसको दूसरी दृष्टिसे देखता है और नानाप्रकारका समालोचना करता है। जिस समय महाप्रभु नवद्वीपमें श्रवणमन्दिरमें द्वार बन्दकर भक्तोंके साथ कृष्णमूर्त्तिर्जन करने थे, उस समय नवद्वीपके श्रद्धाहीन व्यक्ति कितने प्रकारकी समालोचना किया करते थे। साधु यदि योषित् दर्शन न कर पुरुष वा स्त्री-रूपधारी किसीके निकट हरिकथा कीर्त्तन करते हैं, उस समय श्रद्धाहीन व्यक्ति कितने प्रकारकी कल्पना वा समालोचना करता है। श्रद्धाहीन व्यक्ति साधुकी स्वाध्यायस्तु और गाड़ीके सम्बन्धमें भी कितनी समालोचना करता है। अधिक क्या स्वयं महाप्रभुके सम्बन्धमें भी उसी प्रकार कितनी समालोचनायें हुई हैं! नवद्वीपवामी पाण्डवी, रामचन्द्रपुरी, अमोघ प्रभूति आध्यात्मिकगणने पतितपावनशिरोमणिगणोंके आराध्य श्रीगौरपादपद्ममें भी कितने ही कलङ्कोंका आरोप किया

है और अभी भी कर रहे हैं। महापुरुष क्यों वैयुक्तिक पर्या का हवा भोग करेगे, प्रथमश्रेणीके वाष्पीय गाढ़, वैयुक्तिक गाढ़में चढ़ेंगे? इस प्रकारकी कितनी ही बातें श्रद्धाहीन आध्यात्मिक व्यक्तियोंके मुखमें सर्वदा सुनी जाती हैं। श्रद्धाहीन व्यक्तिगण परदुःखदुःखी साधुओंके भगवद्भक्तिप्रचारको भी उनलोगोंका प्रतिप्रा-कामनाका वाहन समझते हैं। साधुके प्रति श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुके हाथ उठानेपर भी मालूम होगा कि वह दूसरेका धन अपहरण करनेके लिये ऐसा कर रहा है! साधुके नैष्ठिक ब्रह्मचारियों का आचरण करनेपर भी समझमें आयेगा, कि उसने द्विपकर व्यभिचार करनेके लिये ऐसा ब्रह्मवेश ग्रहण किया है। साधुसज्जन्याशयस्निग्ध (एकचित्तवृत्तिर्वाशिष्ट) व्यक्तियोंके साथ एकान्तमें निर्मलमर भागवतधर्मकी कथा कीर्त्तन करनेसे भी मालूम देगा कि साधु विश्वनिन्दा वा नानाप्रकारका पड़यन्त्र कर रहा है। साधुके कनक (अर्थ) के द्वारा साधवकी सेवा करनेसे मालूम होगा, कि वे अपना प्रभुत्वं विस्तार कर रहा है। साधुके किसी कामनीको कृष्णमेवामें नियुक्त करानेसे मालूम पड़ेगा कि, वह योषित्मङ्गल कर रहा है। श्रद्धाकी दृष्टिसे जिनलोगोंको भुवनमङ्गल महापुरुष समझा जाता है, और

जिनलोगोंकी प्रत्येक क्रिया-मुद्रामे मङ्गलमयी उपलब्धि होती है, अश्रद्धाकी दृष्टिसे उनलोगोंको पाखण्डी और उनलोगोंके कार्यको भांडूपना (कपटना) कहा जाता है।

इसीलिये महाजनोंने कहा है,—जो अश्रद्धवान और संशयात्मा है, उनलोगोंको कभी महाप्रसाद, गोविन्द, नामब्रह्म और वैष्णव इन अप्राकृत चार वस्तुओंका दर्शन नहीं होता। वे इन अप्राकृत चार वस्तुओं में भी दोष है, ऐसा हृदयमें विश्वास करते हैं। वे आ प्रतिकृताके द्वारा बाँझत होकर इस प्रकार श्रद्धाहीन और संशययुक्त हो जाते हैं कि साधुके सभी कार्य ही उनलोगोंके निकट सन्देह और समालोचनाकी वस्तु हो जाते हैं। इसप्रकार मूर्खतापूर्ण अनुशीलन करते करते ही ये नरक का और प्रभावित होने रहते हैं। इसीलिये सभी महाजन, गुरु शास्त्र उच्चस्वर्गमें कहते हैं,—“श्रद्धा-युक्त हो”—“अश्रद्धवानकी गति नहीं।” सरलता रहनेमें अन्विष्टविश्वासभी किमी न किमी दिन सत्य पथकी और फिर प्रत्यावर्तनकर (लौट) सकता है, किन्तु कष्ट, श्रद्धाहीन, संशयात्मा कभी भी सत्य-पथ पर नहीं आ सकता है। उसका विनाश अवश्य-स्भावी है यह स्वयं भगवान्की वाणी है। यह वाणी मिथ्या नहीं हो सकती—

“अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति।”

गी: १४।८

इसीलिये ठाकुर भक्तिविनोदने पुनः पुनः कहा है,—

“सकल छाँड़िया भाई, श्रद्धादेवीर गुणगार्ड।”

जिससे लोग “आदौ श्रद्धा”—इस कथाको कभी न भूलें। जब श्रद्धा होगी तब साधुमङ्ग होगा। यदि श्रद्धा ही नहीं हुई तो किस प्रकार साधुमङ्ग

होगा? फिर किस प्रकार भक्ति प्राप्त होगी? अधिक क्या कहा जाय, हमलोगोंका कर्माधिकार ही नहीं जायगा। अश्रद्धालु व्यक्ति अन्यासिलापवीर, कर्मवीर, ज्ञानवीर, योगवीर हो सकते हैं,—सम्पूर्ण जगत्को अपने व्यक्तित्व और प्रतिभाके द्वारा विभोर्गहन और स्तम्भित कर सकते हैं, किन्तु वे कर्माधिकारमें मुक्त नहीं हो सकते। महाजनगण उनको ‘भक्त’ नहीं कहते। आध्यात्मिकके सौ सौ प्रकाश्य समालोचनाओं वा सौ सौ प्रत्यक्ष प्रमाणोंके द्वारा भी महाप्रसादका महापावनत्व, आश्चर्यावतारका करुणामयत्व, श्रीनामब्रह्मका अप्राकृत्य और वैष्णवका पतितपावनत्व विनष्ट नहीं होगा।

श्रद्धाहीन व्यक्ति जगत्के कर्मी, ज्ञानी अन्यासिलापी आध्यात्मिक लोगोंको मिलाकर उनलोगोंका नेतृत्व कर सकेंगे, किन्तु भक्तिदेवीका विन्दुमात्र भी भी कृपा नहीं पा सकेंगे। अतएव—“आदौ श्रद्धा”। गङ्गाजलमें बुदबुद वा फेन-पट्ट देवकर श्रद्धाहीन होनेमें पतितपावनी गङ्गाका दर्शन नहीं होगा। इन्द्रजितकी कृपा प्राप्त नहीं होगी। वैष्णवोंका वपुगा दोषादि दर्शनकर उनके प्रति श्रद्धाहीन होनेमें कभी भी साधुमङ्ग नहीं होगा।

हमलोगोंने जिनलोगोंको नहीं देखा, पर केवल जिनलोगोंका कथामात्र अन्धादिमें पाठ किया है, ऐसे व्यक्तियोंको हमलोगोंने बहुतवार महापुरुष समझ लिया है। हम जि महापुरुषोंको सामने देखते हैं उन्हेंही कुछ आश्चर्योंके पल्लेमें पड़कर आशिकरूपमें महापुरुष समझने लगते हैं पर उनलोगोंके प्रति मुद्द श्रद्धा नहीं हो सकती। श्रद्धाहीन होनेमें कितने प्रकारका पाखण्डता का रक्तबीज है, प्रति मुहूर्तमें हृदयमें जन्म ग्रहणकर प्रत्येक क्षणमें अश्रद्धालुके सद्बृत्तियोंको ध्वंस कर देता है, श्रद्धाकी



कर्म के कारण ही हमलोग गुरुवैष्णव के पल्लादार हो जाते हैं ! हमलोग अपनेको वैष्णवसे भी 'अधिक' समझते हैं । ऐसा मनमें समझते हैं कि हम गुरुवैष्ण-

वकी चालाकी धर सकते हैं, अतएव साधु साधधान ! श्रद्धा गुरुवैष्णव के पाद-पद्ममें यही प्रार्थना है कि हम भ्रष्टादर्शिका कृपामें वञ्चित नहीं हों ।

## साधुका अनुसन्धान

गुरु साधु के भागवतमें 'भ्रष्टाके' सम्बन्धमें आलोचना हुई है । आल रूपशेखरामा प्रसूने प्रेम प्राप्त करनेके लिये जो कर्म निर्णय किया है, उसमें 'भ्रष्टाके' वाद ही 'साधुसङ्ग' का कथा है । गुरुशि-  
शाला प्रतापान् जाव ही प्रकृत साधुके सङ्गके लिये उत्प्रेषित और अनुमान होते हैं ।

सत्यानुसन्धान करनेके लिये प्रकृत साधुका अनुसन्धान करना कर्तव्य है । प्रसाधुके साधु समझकर उसका सङ्ग करनेमें कर्माभा प्रकृत सङ्गल प्राप्त नहीं होगा ।

प्रकृत साधुका अनुसन्धान कर्तके साथ करना कर्तव्य है किन्तु एक शरणके लोपीका ऐसा स्वभाव है कि वे सत्यके अनुसन्धान करनेकी आदमें झान वा अज्ञानवश आध्यात्मिकताकी ही सत्यानुसन्धान समझते हैं । यह भोग और त्याग-पिपासाकी एक प्रकारकी प्रच्छन्न नास्तिकता वा कपटता है । प्रच्छन्न आध्यात्मिकोंका यह स्वभाव है कि वे सत्यानुसन्धान करनेके बहाने केवल नये नये धर्ममत, नये नये धर्म-प्रतिष्ठान और साधुके नये नये दोषोंका अनुसन्धान करते फिरते हैं । इष्टवस्तुके आवाहन और विमर्जन ग्रहण और त्यागके चक्रमें अपनेको गिराकर उसको ही सत्यानुसन्धिष्ठा कटकर कल्पित करते हैं । सत्यानुसन्धिष्ठाका अभिनयकर आज वे जिस मत, पथ वा व्यक्तिविशेषको अनेक युक्तियोंके साथ एकमात्र वास्तव सत्य वा एकमात्र साधु, गुरु, वैष्णव वा इष्टदेव कहकर

आवाहन करते, जिसका लिये दूसराक साथ कितना न संग्राम करते, कल व्यतीत होते न होते ही उसी एकमात्र वास्तव सत्यको असत्य कहकर प्रतिपादन वा अद्वितीय साधु-गुरु-वैष्णवको बहाने पुनः प्रसाधु और वञ्चक कहकर सर्वदाके लिये विमर्जन करनेके लिये उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार आवाहन और विमर्जन अविप्रद गढ़ने और लोड़नेका स्वभाव निर्विशेषादियोंके चरित्रमें सर्वदा हो देखा जाता है ।

ये जब अपने पूर्वव्याकृत 'वास्तव' सत्यको दूसरे गुणोंमें 'अवास्तव' कहकर प्रचार करते हैं, उस समय वे कहते हैं कि वे सत्यका खोज कर रहे हैं, इसलिये इस प्रकार आवाहन और विमर्जनके मध्यमें चलते चलते ही किसी न किसी दिन वास्तव सत्य प्राप्त कर ही लेंगे । आरोहवादा आध्यात्मिक सम्प्रदायकी ऐसी युक्ति भगवद्भक्ति-याजनके अभिनय करनेवाले प्रच्छन्न निर्विशेषादियोंके आचरणमें देखा जाता है ।

एक विख्यात धर्मेता पहले वैष्णव धर्ममें विशेष अनुरागी थे । वैष्णवधर्म याजन करते करते उनको ब्राह्मधर्मके प्रति आसक्ति हुई । वे उपवीतादि परित्यागकर श्रीमूर्तिपूजा और ब्रह्मण्यधर्मके विरुद्ध प्रचारक हो पड़े । ब्राह्ममत ग्रहण करनेके पहले उनके दो अपने सम्बन्धी व्यक्ति एक ब्राह्मनेताके पास जाते थे ; उन्होंने उसमें पूर्णरूपसे बाधा प्रदान की, यहाँ तक कि इसके

लिये वे अपने आत्मीय स्वजनको भी परित्याग करनेमें कुण्ठित नहीं हुए; किन्तु उम्मी व्यक्तिने फिर अपने ही निन्दित मतको प्रकृत सत्य समझकर ग्रहण और वैष्णवधर्मके विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया। इसके बाद उस ब्राह्ममतको परित्यागकर उन्होंने एक किसी योगीको प्रकृत (मन्त्र) साधु समझा एवं योगीमिश्रित मतवाद अवलम्बनकर बहु शिष्य करने लगे।

एक दूसरे विश्वाधारणत धर्माभेता पहले शिव भक्त थे। शिवरात्रिदिन दिन भर उपवास रहकर जब रात्रिके दूसरे प्रहरमें किसी शिवमन्दिरमें शिव पूजा करनेके लिये गये तो देखा कि कितने चूटे शिवलिङ्गके सामने हो गये हुए नेत्रको रग रहे हैं और शिवलिङ्गके ऊपर अजायाम धूम रहे हैं, इसको देखते ही उनकी शिवभक्ति उड़से नष्ट हो गयी। वे यह प्रचार करने लगे कि यदि शिव सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं, तो चूटे उनके ऊपर क्यों विचरण कर रहे हैं? इसके बाद वे सन्यासी होकर भगवद्धिग्रह और श्रीमद्भागवतका दोष अनुसन्धानको ही 'सन्यानुसन्धान' कहते हुए संसारमें प्रचारकर एक विराट् आध्यात्मिक-सम्प्रदाय रचना कर गये। इस जातिके सैकड़ों व्यक्ति सत्यानुसन्धानके बहाने आध्यात्मिक और हरिगुरु-वैष्णवापराधी हो गये हैं और हो रहे हैं।

प्रायः बीस वर्षोंकी बात है कि श्रीगौड़ीयमतका आश्रित होनेका अभिनय कर कोई एक मज्जन प्रबल सत्यानुमन्धित्माका अभिनेता होकर जाति-गोस्वामी और बेतन लेनवाले प्रचारकोंके विरुद्ध प्रचारक हो गये। वे अपने जीवनमें सभी धर्म-मत और सभी सम्प्रदायके नेताओंके साधुत्व और गुरुत्वका आस्वादनकर अन्तमें वैष्णव-धर्मके स्तावक

हुए। श्रीश्रीविश्व-वैष्णवराजमभाके प्रचारकोंकी कथा आध्यात्मिक कर्णसे श्रवण कर वे प्रकृत भक्ति और भक्तका स्वरूप न समझकर उसके सुविख्यात महाजनके निन्दक हो गये और उनका असद्गुरु परित्याग एवं सद्गुरु और सत्सङ्ग प्राप्त हुआ है, यह बड़े बड़े समासार्थमंत्रियोंमें प्रबन्धमें और निबन्धमें प्रचार कर रहे। वैष्णवधर्म और वैष्णव सद्गुरुके सुखके आस्वादनका "शौख्य" थोड़े ही दिनों में मिट जानेमें उन्होंने श्रीमद्भागवत और श्रीचैतन्य-परितासृतमें भी स्पष्टीय धर्मपुस्तकमें अधिकतर मोन्दर्य देखा। गताप्रभुसे भी प्रियकृष्णका आधिक्य मानाव्य उपलब्धि किया। वैष्णव सद्गुरुके आचार और विचारमें उनका उन्मिदयवृत्तिविधान नहीं होनेमें, वे मनोवर्मके आवाहन और विमर्जनके चक्रमें पतित होते हैं। जिज्ञासा करनेमें वे अवगता उत्तर प्रदान करने हैं कि "वे सन्यानुमन्धितगु" हैं, यदि भूलमें किसी असत्यको हो सत्य समझकर ग्रहण किया है, तो उसीको लेकर वे क्यों चिरकाल बैठे रहेंगे? पच्छन्न पञ्चोपासकगण इसी प्रकार मनोवर्मके आवाहन और विमर्जनरूप आध्यात्मिकताको ही सन्यानुमन्धित्मा समझकर नित्य नये साधुगुरुको प्रतिमा गढ़ते हैं और दूसरे मुहूर्तमें ही उसको तोड़ते हैं।

पुराणमें इस जातिके प्रवृत्तिर्वाशिष्ट व्यक्तित्वके अनेक उदाहरण हैं। बाण राजाने शिवका एक सर्वश्रेष्ठ स्तावक कहकर अपनेको विख्यात किया था; किन्तु महादेवके निकटमें प्राप्त अस्त्र में ही अर्थात् महस्र बाहुद्वारा ही महादेवके साथ युद्ध आरम्भ किया था।

वृक भी उसी प्रकार शिवके स्तावक थे। बहुत तपस्याकर वृकने वैष्णवराज शिवसे यह वर प्राप्त

किया कि वे जिसके भक्तकपर अपना हाथ रखेंगे, उस व्यक्तिकी उमी मुहूर्तमें मृत्यु हो जायगी। वृक ऐसा वर प्राप्तकर अपने इष्टदेवके वाक्यकी सत्यताका प्रमाण करनेके लिये शिवके भक्तकपर ही हाथ रखनेके लिये उत्तत हुए। जो आध्यात्मिकताको ही सत्यानुगन्धित्वा समझते हैं, उनलोगोंका विचार भी ऐसा ही है। जब कोई प्रकृत साधु 'कृष्णभक्त और योषित्सङ्गाके' विरुद्ध प्रचार करते हैं, तो उस समय आध्यात्मिक उमी साधुके भक्तकपर हाथ रखकर उसकी परीक्षा करनेके लिये उत्तत होता है। महाप्रभुने "भाल ना ग्याडे, आग भाल न परिचे" उपदेश दिया है, मृतगं रामचन्द्रपुरा बही अस्त्र महाप्रभुके अङ्गमें निक्षेप करनेके लिये कृत मङ्गल्य हुए। रूप-कविगज वृकके समान श्रीनिवासाचार्य प्रभुके भक्तकपर हाथ रखकर उनके साधुत्व की परीक्षा करनेके लिये उत्तत हुआ था।

इस प्रकारका प्रवृत्ति और चित्तवृत्तिके द्वारा परिचालित होनेसे कर्मा भी साधुका सङ्ग प्राप्त नहीं होता। संशयात्मा होकर गङ्गाके किनारे जल प्राप्त करनेकी आशामें नित्य नया असमाप्त कृप स्वननेसे परिश्रम ही केवल लाभ होता है, अर्थात् न तो गङ्गाका जल ही प्राप्त होता और न किर्मा एक कृपको धैर्य पूर्वक पूर्णरूपसे खोदकर उससे जल प्राप्त किया जाता; इस प्रकार गङ्गाके किनारे रहकर भी उस आध्यात्मिक व्यक्तिकी जलके नहीं मिलनेके कारण प्राण त्याग करना पड़ता है। इस प्रकार आत्महत्या ही हारगुरुवैष्णवके चिद्विलासके अस्वीकार करनेवाले निविशेषवादियोंको प्राप्त होता है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जैवधर्ममें कहा है,—

“साधु सर्वदा संसारमें हैं। केवल असाधुगण

उनलोगोंको नहीं पहचान सकते इसीलिये साधुमङ्ग दुर्लभ होता है।”

(जैवधर्म ७ म अध्याय)

अन्यत्र श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने कहा है:—

“जीवनमें बहुत साधुओंके साथ साक्षात्कार होता है; किन्तु हमलोगोंके कष्ट व्यवहारसे हमलोगोंको साधुमङ्गका कोई फल प्राप्त नहीं होता।”

(मज्जनतोपणी १/१२)

साधुके अनुमन्थान करनेके समय हमलोग मुख्य बात भूल जाते हैं। हमलोग समझते हैं कि हमलोग अपनी विद्या, बुद्धि, सुनीति, विचारशक्ति, प्रवृत्ति परिमाण-यन्त्रके (तौलनेके यन्त्रके) द्वारा साधुको पहचान सकते हैं। हमलोगोंके हाथमें कमौटीपत्थर है, उसमें साधुरूप स्वर्ण और असाधुरूप 'नकली सोने' को पहचान लेंगे। किन्तु विचारनेकी बात है कि हमलोगोंके हाथोंमें यदि 'कमौटी-पत्थर' हो तो हम हरक्षणमें तोड़ने और गड़नेके दास क्यों बनते हैं? हमारे सिद्धान्तकी स्थिरता क्यों नहीं है? हमलोग विभ्रान्त (अस्थिरचित्त) और वाञ्छित क्यों होते हैं? जिनके निकट 'कमौटी पत्थर' है, वे तोड़ने और गड़नेके अर्थात् मनोधर्मके दास नहीं हैं, उनके सिद्धान्तमें अस्थिरता नहीं है, हृदयमें संशय नहीं है, चित्तमें दोलायमान वृत्ति (कच्चे कि न कच्चे) नहीं है, निष्ठाके मध्यमें यवनिक्पात नहीं है; उनके पातिव्रता-धर्मके मध्यमें व्यभिचारिणीकी चित्तवृत्ति नहीं है, उनको कोई असाधु साधु कहकर वञ्चना नहीं कर सकता, उनके निकट कोई प्रकृत साधु आत्मगोपन भी नहीं कर सकता।

साधुकी कृपासे ही साधुको पहचाना जाता है, साधुकी दी हुई आँखसे साधुको देखा जाता है, साधुके निकटसे प्राप्त दिव्यज्ञानके द्वारा ही साधुकी

क्रिया मुद्रा उपलब्धि की जाती है—इसी प्रकारसे प्रकारसे प्रकृत साधुका अनुसन्धान होता है।

श्रीगौरपार्षद जगदानन्दने गीतमें कहा है :—

‘साधु पावा कष्ट बड़ जाँवेर जानिया।

साधु-गुरुरूपे कृष्ण आइला नदिया ॥”

किन्तु श्रीरामचन्द्रपुरीकी आँखने गौरमुन्दरका साधुत्व देवनेके बदले जिह्वा-लाम्पट्य दर्शनकी, नवद्वीपके पागवण्डी हिन्दू महाप्रभुमें साधुत्व दर्शन करनेके बदले नाना प्रकारका असदाचार और दुनीर्ति देखा करने थे। अमोघने महाप्रभुकी साधुता दर्शन करनेके बदले पेटपना देखा किया।

प्रद्युम्न मिश्रने आध्यात्मिक आँखसे सबसे श्रेष्ठ विद्वत्सन्ध्यामी राय रामानन्दमें योषत्सङ्ग (!) दर्शन किया है। श्रील गदाधर पण्डितने लोक शिक्षाके लिये पुरङ्गीक विद्वान्निधि की साधुता देवनेके बदले विषय और विलास दर्शन करनेका अभिनय किया है। किन्तु उनलोगोंके परवर्ती आचरणसे यही शिक्षा मिलती है कि साधुकी कृपासे ही साधुका सन्धान मिलता है। साधुकी कृपासे साधुका अनुसन्धान न कर अन्य चेष्टा द्वारा साधुका अनुसन्धान करनेसे अपराध और निर्विशेषवादमात्र प्राप्त होगा।

निर्विशेषवादीके समान अभागा और कोई नहीं है। बल्कि पापी सविशेषवादी एक प्रकारसे अच्छे हैं, किन्तु तपस्वी निर्विशेषवादी किसी प्रकारसे अच्छे नहीं। उनका सङ्ग सबसे बड़ा दुसङ्ग है। श्रौचेतन्यभागवत-रचयिताने यह बार-बार कहा है। धर्म-जगत्में पापने जितनी नुकसानो नहीं की है, निर्विशेषवादने उसकी अपेक्षा करोड़गुणा अधिक नुकसान पहुँचाया है। चार्वाकका मत धर्ममतके नामसे बहुत कम गृहीत हुआ है। किन्तु सिद्धार्थका मत, महावीर, पारशनाथ पृथ्विका मत, अष्टावक्र,

शक्ति पृथ्विका मत, शंकराचार्यका मत, पृथ्वीके सैकड़ों तथा स्थित धार्मिक लोगोंने श्लाघ्य (धन्यवाद देने योग्य) धर्म मत समझकर ग्रहण किया है। इसका कारण यह है कि उनलोगोंकी मुनीति, त्याग-तपस्याके ऐश्वर्यसे जाँवकी आँख भाप गयी। एकमात्र गौरभक्तोंने ही इस प्रकार आध्यात्मिकताके प्रति घृणा प्रदर्शनकर चिद्विलासका जयगान किया है।

साधु और गुरुका अनुसन्धान करनेके समय भगवद्बहिर्मुखतासे उत्पन्न निर्विशेषवाद-दैत्य हम-लोगोंके सत्यानुसन्धानके रास्तेको बन्द कर देता है। उस दैत्यके प्रभावसे हमलोग समझते हैं कि इन्द्रिय-निग्रहकारी तपस्वी ही प्रकृत साधु हैं। हरिगुरु-वैष्णवके चिद्विलासका लोप कर देना ही निर्विशेषवाद-दैत्यकी प्रतिज्ञा है।

श्रीमन्महाप्रभुने गुरुका कोई दूसरी संज्ञा न देकर केवल यही कहा है,—“यई कृष्णतत्त्ववन्ता सई गुरु हय ” किन्तु कर्मा, ज्ञानी, योगी-सम्प्रदाय कृष्णतत्त्ववन्तत्व वा कृष्णमें अन्यान्य शरणागति रूप किसी लक्षण का गुरु और साधुका लक्षण कहकर वर्णन नहीं करते हैं। अर्थात् कर्मा, ज्ञानी, अन्यभिलापी योगी-सम्प्रदायके तटस्थ लक्षणके प्रति अधिक आदर, और सविशेषवादियोंके निकट स्वरूप लक्षणके प्रति अधिक आदर देखा जाता है।

प्रच्छन्न आध्यात्मिक तथाकथित साधुके दोषका अनुसन्धानकर साधु और गुरु-परित्यागके प्रति बहुत उन्मादी रहते हैं; किन्तु अपने रिपु और मनोधर्म-रूप दुष्ट गुरुका सङ्ग परित्याग करनेके उद्योगी नहीं हैं। अपने २ रिपुओंका चंचलता, मनोधर्मका ताण्डव नृत्य, सिद्धान्तके अस्थिरताको वे यत्नपूर्वक अनुकूल खाद्यादिदानकर पोषण करते रहते हैं! वे समझते हैं कि अपना मङ्गल-संग्रह और दूसरेका

उपकार करनेके लिये ही वे प्रकृत साधुके अनुसन्धान-में आध्यात्मिकताका पोषण करते रहते हैं; किन्तु भक्तिवृत्तिके बढ़नेके बदले आध्यात्मिकताके बढ़नेसे उनलोगोंका अपना और दूसरोंके झगलका अनुसन्धान मायामृगके पीछे दौड़नेके व्यापारके समान हो जाते हैं। भगवद्भक्तका पथ ऐसा नहीं है। मापनेका धर्म भगवद्भक्ति नहीं है। भगवद्भक्त कृपाके अवतारके लिये अन्यन्त धैर्यशाल और सहिष्णु होकर सेवाका पथ वरण करते हैं। पहले सत्यानुसन्धान, इसके बाद सेवा, यह आध्यात्मिक निर्विशेषवादाका पथ है: भगवद्भक्तिका पथ नहीं है। सेवाके साथ साथ कृपाका अवतार, सत्यका स्वतः प्रकाश और सत्यका मृदु परिचय भक्तिके पथमें पाया जाता है। भक्त सेवाके पथमें ही सत्यका अनुसन्धान प्राप्त करते हैं, सेवा छोड़कर आगेह चेष्टासे सत्यका वा साधु-गुरुका अनुसन्धान नहीं करते। सेवा छोड़नेमें, और प्रातिपूर्वक सेवामें सर्वदा नहीं लगे रहनेमें बुद्धियोग कहाँ पाया जायगा? साधुकी कृपाके बिना कौन प्रकृत साधुका अनुसन्धान प्रदान करेगा? यदि तपस्या, वैराग्य, पाण्डित्य, सुनीति, विचारशक्ति ये सब प्रकृत साधुका और गुरुका सन्धान देते, तो अभक्तिके द्वारा ही भक्तिका सन्धान प्राप्त होता है और धर्म ज्ञान, योग, वैराग्य, तपस्याके द्वारा कृष्ण-पादपद्मका सन्धान प्राप्त किया जाता है—यही प्रमाणित होता। यदि पत्यक्ष ज्ञानके द्वारा साधुका दर्शन प्राप्त होता तो महाजन लोग साधुकी वाणीका शुश्रूषु और सेवोन्मुख कानसे ही साधु-दर्शनकी कथाका उपदेश नहीं करते।

साधुके आचार और प्रचारके सामञ्जस्यको ही आध्यात्मिकता किस प्रकारसे माप सकेगा? “वैष्णवेर क्रियामुद्रा विज्ञे ना बुभुयः।”—महाजनका यह

सिद्धान्त-वाक्य क्या बांझ युक्ति-विशेष है? श्री-चैतन्य-भागवतकारकी ये सब बातें क्या निरर्थक हैं?

अधिकारी वैष्णवेर ना बुभु' व्यवहार।

ये जन निन्दये, ता'र नाहिक निस्तार॥

अधमजनेर ये आचार, येन धर्म।

अधिकारी वैष्णवे ओ करे सेई कर्म॥

कृष्ण-कृपायसे इहा जानिवारे पारे।

ए सब सङ्कटे केह मरे, केह तरे॥

—चै० भा० अ० १।३८७-३८८।

श्रील प्रभुपादने कहा है,—‘अनधिकारी व्यक्ति वैष्णवको और अवैष्णवको बराबर समझनेके कारण नरक गमन करते हैं। वे वैष्णवके मध्यमें दुष्टका दुर्गचार दर्शन करते हैं; किन्तु यथार्थमें वैष्णव कभी भी दुर्गचारी नहीं हैं।’ भगवत्-कृपा नहीं होनेसे भक्तचरित्रके तात्कालिक दर्शनमें किर्माका सर्वनाश होता है एवं कोई अपराधसे न कर अपराधसे दूर रहते हैं। जो सावधान होकर श्रीमद्भागवत पाठ नहीं करते और भक्तोंका असौख्यक चरित्र नहीं समझते, उनलोगोंको अमङ्गल प्राप्त होता है। किन्तु प्रकृत भगवद्भक्तको भगवान् दिव्य बुद्धि प्रदान करते हैं, उनलोगोंके किमी अमङ्गलकी आशङ्का नहीं रहती। विपज्जनक व्यापारममृद् होनेसे भी उनलोगोंको अमङ्गल प्राप्त नहीं होता। न्यूनाधिक साठ वर्ष पहले श्रीस्वरूप दास बाबाजी महाशयके प्रतिभी श्री-कृष्णने इस प्रकारकी कृपा-परीक्षा लीलाका प्रकाश किया था।

(गौड़ीय भाष्य)

पुरीके कन्था धारण करनेवाले शीरघुनाथदास बाबाजी महाशय, जिसके सम्बन्धमें श्रील ठाकुर भक्ति विनोदने बाबाजी महाशय सिद्धपुरुष हैं सुतरां सब बात जानते (स्वलिखित जीवनी १२१ पृः) ऐसा

लिखा है वे भी एक बार श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका चरित्र न समझ सके जिससे उनको अपराध हुआ था। यही बात कहकर उन्होंने ठाकुरके निकट क्षमा भिक्षा की थी। इसलिये “वैष्णवों की क्रिया मुद्रा विज्ञे ना तुभ्य” — महाजन वाक्य सर्व प्रकारसे सत्य है।

श्रीरघुनाथदास महाशयके गमान वैष्णवभी जब भगवद्भक्तका चरित्र देखनेमें असमर्थ होनेका अभिनय करते हैं, तो मनोधर्म वशीभूत अनर्थयुक्त, दोष-चतुष्टयके आधीन व्यक्तिगण भगवद्भक्तकी क्रिया मुद्रा और चरित्र समझनेमें असमर्थ हों, तो इसमें और आश्चर्य क्या है? मनोधर्मके कहनेमें पड़कर

### श्रीरामानुजाचार्यकी उपदेशावली

पूर्व महाजनोंकी शिक्षाके प्रति दृढ़ विश्वास रखना।

इन्द्रियोंका दास होकर न रहना।

सांसारिक ज्ञान-प्राप्तकर सन्तुष्ट न होना।

भगवान्के गुण और लीला-धीर्त्तनविषयक ग्रन्थादि पाठमें रुचिर्वांशष्ट रहना।

श्रीगुरुदेवकी कृपासे जब एकवार प्रज्ञान-नेत्र उन्मीलित हो जावे, तब फिर मायाके मोहमें न भटकना।

इन्द्रियज सुख और दुःख दोनोंके प्रति समान भावसे उदासीन रहना।

भगवन्नाम और महिमा-कीर्तनमें जिस प्रकार आनन्द होता है उनके सेवकोंके नाम और महिमा

यदि हमलोग गुरुवैष्णवापराध करें, तो क्या किसी दिन मङ्गल प्राप्त कर सकेंगे? अतएव साधुके अनुसन्धान करनेके समय हमलोग आध्यक्षिकताको ही साधु गुरु न कर बैठें, महत् (मन्त्र साधु) के छिद्रानुसन्धिन्माको सन्धानसन्धिन्मा न समझें और प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा प्रतारित होकर अप्राकृततत्त्व की अवहेलना न करें। जो हम भक्तिके अनुकूल विचारको, वा अन्वय विचारको वर्णन न कर नित्य नई प्रतिमा गढ़ने तोड़नेके विचारमें दौड़ा फिरेगा उस आध्यक्षिक परामर्शमें अन्तमें नाशके सिवाय और कोई फल प्राप्त नहीं होगा।

कीर्तनमें भी तुम्हारा उम्मी प्रकार उन्माह हो।

तुम्हारे हृदयमें यह दृढ़भावसे अंकित रहे कि भक्तकी सेवामें जो सर्वदा नियुक्त हैं, वे जितना शीघ्र भगवन्पादपद्म प्रेम करेंगे उतना शीघ्र दूसरा कोई प्राप्त नहीं कर सकता।

भगवान् और उनके भक्तोंकी सेवामें पूर्णरूपसे नियुक्त नहीं रहनेसे महाज्ञानियोंका भी भ्रष्ट होना अनिवार्य है। कभी वैष्णवसेवाका उपायरूपसे ग्रहण न करना, वही उपेय है अर्थात् वैष्णवोंके द्वारा अपना कोई अन्याभिलाष चरितार्थ मत करना। वैष्णवसेवाके लिये ही वैष्णवसेवा करना।

उपेयके प्रति सर्वदा लक्ष्य रखना, वही तुमको पहुँचना होगा।

### भंजन

जीव जाग जीव जाग गौराचांद (गौरचन्द्र) बले क्त (कितना) निद्रा जाओ माया-पिशाच की कोलै (गोदमें) ॥१॥

• भजिव बलिया एमे (आकर) संसार-भंजने।

मुलिया रहिले तुनि अविचार (शरीराभिमान) भरे

(वशमें) ॥२॥

तोमारें लउने आमि हैनु अवतार ।

हरिनाम महामन्त्र लओ तुमि मागि' ॥४॥

आमि विना बन्धु आर के आछे तोमार ॥३॥ भक्तिविनोद प्रभु-चरणे पड़िया ।

गनेछि औपधि माया नाशिवार लागि' ।

सेइ हरिनाम-मन्त्र लइल मागिया ॥५॥

## प्रचार-प्रसङ्ग

कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठके प्रचारक श्रीसत्यनारायण दामोदरकारीजीने ता:२० जुलाईको पीलीभीत राजाके ठाकुरमन्दिरमें प्रायः दो सौ श्रोताओंके निकट छायाचित्र द्वारा कृष्णलीला प्रदर्शनकी तथा प्रायः डेढ़ घण्टेतक वक्तृता दी । सभामें राजासाहब तथा उनके कर्मचारियोंने हरिकथा सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उनकी प्रशंसाकी । सभाके पहले तथा पीछे संकीर्तन भी हुआ । उक्त ब्रह्मचारीजी महोदय पीलीभीतके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्य-वाणीका प्रचारकर लग्यनऊ शहरमें पधारे हैं ।

उपदेशक श्रीपाद निताइदास ब्रह्मचारी भक्ति-शास्त्रीजीने बम्बे नगरमें साण्टाक्रुश-प्रवासी श्रीयुत केदारनाथ भार्गव बी ए महोदयके भवनमें गत पहली जुलाईको चातुर्मास्य व्रतारम्भके दिन श्रीमद्भागवतसे “अजामिल” उपाख्यानका हिन्दी भाषामें पाठ और व्याख्या कर कुछ सज्जनोंके परिप्रश्नोंका सदुत्तर दिया । दूसरे दिन पतितपावन ब्रह्मचारीजीने साण्टाक्रुश-प्रवासी प्रसिद्ध व्यवसायी एम्. के. चोक्मोजीके भवनमें श्रीमद्भागवतके कुछ विषयोंको लेकर गुजराती भाषामें हरिकथाकीर्तन किया था । गत १८ वीं जूनकी रथयात्राके दिन प्रातःकाल श्रीचैतन्यमठमें महामहोपदेशक श्रीपाद नारायणदास भक्तिमुधाकर प्रभुने श्रीचैतन्य भगवत पाठ और व्याख्या की थी । १ बजे मठाश्रित और मठवासी भक्तवृन्दने संकीर्तन शोभायात्राके साथ श्रीधामके सभी मठ और श्रीमन्दिरादिकी परिक्रमा की । ३ बजे

आविद्या-हरण नाट्यमन्दिरमें एक बड़ी सभामें महोपदेशक श्रीपाद किशोरीमोहन भक्तिवान्धव बी-एल् महोदयने वक्तृता दी ।

मूल मठ श्रीचैतन्यमठके एकमात्र शाखा कटकके श्रीसच्चिदानन्द मठका वार्षिक उत्सव गत २२ वीं जून वृहस्पतिवारसे श्रीश्री विश्व वैष्णव राजसभाके वतमान पालराज गौड़ीयमठाचार्यके आनुगत्यमें संकीर्तन द्वारा आरम्भ हुआ ।

## श्रीभक्तिविनोद-विरह महामहोत्सव

श्रीगोद्रुमस्थ स्वानन्दसुगन्दकुञ्जमें नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुरके प्रिय प्रवीण शिष्यवर, गौड़ीय मिशनके चेयरमैन, विदर्ण्डपादाग्रणी श्रीपाद भक्तिप्रदीप तीर्थ गोस्वामी महाराज प्रमुख शुद्ध भक्तगणने श्री श्रीविरह महा-महोत्सव सम्पादन किया है ।

श्री श्री विरह-महामहोत्सवके दिन प्रातःकास श्रील तीर्थ गोस्वामी महाराजको अग्रणी कर श्रीधामवासी सेवकवृन्दने नगरसंकीर्तन द्वारा श्रीनमहट्टके परिमार्जक-लीलाभिनयकारी श्रीश्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी आराधना की । इसके बाद गौड़ीय की श्री श्रीभक्तिविनोद-विरह संख्या से श्रीश्रील ठाकुर-रचित “भक्तितत्त्वविवेक” प्रबन्ध सभाके मध्यमें पढ़ा गया । भोगारात्रिकके बाद कीर्तन द्वारा महाप्रसाद दिया गया ।

## SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

## SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs 2-8-0.

## RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

## THE BHAGBAT

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Sri R. Pabhapad. Full calico bound—Rupee One.\* Thick, paper bound—Twelve Ans.

( बंगलामें )

## श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णहैपायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन् मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त । प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है । श्लोकमूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित । प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है । भित्ति प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र ।

## श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत । श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिमिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं । श्लोककी सान्ध्य व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिधेय संयोजित है । प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है । श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृद्ध सूची व ग्रन्थकारकी विवृत जीवनी-समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है । उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १२०० पृष्ठमें सम्पन्न है । भित्ति बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र ।

## श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिमिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयातन—क्राउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १२४० पृष्ठ भित्ति—६)मात्र ( बिना बंधा हुआ ) ।



## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—( तृतीय खण्ड )

आचार्य प्रकट निधिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उद्देश्यसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामों व सत्यका अनुपन्धान करनेवाले व्यक्तियों इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगतकी अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जित्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिन्ना १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० बोयारी, ढाका ।

### सगस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सगस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मलसर शुद्धभक्ति पिपामु व्यक्ति, इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपूर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपमें मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विभूत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिन्ना ४)

### ‘सामयिक-संख्या’—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रवन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिन्ना ॥) आना ।

### ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिन्ना ॥॥) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता ( बागबाजार ) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

### अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमज्जरी टीका, उसके बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त सातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसके अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिन्ना २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

श्रीगुरुगौराङ्गो जयतः

# श्री श्रीगुरुपूजा संख्या

Regd No. P. 468.

संख्या ६ ]

वर्ष ५ ]

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

६ हृषिकेश  
गौराङ्ग  
४५३



भाद्र कृष्ण ६  
संवत्  
१९९६ वि०

प्रति संख्या

१॥

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।  
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

वार्षिक

१)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसम्भान-रहिता ऐकान्तिकी  
स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय हांती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—  
उसा भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari,  
Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

## विषय सूची

| विषय                   | पृष्ठांक | विषय  | पृष्ठांक |
|------------------------|----------|---|----------|
| प्रवृत्ति तथा निवृत्ति | .... ६७  | भजन   | .... ११० |
| भय और संशय             | .... १०२ | श्री श्रील आचार्यदेवकी त्रिदण्ड-सन्यास-लीला | .... १११ |
| सनातन धर्म             | .... १०६ | शिक्षाष्टक                                  | .... ११४ |

## भक्तिके अन्यान्य पत्र

१ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज सम्पादित अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका । प्रति एकादशीको कलकत्ता बागबाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होते हैं । भित्ति ४॥ डाक महसूल समेत ।

२ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद मुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला साप्ताहिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित । वार्षिक भित्ति ३) डाकस्वर्च समेत ।

३ दैनिक नदीया-प्रकाश (बंगभाषामें प्रकाशित)—भारतमें सर्वत्र प्रचारित—नदीया जिलेकी एकमात्र

पारमार्थिक दैनिक पत्रिका हैं । श्रीधाम-मायापुर श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होती हैं । वार्षिक भित्ति डाक व्यय समेत ६) मात्र ।

४ परमार्थी—श्रीयुक्त रघुनाथ महापात्र द्वारा सम्पादित उत्कल पाक्षिक । कटक श्रीसच्चिदानन्द मठसे प्रकाशित । वार्षिक भित्ति १॥ मात्र डाक व्यय समेत ।

५ श्रीगौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद मुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला पाक्षिक । कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित । वार्षिक भित्ति १॥०) मात्र डाक व्ययके साथ ।

## SREE CHAITANYA MAHAPRABHU

The teachings and characteristics of Sree Manmahaprabhu have been clearly published in this book. It has been written by Tridandi Swami Sreemad Bhakti Pradip Tirtha Maharaj. Price Rs. 4/-

To be had:—Nand Kishore Bhaktishastri,  
Sree Jogpith, Sree Mandir  
P. O. Sree Mayapur (Nadia)

## वैष्णवाचार्य श्रीमध्व

गौड़ीय संपादक-सम्पादित, इस ग्रन्थमें श्रीमध्वाचार्यका जीवन चरित, सिद्धान्त और शिक्षा भली भाँतिसे आलोचित हुआ है । यह एक अपूर्व मौलिक विराट् ग्रन्थ है । भित्ति २) मात्र ।

## श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित पद्यावली श्रील आचार्यदेव-विरचित “सौरभ” नामक भाष्यके सहित प्रकाशित हुआ है । श्रील प्रभुपादके बहुतसे अप्रकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं । भित्ति ॥०) आठ आना मात्र ।

## श्रीश्रीभक्तिविनोदवाणीवैभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंसे सम्बन्ध, अभिप्रेय और प्रयोजनाकारमें प्रनोत्तररूपसे उनका वाणी-सङ्कलन । भित्ति १) मात्र ।



वर्ष ५

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

संख्या ७-८

भाद्र कृष्ण ६, ४५३ स० १९९६ वि०, ४ सितम्बर मन १९३६ ई०

## प्रवृत्ति तथा निवृत्ति (२)

(ऊँ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

भागवतकी गत संख्यामें प्रवृत्ति सुखका वर्णन किया गया है। ऐसे सुखके अतिरिक्त जीवके लिये और एक प्रकारका सुख है। गम्भीररूपसे विचार करनेसे निवृत्ति-सुखके उत्पत्ति-स्थानकी उपलब्धि होती है। निवृत्ति-सुख किमको कहते हैं, इसकी व्याख्या होनी चाहिये। जीव कौन है, यह पहले विचार करना आवश्यक है। इस मनुष्य शरीर में त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, अस्थि प्रभृति सात पदार्थ देखनेमें आते हैं। इनसे जीवको क्या सम्बन्ध है? त्वक्, अस्थि प्रभृति पदार्थ प्राकृत अर्थात् भौतिक हैं किन्तु जीव इन सबोंके अतिरिक्त दूसरा पदार्थ है, जिसके बहुतसे प्रमाण हैं। देह के वियोग होनेपर त्वक्, मज्जा प्रभृति पदार्थ देहमें ही रहते हैं, किन्तु किमके अभावमें ये सब शून्य मालूम पड़ते हैं, यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। चक्षु शीतल होकर पुतलीके चक्षुके समान स्थिर रहता है, हाथ-पांव स्पन्दनहीन हो जाता है, वन्धुवान्धव हा हा करके रोते हैं,--किन्तु वियुक्त देह किमको भी उत्तर नहीं देता! अहा! यह विषय किनना गम्भीर है! जो देह अप्रति सुन्दरता से वेशविन्यास द्वारा किन्ती २ रसगणियोंका मन हरण करता था, जो चक्षु अनुवाक्षणा यन्त्र द्वारा कल ही ध्रुवतारा तथा अरुन्धतीका दूरीको निर्णय करता था, जो कर्ण नाना प्रकारके मधुर स्वर मिते हुए उत्कृष्ट संगीतज्ञके टण्डे श्रवण करके मोहित

होता था, जो दाय कत हा खड़ा, बसे, बन्दूकादि धारणकर स्वदेश रक्षा तथा शत्रुदलन करता था, जो पच कटे दिन चने काशालत्र भ्रमण कर आया था, वही आज कुत्त तथा शृगालादिके महोत्सवका उपकरण हुआ है। यह मनु विचार करके कौन महाजन चन्नामे व्यक्त नहीं होगा? पाखण्ड लोग भी जोड़े समयके लिये वैराग्य-विरागक वाक्य कहते हैं, परन्तु चित्त अत्यन्त विक्षिप्त रहनेके कारण अतीत व्रत उभर आतेही थे मुक्त जाते हैं।

उन त्वरणादि सप्त आचरणोंमें प्रुक्त देह ही जीव का प्राये योग्य हो जाता नहीं हो सकता। जीव स्वयं आप्तव्य एवं जे कामावास्ये विख्यात है। प्राकृत पदार्थके साधन जलाशयों जो दत्तमान सम्बन्ध है,

उक्त लिये ली जा सकता। प्राकृत पदार्थमें

य 'रस' देखनेमें आता है वह नितान्त तुच्छ तथा लघुत्वपूर्ण है। प्राकृत विना पदार्थसे जीवको चित्तवृत्ति स्थान नहीं हो सकता। प्राकृत पदार्थ भ्रमण भृत् तथा मारिष्यो उत्पन्न करनेवाला है। चित्तवृत्तिवाला देहस प्रवृत्ति के चित्तहण वस्तु है। जे वात्सा सर्वदा स्वभावतः कर्मी अतिवर्चनीय अगण्ड अमन्दक लालसा करता रहता है। प्राकृत पदार्थस उस आनन्दका आवास भी प्राप्त नहीं होता। बालिक भौतिक देहमें आवृद्ध होकर जीवका कई प्रकार अकल्याण होता आया है। जीव प्रकृतिके आर्धतन होकर अपने स्वार्थ-लता-सुखको अनुभव करनेमें असमर्थ है। कथा, पिपासा-प्रवृत्ति छः प्रकारकी आपत्तियाँ स्वदेश जीवको यन्त्रना देती रहती हैं। भौतिक पदार्थोंके बीच जीवके 'वेशको' 'बद्धभाव' कहा जाता है। समस्त वैष्णव इस प्रकारके अवस्था-प्राप्त जीवोंको 'बद्धजीव' कहते हैं। फलतः उनलोगोंको किसी किसी मुक्त जीवका

आभास प्राप्त हो जाता है।

भौतिक पदार्थोंमें जीव जिस समय आवृद्ध होकर सुखान्वेषण करता है, उस समय माया-प्रकृतिस्थ प्रवृत्ति-सुख, उसको अपना अतिथि बनाकर और उसे मोहित करके रखता है। ऐसी अवस्थाको प्राप्त पुरुष सांसारिक पदार्थ-सुख, कल्पित इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व, तथा शिवत्व प्रवृत्ति पदोंकी आशा-कर चिरकाल क्षुब्धके उपरान्त दुःख भोग करता रहता है। जीव मनमें सोचता है कि जो ऊँची ऊँचा अट्टालिकायें हैं तथा जो नाना प्रकारके सुन्दर उपकरण तथा सुन्दरी स्त्री, पुत्रादि हैं और जो ये रेल तथा वातावरणादि यन्त्र हैं उसी प्रकार ये जो नियमित और नियन्त्रित राज्य-शासन तथा पदार्थ-विज्ञानकी आविष्क्रियायें हैं वे ही जीवनवां उद्देश्य हैं। अहा! कौसा काँठन भ्रम है! यदि वैज्ञानिक आविष्क्रिया-द्वारा और समस्त राजनियमोंके अनुष्ठानसे उनका १५० वर्षों तक देहान्त न होता, तब अवश्यही कुछ अंशोंमें उनकी जय स्वीकारकी जाती। नारिकेल वैज्ञानिक तथा भक्तिहास नायिक इस मभारकी उन्नतिके द्वारा जीवकी परमायु वृद्धि तथा अनन्त उन्नतिकी कल्पना करते हैं। अहा! उन-लोगोंका भ्रम कितनी दूर तक है। प्रचलितकालमेंही भौतिक विज्ञानकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है। प्रसिद्ध देशके थॉलस नामक पण्डितने जिस समय जलमें सभी पदार्थोंकी उत्पत्तिकी बात बतलाई, उस समय लोगोंने विज्ञानसे अनेक प्रकारकी आशाओंकी थी। बेकन, निडटन, लामार्क, गोयट्टी प्रभृति अनेक नवीन तत्ववादी नाना प्रकारके चिन्ता-मणिका आविष्कार करकेभी जीवका कोई प्रकृत (सच्चा) मङ्गल साधन न कर सके। चुम्बक, रेल, बन्दूकके अतिरिक्त अनेक शिल्प सम्बन्धी आविष्क-

तियां हुईं, किन्तु उनके द्वारा मानवजातिका संसार-सुख क्या बढ़ सका है? हमारी ऐसी युक्तियोंमें नवीन-सम्प्रदायको सन्तोष नहीं होगा, क्योंकि वे बालकालमें ही इन सब विषयोंमें कुम्भकृत हैं। रेल और जहाज प्रभृतिके द्वारा जो बहुत प्रभारके वाणिज्यादिकी उन्नति हुई है उसका असल कारण विज्ञानके ग्योज ही हैं, यही लोगोंका दृढ़ विश्वास है और यही बात बचपनमें ही वे सुनते आ रहे हैं। किन्तु निरपेक्ष होकर विचार करनेपर पता चलता है कि उनके द्वारा जैसे कई बातोंमें सुविधा हुई है, वैसेही कई बातोंमें नाना प्रकारकी दुःखदायिनी अशुविधायें भी आ खड़ी हुई हैं। 'स्वल्पे सन्तोष' थोड़े में सन्तोष' का नाम भी अब सुनने में नहीं आता। यह बात अब पौराणिक कथा मात्र ही रह गई। सन्तोषको इस कर्माको कोन स्वीकार नहीं करेगा? सन्तोष ही जीवका अमूल्य रत्न है। आशाका अन्त नहीं। आशास्पी मत्त-रग्ना इन्द्र-लोक, ब्रह्मलोक तक प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं होता। आशाही जीवका प्रधान शत्रु है। नेपोलियन बोनापार्टके आधुनिक इतिहास और दुर्योधन-रावणादिके पौराणिक वृत्तान्तपर जो मनन करते हैं उन्हें इस संसारमें आगे और किसी आशाकी आशा नहीं रहती। इस समय जो सन्तोषके अभावमें आशाकी वृद्धि हुई है, उसकी थोड़ीसा आलोचना करनेसे निःसन्देह यह पता चलेगा कि इस संसारमें प्रवृत्ति-भार्गावलम्बी पुरुषोंके जो उन्नति सम्बन्धी भाव हैं वे निकृष्ट हैं, आशा अनर्थमूलक है इसका प्रमाण श्रीमद्भागवतमें है :—

आशा हि परमं दुःखं नौराग्यं परमं सुखं ।

यथा मन्त्रिभ्यः कान्ताशां सुखं सुप्वाप पिङ्गला ॥

(भा० ११-८-४४)

यद्यपि पदार्थ-विद्याकी अनुस्योगिता हम स्वीकार नहीं करते, तथापि उस विद्याकी उन्नतिमें जीवको अत्यन्त क्या लाभ हुआ यह देखनेमें नहीं आता। गम्भीर विचारक इस विषयपर बहुत चिन्ता करते आये हैं। जर्मनी देशवासियों एक महापुरुषने अनेकानेक तत्त्व-विद्याका आविष्कार करके अपनेको कई प्रकारके नियमोंका सर्पिकर्ता समझकर एक दिन सन्ध्या समय अपने पुस्तकालयमें बैठकर कहा, — “हाय मैंने समस्त पदार्थ-विद्यामें नये सत्यका आविष्कार किया है यह बात प्रामाण्य होगई है; किन्तु इसमें मुझे क्या शिक्षा मिलेगी? सामान्य मूल्य और गुणमें क्या भेद है?” तब उन्होंने बहुत मोचकर कहा,—“आज मुझे विशाल ज्ञान हुआ है, जिसमें मुझे पता चला कि किसी एक विषयका ही सत्य स्वरूप” मैं नहीं जानता।” यह वृत्तान्त “फोष्ट” नामक एक अपूर्व ग्रन्थमें वर्णन किया गया है। मुड्डेनवर्ग नामक एक महापुरुष भी इसी प्रकारके तरीकेपर पहुँचा था। नवीन-सम्प्रदायके लोगोंको विदेशी ग्रन्थ तथा पाणिन्यमें अधिक आस्था होती है, इसीलिये यहाँपर मैंने विज्ञानार्थ उदाहरण दिया। हमलोगोंके स्वदेशीय शास्त्रमें इन सब विषयोंके अनेकानेक प्रमाण हैं। केवल एक प्रमाण यहाँपर दिया जाता है। श्रीमद्भागवत द्वितीय, शुकदास्य—

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एव पन्था यन्नाभिध्यायति धीरपार्थः ।

परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान् मायामयं वामनया शयानः ॥

स्वामिकृत टीकाच-शाब्दं शब्दमयं ब्रह्म वेदस्तस्य एव पन्थाः कर्मफलबोधनप्रकारः । कोऽसौ ? अपार्थैरर्थशून्यैरेव स्वर्गादिनाभिमा साधकः । यो ध्यायति तत्तदिच्छां करोतीति यत् । अपाथव्यमवाह तत्र

मायामये पथि सुखमिति वामनया शयानः स्वप्नान् मनुष्य उम समय अनायामही सर्वसुख भोग कर पश्यन्निव परिभ्रमन्नर्थान् विन्दति, तत्तल्लोकं प्राप्नोऽपि सकेंगे, यही भगवत् इच्छा है ।”

निर्धनं सुखं न लभत इत्यर्थः ।

किन्तु 'जीविका नित्य सुख क्या है' इस विषयको विचार करनेसे देख पड़ेगा कि 'स्वाधीनताही जीविका नित्य सुख है' प्रकृतिका आधीनता प्राप्त करनेसे जीविका दुःख उदय हुआ है । इस माया-प्रकृतिको आतंकस करके (पार होकर) जीविके स्व-स्वरूप-प्राप्तिका नाम मुक्ति है । इसको निवृत्ति-सुख कहते हैं । प्रवृत्ति-मार्गस्थित पुरुषोंको कर्मका फल भोगनाही पड़ता है; अतएव प्रवृत्ति पुरुषोंको मार्गमें मुक्त होनेका सम्भावना नहीं है । प्रवृत्ति-मार्गका उन्नतिही उस मार्गमें चलनेवालोंको प्राप्त होती है । किसी काममें विपरित फल नहीं होता; सजातीय फलही प्राप्त हुआ करता है । अतएव प्रवृत्ति काम निवृत्ति प्रगव नहीं कर सकता । तब यदि भाग्यवश किसी प्रवृत्ति पुरुषको प्रवृत्तिके प्रति अप्रवृत्ति उत्पन्न हो तो उसको शुभफल लाभ होता है । इस प्रकार अनेक लोग मायामुक्त हुए हैं ।

बहुतसे आधुनिक तथा पुरातन युक्तिवादी पुरुष मुक्तिके विषयमें प्रतिवाद करते हैं । उनलोगोंका पहिला प्रतिवाद यह है “यह ब्रह्माण्ड ईश्वरका सृष्टि किया हुआ है, अतएव मनुष्योंके लिये वाञ्छनीय है । जगद्-ईश्वरने मनुष्योंको युक्ति-शक्ति द्वारा भूषित करके इस ब्रह्माण्डमें रहनेके लिये आज्ञा दी है । मनुष्य युक्तिशक्तिको चलाकर समाज और उस सम्बन्धमें बहुतसी व्यवस्थाएँ स्थापन करके संसारमें सुखभोग कर रहे हैं । अनेकानेक आविष्कार करके सुख तथा सुखके उपायका परिमाण बढ़ाया है तथा समय समयपर इस प्रकार उन्नति होते होते यह ब्रह्माण्ड भी एक अपूर्व क्लेशरहित धाम हो जायगा ।

यह सब सिद्धान्त-विश्वास भी युक्ति-विरुद्ध है, कारण इसके विपरित स्वतःसिद्ध दृष्टान्त देखनेमें आता है । स्वभावतः आत्माको एक अत्राकृत आशा देखनेमें आता है । हे पाठकगण ! दृष्ट-चमड़ेकी मूल देह और मनोमय सूक्ष्म देह पार होकर आप आत्माके कमरेमें प्रवेश करके एकवार समाधि अवस्थामें इस विषयका देखें । तब देखेंगे कि आप पथिकके सदृश इस सान प्रकारके आवरणवाली देहमें बाम कर रहे हैं और अरुने धामको जानेके लिये गाड़ी आशा कर रहे हैं । अजगन्नाथधामके यात्री जिस प्रकार पथमें किसी एक गृहमें बामकर गात्रि बिनाकर अरुणोदयको अपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार आपलोग भी इस प्राकृत देहमें अज्ञानरूप गात्रि बिनाकर ज्ञानरूप सूर्यकी अपेक्षा कर रहे हैं । सरायमें आमक्त होकर कौन मूर्ख उसकी उन्नतिकी चेष्टा करेगा ? यात्री कभी ऐसी चेष्टा नहीं करेगा । तब इस सरायमें निवास करानेके द्वारा जिसको लाभ होता होगा और जो उसका अधिकारी होगा वही व्यक्ति उस काममें हाथ लगावेगा । जिस पुरुषने इस पाञ्चभौतिक सरायको सृष्टिकी है, वही इसका पालनकर्त्ता है । कर्तव्यविमूढ़ यात्रीलोग इस सरायमें आमक्त होकर इसकी उन्नति करते हैं और ईश्वर भी इन सब व्यक्तियोंके द्वारा अपना काम चला लेते हैं । इसमें उनकी असीम कौशलका परिचय मिलता है । जिन कारणोंसे पथिक उसमें आमक्तिरूप जो अपराध करते हैं, उनके दण्डमें उनको अनावश्यक परिश्रम करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है । पूर्वपापक्षयरूप फलके सिवा और कुछ प्राप्त नहीं होता है, वरन् उन सबोंको आमक्ति गाड़ी हो

जाती है और वे वहां वास करके अपनी बख्खना करते हैं। जीव इस मायिक ब्रह्माण्डका चिरनिवासी नहीं है, यह बात स्वतः सिद्ध है, अतएव इसको ब्रह्माण्डकी प्रजा कहनेसे विश्वासविरुद्ध वाक्य हो जाता है। यह भौतिक ब्रह्माण्ड कितनाही उन्नति क्यों न करे, निर्दोष नहीं होगा। कभी भी इससे विमल सुख प्राप्त नहीं होगा। यह भी एक स्वतः सिद्ध विश्वास है। पञ्चभूतकी उत्पत्ति मायासे है, अतएव इसमें सदाही अभाव बना रहता है। अभाव ही इसका स्वभाव है, अतएव भौतिक ब्रह्माण्ड किसी कालमें अभावग्रहित नहीं होगा। पूर्णता नहीं होनेपरभी विमल सुखकी आशा कभी की जायगी, ऐसी बात नहीं है। इस मायिक ब्रह्माण्डकी कितनी उन्नति क्यों न हो, देश, काल प्रभृति परिच्छेदक गुण कहा जायगा? यूरोप और अमेरिका देशके अनेक...तत्वावित् पण्डितभी इस सम्बन्धमें बहुत भ्रममें पड़ गये हैं। कोई कोई “इन भूतोंकी क्रमोन्नतिके द्वारा अप्राकृतत्व प्राप्त होगा”, ऐसा स्वीकार करते हैं। हाय! वे युक्ति करनेके समय परमेश्वरके अचिन्त्य शक्तिका ध्यान नहीं करते। यदि एकवार हृदयरूपी कन्दरेमें परम-पुरुष भगवान्‌के सच्चिदानन्द भावका स्थापन करें, तब आगे उनके ऐसे सङ्कीर्ण तथा असंस्कृत तर्कका उदय नहीं होगा। परमेश्वर जब सर्वशक्तिसम्पन्न हैं, तब उनकी बनाई हुई अनन्त प्रकारकी सृष्टि हो सकती है। यह प्राकृत जगत्‌ही जो क्रमशः अप्राकृत हो जायगा इसका क्या प्रयोजन है? क्या उनका एक अप्राकृत जगत्‌ नहीं रह सकता है? जो प्रकृतिको सम्पूर्ण जगत्‌का आदि कारण समझते हैं तथा एक महान्‌ चैतन्यको स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं, और उसपर ही एक चैतन्यस्वरूप पुरुषको प्रकृतिका समान कहते हैं,

वे ही केवल प्राकृत जगत्‌से अप्राकृत जगत्‌के प्रादुर्भावकी कल्पना कर सकते हैं। सेश्वरवादी पुरुषोंके ऐसा कहनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। प्राकृत जगत्‌ कभी अप्राकृत हो जायगा ऐसा कभी स्वीकृत नहीं हो सकता।

ऐसा प्रातिवाद युक्तिविरुद्ध भी है। परमेश्वरको वेद मर्त्यसंकल्प और सर्वशक्तिमान्‌ कहते हैं। जगदीश्वरने मनुष्योंकी उन्नतिकी आशा कर प्रथम सृष्टिके उपरान्तही इस संसारको स्थापित किया ऐसा नहीं हो सकता। वे सर्वमङ्गलमय हैं, अतएव अकारण ही हमलोगोंको इस क्लेशमय देशमें रखकर विपज्जालमें गिरा देंगे, ऐसा उनका स्वभाव नहीं। यदि यहा ब्रह्माण्ड हमलागाका चिर्गनकाम अथवा भागके लिये बना रहता, तो वे अवश्य ही निर्मलरूपसे इसकी सृष्टि करते। वे सर्वशक्तिमान्‌ हैं अतएव इस ब्रह्माण्डके किसी विशेष परिणामकी आशाकर बैठे हुए हैं, ऐसी बात उनके लिये सम्भव नहीं है। बड़ई काठ तथा बटालाके नहीं रहने पर और किसी वस्तुका निर्माण नहीं कर सकता, कर्मकार लोहे, हथौड़ी और अग्निके बिना कुछ नहीं कर सकता और कुम्हार कुदाल, चक्र, भिट्टी प्रभृति उपकरणको छोड़कर कुछ गढ़ नहीं सकता, यह बात प्रसिद्ध है। किन्तु हमलोगोंके परमेश्वर क्या ऐसे ही अन्तम अयोग्य पुरुष हैं? वे क्या मानव-बुद्धि और कर्मफल-सृष्टिके बिना इस संसारको श्रेष्ठ नहीं बना सकते थे? अहा! जिस महापुरुषकी इच्छासे ही सदमत्‌ जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, काम करनेकी इच्छा होने पर क्या उनको द्रव्य वा यन्त्रकी आवश्यकता होती है? जो समस्त चैतन्य, जड़ और यन्त्रादिके नियन्ता हैं उनका सङ्कल्प कभी अपेक्षात्मक नहीं हो सकता।



यह ब्रह्माण्ड चिरकाल अमिद्ध और अभावपूर्ण रहेगा, यही उनकी इच्छा है, नहीं तो इसकी अवस्था ऐसा नहीं होती। जीवके लिये प्रायः किसी और एक धामको स्वीकार किये बिना कोई विशुद्ध सिद्धान्त नहीं हो सकता, शास्त्रयुक्ति और आत्माकी प्रत्यक्ष दृष्टिद्वारा यही सिद्ध होता है। जीव उसी अदभुत अप्राकृत धामकी आशा करता रहता

जैसे वामनपुराणमें लिखा है :—

श्रुत्वैतदृश्यामाम् स्वलोकं प्रकृतेः परम् ।

केवलानुभवानन्दमात्रमक्षयमध्वगम् ॥

श्रुतौ च—एषः ब्रह्मलोकः एष आत्मलोक इति ।

इस प्रकार प्राकृत और अप्राकृत दो जगत्का स्वीकार करना अनादिमिद्ध कहना होगा।

क्रमशः

## भय और संशय

द्वितीयाभिनिवेशमें भयकी उ-पान्ति होती है। भगवानसे स्वतन्त्र द्वितीय-वस्तुकी प्रतीति जिससे होती है, वह माया है। मायामें जवतक अभिनिवेश रहता है, तवतक जीवका भय बना रहता है।

साधारण भोगी व्यक्ति सर्वदा ही भयभीत रहता है। भोगी संसारमें जिन वस्तुओंमें आसक्त होता है, वे नश्वर हैं। न जाने किस मुहूर्तमें उसका सभी सुख दुःखमें परिणत हो जाय, इसी चिन्तामें भोगी सर्वदा भयभीत रहता है। नाशवान् वस्तुके प्रति आसक्ति वा अभिनिवेश दूर नहीं होने तक भोगी जीव निर्भय नहीं हो सकता, अतः शान्ति भी नहीं पा सकता।

नश्वर वस्तुके प्रति आसक्त होनेसे उसकी अनिष्टाशङ्का चिन्तको सर्वदा ही अस्थिर करेगी, यह स्वाभाविक है। किन्तु चिन्तयका विषय यह है कि जड़की क्षुद्रता जानते हुए उसके प्रति अत्यन्त विरक्त होकर जो उसे त्याग कर चिद्वस्तुके प्रति अभिनिविष्ट होनेकी चेष्टा करते हैं, वे भी निर्भय नहीं हो सकते। चिदनुशीलनके समय अनुशीलनीय वस्तु एवं अनुशीलनकारीके बीचमें पीछे माया आकर प्रवेश करेगी, यही भय रहता है। भोग्य जड़वस्तु पीछे नष्ट हो जायगी, यही भोगीको भय रहता है, और

त्याज्य जड़ वा अचिन् पीछे किसी प्रकार आ उपास्थित होगा, यही त्यागीका भय रहता है। भयकी मात्रा दोनोंकी समान है। कहना नहीं होगा कि यह भय ही निर्विशेषवादीकी भित्ति है। महाजनोंने गाया है :—

जड़ प्रति घृणा करि, भजिते प्रेमेर हरि,

स्वरूप लजिते कर भय ।

स्वरूप करिते ध्यान, पाछे जड़ पाय स्थान

एइ भये भाव ब्रह्ममय ॥

जड़के प्रति निर्विशेषवादीकी विलक्षण घृणा रहती है। पीछे वही घृणित जड़त्व तत्त्ववस्तुमें स्थान प्राप्त करे, यही चिन्ता कर निर्विशेषवादीके उद्वेगकी सीमा नहीं। तत्त्ववस्तुको विलासवान् वास्तव-सविशेष “हरि” रूपसे निर्विशेषवादी किसी प्रकारभी स्वीकार नहीं कर सकेगा। हरिका भजन-रूप अभिषेय एवं हरिके साथ जीवका प्रभु-दासरूप सम्बन्ध निर्विशेषवादीके निकट आदर नहीं पाते। विलास, विचित्रता वा विशेष स्वीकार करनेसे माया आ उपस्थित होगी, यही निर्विशेषवादीका भय है। विलास ही स्वतन्त्रताका प्रकाश एवं स्वतन्त्रता ही चेतनता का लक्षण है। किन्तु निर्विशेषवादीकी चिद्वस्तु अपनी स्वाधीन वृत्ति परिचालित कर जड़

से अपनेको पृथक् नहीं रख सकती; बल्कि वह सर्वदा ही मायावश होजाने के योग्य है। भयका मूल द्वितीयाभिनिवेश एवं द्वितीयाभिनिवेशका मूल आविद्या वा माया है। निर्विशेषवादीका जो यह भय है इसके मूलमें भी है द्वितीयाभिनिवेश, किन्तु निर्विशेषवादी द्वितीय वस्तुका अस्तित्व स्वीकार करनेमें असमर्थ है। माया वा आविद्या वास्तवमें मिथ्या वा कल्पना है—यही निर्विशेषवादीकी युक्ति है। किन्तु उसी कल्पित मायाके आक्रमणकी कल्पना पर निर्विशेषवादी भयभीत रहता है। वस्तुतः निर्विशेषवादीका चिद्वस्तुके प्रति अभिनिवेश नहीं है, उसका सोलह आना अभिनिवेश है जड़ हटानेके प्रति (जड़ निरसनके प्रति)। भागीका अभिनिवेश भाग्य जड़द्रव्यमें है और त्यागीका अभिनिवेश त्याग्य जड़द्रव्यमें है। निर्विशेषवादी तत्त्ववस्तुको अचिन् विलक्षण चिन्पदार्थ और अपनेको ब्रह्म कहकर केवल ब्रह्मवाद स्थापन करके मायाको मिथ्या वा कल्पना कहकर विलकुल अस्वीकार करनेको जितनी ही चेष्टा क्यों न करे, वास्तवमें उसकी दृष्टि जड़के सिवा और कुछ नहीं देखती, उसकी चिन्ताभी जड़को अतिक्रम नहीं कर सकती। इसीलिये चिद्विलासके जो विलासी हैं उनलोगोंके निकट निर्विशेषवादीका चिन्मात्रवाद मायावादमात्र है। मायावादमें विशुद्ध मायाके सिवाय और कुछ नहीं है।

माया वा जड़के प्रति बहुत गाढ़ अभिनिवेशके कारण ही इस भयकी उत्पत्ति होती है। तत्त्व वस्तुको अतद्वस्तु मात्रा दूषित कर सकती है, अप्राकृत वस्तु में जड़का अच्छा बुरा विचार स्थान पा सकता है, वह भय ही मायावाद का स्वरूप लक्षण है। शङ्करानुगत कहकर परिचय प्रदान करनेवाले और

तत्त्ववस्तुका चिद्विलास, चिद्विग्रह अस्वीकार करनेवाले निर्विशेषवादीही केवल मायावादी हैं ऐसा नहीं है। मायावाद सर्वत्रही स्पष्ट रूपसे प्रकाशित है वा होगा, ऐसी कोई बात नहीं। सेव्य भगवान् और सेवक भगवान् अर्थात् विषय और आश्रयकी नित्य वास्तवता, अतीन्द्रियत्व, अप्राकृतत्व मुख्यसे स्वीकार करने पर भी भीतर प्रबल भावमें मायावादका आवाहन होता है। जहां अधोक्षज भगवान् और भागवतकी निरङ्कुश स्वतन्त्रताका नाश करनेकी इच्छा जिस किसी रूपमें उपस्थित हो, अधोक्षजके प्रति जहां मत्सरता वर्तमान हो, वहां मुख्यसे भलेही जो कुछ भी कह दिया जाय पर भीतरमें अधोक्षज-विलास विरोधी मायावाद विषय ही पूर्ण भरा रहता है। श्रीगुरुमुखानिःसृत श्रौतवाणीमें अन्यमनस्कता आनेसे अनर्थयुक्त जीव या तो भागी हो जायगा वा त्यागी हो जायगा और साथ ही साथ उसके पास भय आ उपस्थित होगा। जड़ाभिनिविष्ट वद्वजीव अपनेको जड़ पदार्थ ही समझता है। स्व-स्वरूपज्ञान नहीं रहनेसे हरि, गुरु-वैष्णवका स्वरूप दर्शन भी उसको नहीं होता है। हरि-गुरुवैष्णवको मुख्यसे अधोक्षज स्वीकार करके भी मत्सर प्रच्छन्न मायावादी उनके कृपालोकसे ही उनलोगोंका स्वरूप दर्शन करनेका यत्न न कर एक कल्पना-मात्र पोषण करता है। किन्तु अधोक्षज तत्त्व, वद्वजीवकी कल्पनाके अनुसार प्रकाशित नहीं होते। निर्विशेषवादीकी पङ्क्तुधारणाके मस्तकपर पदाघातकर उसकी स्वेच्छातन्त्रता वे प्रकाश करते हैं। यह उनकी अपार करुणा होनेपर भी भीतिग्रस्त निर्विशेषवादीकी आंख अधोक्षज विलासको जड़विलास ही देखती है। जड़के प्रति उसकी विषम धृणा है; इसीलिये अधोक्षज विलासको भी वह जड़ज्ञानसे

हेय समझकर परित्याग करता है। जड़ हेय है, किन्तु स्वरूप तो हेय नहीं है। जड़का निरसन (खण्डन) करनेमें स्वरूप का परित्याग नहीं करना होगा, यह भीतिग्रस्तोंके विचारमें स्थान नहीं पाता। अधोक्षज-वस्तुका अधोक्षजत्व मायावादी समझही नहीं सकता। किन्तु प्रच्छन्न मायावादी तत्त्ववस्तु अनीन्द्रिय, अधोक्षज है—यह स्वीकार करता है। स्वीकार करके भी उसकी चारों ओर नियमका घेरा करनेके लिये उद्यत होता है। उनकी धारणा है—अधोक्षजको बद्धजीवकी अन्ध धारणाका आसामी होना ही होगा, स्वतन्त्रताहीन, स्वतःकर्तृत्वहीन, मनोधर्मकी पुतली होनी ही होगी। जबतक बद्धजीव अपनी मायिक धारणा से अनुकूल उसको देख सकेगा तभीतक वे चिद्वस्तु नहीं और जब उसे स्वतन्त्रता आवेगी उसी समय जड़ वस्तु हो जायेंगी; भीतिग्रस्तका (भयमान) ही विचार है। बद्धजीव अधोक्षजके सम्बन्धमें कल्पना वा धारणा करता है, वे यदि वास्तविक, तब तो वे निर्विशेषही हो पड़ते, प्राकृत हो जाते किन्तु यथार्थमें वे वैसा नहीं हैं। जबतक तत्त्व धारणा प्रबल रहेंगी, तबतक यह तत्व उपलब्ध नहीं होगा। अधोक्षजके अपने स्वरूप प्रकाश करनेपर ही मायावाद कलुषित जीव उसे नहीं देख सकेगा। अविद्यावतात्म होनेका विचार अर्थात् श्रोतपथमें गुरुगुरुके साथ सम्यक् युक्त होनेका विचार पारलम्बिक अपनी अन्धधारणा वा तर्कपथका अवलम्बन करनेसे द्विन्याभिनिवेश प्रबल होगा। उस समय चित्ते जागी होकर जड़में स्वरूप बुद्धिकर सर्वदा भयभीत रहना होगा, नहीं तो त्यागीको निर्विशेषवादी और स्वरूपविलासको जड़ समझकर उसका स्वीकार करनेमें भयभीत होना होगा।

इस भयके साथ साथ संशय आता है। संशय नास्तिकता का ही प्रच्छन्न रूप है। संशयात्मा अविश्वासी है। शास्त्र, साधु, गुरु—सभीके प्रति उसका अविश्वास है। शरणागत विश्वासी है; किन्तु संशयात्मा विश्वासी नहीं है। संशयात्मा दाम्भिक है। तब यह दाम्भिकता स्पष्ट नहीं है, प्रच्छन्न है। क्योंकि दाम्भिक हरि-गुरु-वैष्णवको स्पष्टभावसे उपेक्षा करता है; उनलोगोंके वाक्योंकी स्पष्टभावसे अवहेला करता है। संशयात्मा बाहरसे आनुगत्यका छल करता है; किन्तु वास्तवमें वह अनुगत नहीं है। उसकी सोलह आना बुद्धि मापनेकी है। हरि-गुरु-वैष्णवका अधोक्षजत्व मुखमें स्वीकार करके भी जो हृदयमें उसको अस्वीकार करते हैं वे ही संशययुक्त हैं। नित्य आनुगत्यका छली मायावादी ही संशयात्मा है। मायावादी भयभीत और नास्तिक—दम्भ-परायण है। संशयात्मा प्रच्छन्न नास्तिक और प्रच्छन्न दाम्भिक है; इसीलिये वह मायावादी और नास्तिकसे भी अधिक निन्दनीय है। संशयात्माका लक्षण यही है कि उसका जितना संशय है सभी साधुगुरु और उनकी वाणीके प्रति है। संशयात्माका अपने प्रति संशय नहीं है, अपने प्रति उसका अखण्ड विश्वास है। अपनेको वह बद्धजीव समझता है। बद्धजीवकी धारणा प्रकृत है, दर्शन असम्पूर्ण है, बद्धजीवका विचार भ्रममय है—यह सभी स्वीकार करते हैं; किन्तु स्वीकार करके भी अपने प्रति उनका अन्धविश्वास है। हमलोगोंके हृदयमें शत शत अनर्थ, अन्याभिलाष और कपटता, भरी ही है, हमलोगोंकी समझसे हममें हेयता, असम्पूर्णता, भ्रम रहनेपर भी हम ठीक हैं, हममें कोई गोलमाल नहीं है। सभी दोष, सभी अपराध

गुरुवैष्णव ही करते हैं—इस विचारसे गुरुवैष्णवके प्रति विचार दण्ड प्रयोगमें संशयात्मा सर्वदा उद्यत है।

संशय और जिज्ञासा एक वस्तु नहीं है। सम्पूर्ण स्वरूपज्ञानमें प्रतिष्ठित न होने तक जिज्ञासा रहती है। साधक मात्र ही जिज्ञासु हैं। किन्तु संशयात्मा और जिज्ञासुमें भेद यही है कि जिज्ञासु शरणागत हैं, वे अविश्वासी नहीं हैं। हरि, गुरु और वैष्णवका सब कुछ अच्छा है; उनलोगोंमें कुछ दोष नहीं है। उनलोगोंके चरित्रमें वर्तमान जो विरोध दिखलाई पड़ता है वह वास्तवमें उनलोगोंके चरित्रमें नहीं है। हमलोगोंके विचारमें जड़त्व है अतः हम विरोध देखते हैं। वे जिस भूमिकामें अवस्थित हैं उसी भूमिकामें पहुँचनेसे यह विरोध दर्शन नहीं होगा—इसी विचारमें दृढ़ निश्चयता रखकर जिज्ञासु reconcile करनेमें ही यत्न करते हैं, संशयाकुलक समान गुरुवैष्णवका संस्कार करना नहीं चाहते। गुरुवैष्णवकी भूमिकामें उपस्थित होकर चिन्मय चक्षुके द्वारा गुरुवैष्णवका पूर्ण चिदानन्द विग्रह दर्शन करूँगा—यही जिज्ञासुका विचार है। और स्वयं जड़में आवद्ध रहकर गुरुवैष्णवका भी जड़में उतार लाऊँगा, अपनेको जड़पिण्ड जानूँगा, गुरु वैष्णवका भी जड़पिण्डके रूपमें ही देखूँगा—ऐसा संशयात्माका विचार है। वर्तमान अवस्थामें देखनेपर संशयात्मा और जिज्ञासु एक समान देख पड़ते हैं किन्तु वास्तवमें बात वैसी नहीं है। उनलोगोंकी चित्तवृत्ति सम्पूर्ण विभिन्न है। एकही आकाशमें अवस्थित होकर भी अतककी दृष्टि ऊपरकी ओर रहती है; किन्तु शकुनिकी दृष्टि नीचेकी ओर रहती है; गलित मांसके प्रति। मांसदृक् संशयात्मा जितना भी उच्च विषयका विचार करे,

उसकी दृष्टि जड़के प्रति अवश्य निवद्धही रहेगी।

जिज्ञासुका standard ठीक है। वे जानने हैं कि भक्ति निरपेक्षा है। भक्तिके विचारसे कभी भी अर्भाक्ति प्रमाणित नहीं हो सकती। उदा मान-यन्त्रका ठीक रखकर वे जो कुछ विरोध देखते हैं उसके सम्बन्धमें मामझम्य करनेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु संशयात्माको मानदण्ड नहीं है, आर रहनेपर भी शास्त्र और साधुवाक्य उसके मानदण्ड नहीं हैं। उसकी प्रच्छन्न दार्मिकता वा मापनेका युद्ध ही उसका मानदण्ड है। माप लूँगा—यही संशयात्माका मूल मन्त्र है।

भय वा संशय आत्माकी नहीं, बल्कि विकृत जड़ मनकी वृत्ति है। किन्तु प्रकृत जिज्ञासुमें कपटता नहीं है। उसमें उन्मुखता, अन्वय अनुशीलन है। भय और संशय कपटता मात्र है।

संशयात्मा भी बहुत बार जिज्ञासुका भान करता है। संशयात्मा कहता है, मैं जब बद्ध जीव हूँ, बद्ध धारणा करना ही मेरा स्वभाव है, इसके अतिरिक्त कुछ कहनेपर जब मैं नहीं समझता तो मुझे मेरे उपयुक्तही उपदेश देना चाहिये। वास्तवमें वह सरल जिज्ञासा नहीं है, कपटतामात्र है। स्वरूपमें किसीकी बद्धता नहीं है; बद्ध धारणा पोषण करना भी स्वरूपका स्वभाव नहीं है। जो घटनाक्रमसे आगया है, उसको दूर करना ही आवश्यक है। बद्धता रखकर मुक्तके विचारमें प्रतिष्ठित होने की इच्छामें आन्तरिकता नहीं है। स्वरूपके स्वभावमें सन्देह, संशय वा अज्ञान—कुछ नहीं है। फिर स्वरूपके ऊपर जो अस्वच्छ आवरण आगया है वह जिससे दूर हो वह कौशल वे ही जानते हैं जो स्वयं स्वरूपमें प्रतिष्ठित हैं। मैं जो कल्पना करता हूँ, वह उपाय नहीं है। जिसमें मैं अपने स्व-स्वरूपमें

प्रतिष्ठित हो सकें, इसीलिये गुरुदेवका पतित-पावन-लीला जगतमें नित्य प्रकट है। गुरुदेवकी उसी लीलाका तात्पर्य हृदयङ्गम करनेकी अकपट आकांक्षा लेकर प्राणिपति और सेवाके साथ परिग्रह आयेगा। स्वरूपमें प्रतिष्ठित होनेके लिये ही जिज्ञासा है। मैं बद्ध हूँ, यह धारणा हृदय रखकर बद्धताके उपयुक्त स्वरूपकी कथा कही जाय, तो वह कथा निरर्थक होगी। बद्धताके उपयोगी अर्थानि विमुख मन जिसको स्मर कर समझकर ग्रहण करेगा, उस प्रकारकी इन्द्रियतृप्तिकारिणी कथा स्वरूपकी कथा नहीं है। बद्धताके उपयुक्त कथाके द्वारा बद्धता वृद्धि पावेगी। बद्धता कुछ हमलोगों का स्वरूप नहीं। स्वरूपकी कथा अविमिश्ररूपसे कीर्तित होनेपर भी उसे उपलब्ध करनेकी सम्पूर्ण योग्यता हमलोगोंकी है अतः जड़ जगत्में बेकुण्ठ वस्तुका अवतार है; नहीं तो वह सम्पूर्ण निरर्थक होता। हमलोग यदि निष्कपट

और विश्वासी हों, तो स्वरूपकी वार्ता हमलोगोंके निकट दुर्बोध कभी भी नहीं होगी, बल्कि उसीका सबसे अधिक सहजरूपसे प्रतिभान होगा। गुरुपादपद्मसे सहज सरल पारमार्थिक ब्राह्मणता प्राप्त करके स्वरूप जिज्ञासा वा ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी बना जाता है। गुरुदेवको उस अधिकार दानमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु गुरुपादपद्मसे स्वरूपका परिचय प्राप्त करनेका पूर्ण अवकाश पानेके बाद भी यदि “यदि मैं बद्ध हूँ” यह ज्ञान प्रचल रहा एवं गुरुदेव द्वारा कीर्तित वाणी ब्रह्मकी विजातीय बोध हुई, तो समझना होगा, गुरुदेवके कृपा-ग्रहणसे वे इच्छा पूर्वक पराङ्मुख हुए हैं। वे अविश्वासी हैं, कपटी हैं। उनकी जिज्ञासा भी सरलताका भानमात्र है, क्योंकि वास्तवमें वे जानना नहीं चाहते।

### सनातन धर्म

जड़ जगत् परिवर्तनशील है। आज जो नवजात शिशु है कल वही प्रफुल्लवदन बालक होता है, पुनः वही वीर्यवान् युवक, धीरे धीरे प्रशान्तमूर्ति प्रौढ़ और अन्त में सफेद केशवाला और दन्तहीन वृद्ध हो जाता है। स्निग्ध प्रभात किरण देखते देखते प्रखरसे भी प्रखर होता और पुनः अन्धकारमें विलीन हो जाता है। आज जहाँ अत्युच्च पर्वतश्रेणी विराजमान है, कल वहीं अथाह समुद्र अवागम्यत देखा जाता है। सागर सूखता है, मरुभूमि जलसे प्लावित होती है। आज जो लोगोस परिपूर्ण और चहकती हुई राजधानी है कल वही श्मशानमें परिणत हो जाती है। इतिहास इसका साक्षी है। यह जगत् हेयता और

अनुपादेयता (घृण्य) से परिपूर्ण है। प्राणसे भी प्रिय पुत्र अपने हाथसे पिताको विष देकर राज्य प्राप्त करता है, प्रियतमा पत्नी उपपत्तिकी सहायतासे अपने स्वामीके हृदयमें अस्त्रघात करती है और सहोदर भ्राता अपनेही भ्राताके सर्वनाश-साधनमें तत्पर होता है। निर्दोष दण्ड पाता और खूनी बेकसूर साबित हो जाता है। यह हम प्रांत क्षणमें देख रहे हैं। इस रङ्गमञ्चपर नित्य और निर्मल आनन्दका पूर्ण अभाव है। बहुत अच्छा हूँ, कोई अभाव नहीं है,—सुन्दर रूप, अनेक सद्गुण, अद्भुत पाण्डित्य, आश्चर्यमयी वृद्धि, अतुल ऐश्वर्य, सुवृहत् अट्टालिका, पति-प्राणा पत्नी, सोने और चाँदके समान पुत्र और कन्या, सब कुछ। अकस्मात्

कहींसे एक भवदावाग्नि जल उठी—एक मुहूर्त्तमें भस्मीभूत हो गया। पण्डित मूर्ख हो जाता, मूर्ख पण्डित हो जाता है। ज्ञानी अज्ञानी, अज्ञानी ज्ञानी हो जाता। धनी दरिद्र और दरिद्र धनी हो जाता। उसी प्रकार बलवान् दुर्बल और दुर्बल बलवान् हो जाता है। इस प्रहेलिकाके मध्यमें नित्य सत्य वस्तुका संवाद क्या प्राप्त किया जा सकता है ?

रोम ग्रीस और चीनके मनीषिपुण्डों एवं भारतीय विद्वानसम्प्रदायके जड़वस्तुसमूहकी धारणाओंके इतिहासकी विशेषरूपसे आलोचना करनेपर ज्ञान हो जाता है कि उन्होंने जिसे सत्य समझकर ग्रहण किया था, वही धारणा कालान्तरमें शिक्षाके प्रभावसे परिवर्तित होती जाती है। काम और क्रोधसे अभिभूत (ग्रस्ति) व्यक्तिकी धारणा मायिक होनेसे दृसगही आकार धारण करलेनी है। हम अपने जीवनकी आलोचना करकेभी देखते हैं कि कभी कभी हमारी धारणायें भी अद्भुतरूपसे परिवर्तित होती रहती हैं। प्रति वर्ष, प्रति मास, प्रति दिन, प्रति घण्टे, प्रति मिनट, प्रति मुहूर्त्त हम यह परिवर्तन देखा करते हैं। तो क्या नित्य, सत्य, सत्कृष्ट और निर्मल आनन्द प्राप्त करनेकी आशा नहीं है ?

सत्यानुसन्धानकी इच्छासे सनातन धर्मपर विचार करनेसे उक्त प्रश्नका यथार्थ उत्तर मिल जाता है। सनातन धर्म क्या है ? सनातन धर्म किसका धर्म है ? सनातन धर्मकी आवश्यकता क्या है ? एवं किस प्रकार उसका पालन किया जा सकता है ?—इन सब प्रश्नोंपर विचार करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। अनित्य और नश्वर वस्तुओं को छोड़कर शेष सभी सनातन अर्थात् नित्य वस्तुओंमें सनातन धर्म नित्य विराजमान रहता है।

नित्यानन्दका उद्गम स्थान यहीं है।

गीताका कहना है कि क्षिति, जल, पावक (अग्नि), आकाश, हवा और मन बुद्धि अहङ्कार भगवानकी अपरा प्रकृतिसे बने हैं अर्थात् प्राकृत हैं। अतः पञ्चभूतात्मक देह और मन प्राकृत हैं। प्राकृत वस्तुएं परिवर्तनशील हैं, उनलोगोंका धर्म भी परिवर्तनशील है इसलिये देह और मनका धर्म सनातन नहीं है। भगवानकी परा प्रकृत जीव, अपरा प्रकृतिसे नहीं उत्पन्न हुआ है। भगवान् प्रकृतिके अन्तर्गत वस्तु नहीं हैं—वे अप्राकृत हैं। जीव कहनेसे देह और मनका नहीं बोध होता बल्कि उससे चिन्तक आत्माका निर्देश होता है।

अमृष्यानाम ते लोका अन्वेन तममावृताः।

तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महन्ता जना ॥

जो आत्म हत्या करने वाले हैं, वे आसुरी वृत्ति अवलम्बन कर (अज्ञानसे दूरे हुए) नाना प्रकारका कुतर्क करते हैं। चिन्तमें नाना प्रकारकी विकृति देखते हैं। आत्माका सन्धान पानेसे ही विकार हट जाता है। आत्मा नित्य है, उसका धर्म भी नित्य अर्थात् सनातन है। आत्माकी नित्यवृत्ति शुद्धभक्ति ही सुनिर्मल सनातन धर्म है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके ऊपर पञ्चम पुरुषार्थ भगवन् प्रेम ही प्रयोजन वा फल है। जीव स्वरूपतः भगवदास है। आत्म वृत्ति भगवदास्यका स्वाद पातेही जीव कहने लगता है—

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामापभोगे

यदयद्भव्यं भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपं।

एतन् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि

त्वत् पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥

उस समय इस जगत्की कोई असुविधा उसके हृदयमें स्थान नहीं पाती। अप्राकृत जीव

बन्धनावस्थामें स्थूल और सूक्ष्म दो प्राकृतिक उपाधियोंमें आवद्ध रहनेके कारण अप्राकृत तत्वकी उपलब्धि नहीं कर सकता है। जड़देहके गुणोंकी आलोचना करते करते मनके सभी भाव उदय होते हैं, इस कारणसे मनुष्योंकी कल्पना-विभावना रूप चिन्ताएँ और धारणाएँ प्रकृति-मूलक हैं इस कारण अप्राकृत नहीं हो सकतीं। सनातन धर्म अप्राकृत तत्व है। यह सत्य वस्तु अवरोह-पथसे (श्रोत पथसे-आस्ताय पथसे) श्रीभगवानसे ब्रह्माके हृदयमें प्रकट हुई थी। ब्रह्मासे नारद, नारदसे व्यास एवं व्याससे आस्ताय—परम्परामें वैयासिक सम्प्रदायने उस वस्तुको प्राप्त किया है। महाजनोंका क्या ही सुन्दर गान है :—

“भ्रमिंते भ्रमिंते याद साधुसङ्ग हय ।

पुनरपि गुप्त नित्य-धर्मैर उदय ॥”

सूर्य जिस प्रकार मेघ द्वारा ढक जाता है, सनातन धर्म भी उसी प्रकार काल-प्रभावसे आवृत रहता है पर वह नित्य वर्तमान रहता है। सनातन धर्मके छिप जानेपर भगवान् स्वयं अवतीर्ण होते हैं, या कभी पार्षद भक्तोंको भक्तावताररूपसे प्रेरण करते हैं। नित्य-मुक्त भगवद्भक्त कभी भी माया-द्वारा अभिभूत (आकृष्ट) नहीं होते। वे बद्धजीवके सदृश स्वतन्त्रताका असद्व्यवहार न कर सर्वदा सनातन धर्ममें अवस्थित रहते हैं। प्राकृत धारणा द्वारा युक्त चित्त अप्राकृत वस्तु धारण करनेके योग्य नहीं है। काय मन और वाक्य द्वारा भगवान् और उनके भक्तोंका दासत्व करनेके पहले सुनिर्मल सनातन धर्मका आस्वादन नहीं हो सकता। प्राकृत और अप्राकृत, नित्य और अनित्य, आत्म और अनात्म, भक्ति और भुक्ति—इन सबोंके पार्थक्यका ज्ञान सद्गुरु—चरणश्रय कर विशेष

रूपसे प्राप्त किया जाता है। जो ऐसा न कर परमार्थके साथ शारीरिक, मानसिक, लौकिक, व्यावहारिक, नैतिक और सामाजिक भावोंको सम्मिश्रण करते और अपनी एक अलग सृष्टि निर्माण करते हैं उनकी वह सृष्टि सनातन नहीं हो सकती। देह और मनकी मंगल कामना करने वाले प्रचारक अनात्म प्रतीतिमें अवस्थित होकर परमार्थ-स्मृतिके साथ इतर स्मृतिके समन्वय करनेका प्रयास करते हैं। कर्मविद्ध और ज्ञानविद्ध भक्तिका आदर करते हैं। शुद्ध भक्त इसको महत्त्व नहीं देते। किन्तु सीधे सादे लोग इन बातों से विषम समस्यामें पड़ जाते हैं। बद्धावस्था के कारण भागमें लीन होकर मनके अनुकूलको ही सनातन धर्म समझकर लोग भ्रममें अन्वेषण हो रहे हैं—उन्हें शुक्तिमें रजतका (चांदी) भ्रम हो रहा है। दुग्धमें घी के मौजूद रहने पर भी प्रज्वलित अग्निमें वही दूध डालनेसे वह अग्नि बुझ जाती है, किन्तु उसी दूधसे घी निकालकर उस बुझी जाती हुई अग्निमें डालनेसे वह प्रज्वलित हो उठती है। वस्तुतः शुद्धभक्ति वा पराभक्ति ही आत्मधर्मविकाशके अनुकूल है, विद्धभक्ति उसके प्रतिकूल है। शुद्धभक्ति वा पराभक्तिको ही सनातन धर्म, नित्यधर्म, आत्मधर्म या जैवधर्म कहते हैं। भगवान् नित्य हैं, भक्त नित्य हैं और भक्ति नित्य है। ये तीनों वस्तुएँ आनन्दमय हैं। वहां अनित्यता, हेयता वा अनुपादेयताका स्थान नहीं है।

हमलोग जिस समय भोगकी अनित्यता मायावादी की ईशविमुखता एवं देह और मनकी परिवर्तनशीलताकी उपलब्धि कर श्रद्धान्वितचित्तसे सद्धर्माश्रयके लिये व्याकुल होते हैं उस समय यह समझनेका अवसर मिलता है कि हमलोग चिद्वस्तु

है एवं वृन्दावन ही हमलोगोंका नित्यवास है। माया द्वारा सृष्ट इस संसार वृत्तके कोटरमें पत्तीके समान कुछ दिनके लिये वास कर रहे हैं। जड़बुद्धिसे मोक्षाके रूपमें नश्वर जड़का भोग अङ्गीकार करनेके कारण और अनात्म देह और मनमें आत्म-बस्तुका भ्रम उत्पन्न हो जानेके कारण हमलोगोंका सर्वनाश हुआ है।

जो नित्यकाल अवस्थित है, वही 'सत्' है। 'असत्' परिवर्तन और भ्रंशशील है। भद्रगुरुमें दीक्षा, सत्सङ्ग और सच्छास्त्र अध्ययन करते करते अन्तर्ध्वज बट जानेपर समस्त असत् धारणायें चली जाती हैं उसी समय नित्यतत्त्वका रहस्य प्रकाशित होता है। उसी समय "ददामि बुद्धियां न येन ग्राह्ययान्ति ते" इस श्लोकका तात्पर्य इदं ज्ञम होता है। मेघके हटते ही सौभाग्यसूर्यकी राशि (किरण) दिखलाई पड़ती है, चतुर्न्मीलित होना है, और वधिरता नष्ट होती है। उसी समय हमलोग श्रीगुरुदेवका "त्रैलोक्येन्द्र मुशीतल" पदकमल दर्शन कर असमर्थ प्राप्त कर सकते हैं। अपना कर्पण्य और भगवत् प्रीतिहीनता का ज्ञान होते ही आमु-ओंसे छ्दाती प्लावित हो जाती है।

• अज्ञान-निमग्नान्धस्य जानाञ्जनशलाकया ।

चतुर्न्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

कहते कहते उनके चरणकमलोंमें लोटने लगते हैं। उस अप्रकृतचरणश्रयसे हृत्कर्णरमायन हरिकथा सुनते सुनते चतुर्कर्णका विवाद, और मनका समस्त सन्देह मिट जाता है मानव-जीवन सार्थक होजाता है। सच्छास्त्र और असच्छास्त्र, सद्गुरु और असद्गुरु, सत्सङ्ग और असत्सङ्ग, असल और नकल—सभी धराधाममें (इस संसारमें) वर्तमान हैं। तनिक भी असतर्क होनेसे असत् सन

नीत होता है, मन ही आत्मा मालूम पड़ता है, देह देही मालूम पड़ता है, नश्वर जगत्को नित्यवासोप-योगी स्थान समझकर महाभ्रम राज्यमें जीव आवद्ध होजाता है और दुर्लभ मानव जन्म वृथाही नष्ट हो जाता है। उर्मालिये स्वभावतः कसगामय महाजन-गण बलुजीवकी बलुदशा हटानेके लिये—उनलोगोंकी मोहानन्दा तोड़ कर आत्मधर्मकी कथा सुनानेके लिये "प्रसार" कार्यकी व्यवस्था कर गये हैं—

"प्रति घरे घरे गिया करे गड़ भिजा ।

भज कृष्ण, बल कृष्ण, कर कृष्ण शिवा ॥

किन्तु हमलोग सांसारिक कर्मुन्मेषों से (अन-याग) परिचालित होकर प्रत्येक मुहूर्त्तमें अपने ७ सत्याभासको सत्य स्वीकार कर परस्पर कलह कर रहे हैं, शास्त्रों की कल्पित व्याख्याके विवादमें अप्रसर होकर अपनेसे निम्नतरस्थित जीवोंकी परमार्थ चेष्टाका पथ बन्द कर रहे हैं और दार्भिकताके आश्रयमें वृणित जीवन यापन कर करक पथके पथिक हो रहे हैं। भ्रम, प्रमाद, विगलित्वा और करुणापाटव हमलोगोंके चित्तमें प्रबल भड़ उपस्थित कर रहे हैं, हम मायाके नाण्डव नृत्यमें लणलण मुरभ हो रहे हैं। यथेच्छाचारका आश्रयकर मनोविमानमें चढ़कर सुखकी कल्पनामें मायाके पीछे कितना दौड़ रहे हैं ! बार बार हार रहे हैं—हताश हो रहे हैं। विनाप ज्वालासे जलकर राख हो रहे हैं किन्तु तौ भी आशासे विराम नहीं पाते—नित्य नये यत्नोंसे फिर कमर कम कर दौड़ते हैं। कभी धर्म, अर्थ कामका फल अनुसन्धान करनेके लिये कनक, कामिनी और प्रतिष्ठाकी शक्तिमें पटुता प्राप्त कर पुण्यवान होना ही धर्म समझते और कभी मुमुक्षु होने की पिपासामें अहंप्रहोपासक (अहंकार रूपी प्रहकी उपासना करनेवाला) मायावादी



होकर ईश्वरमुग्यकी पगकाप्रा प्राप्त करते हैं। निर्मलानन्दका आस्वादन प्राप्त करेंगे।

स्वतन्त्रताका अमदव्यवहार कर अज्ञ ज्ञानका दास वह देविये, माधुर्यैश्वर्यपति भगवान् श्रीनिवास होकर दुर्देशाकी चरम समामें पहुँच गये हैं—स्वरूप हमें सान्त्वना प्रदान कर रहे हैं। यह सुनिये, विश्रम होनेसे (स्वरूप भूल जानेसे) क्या ही भयानक कलियुगपावनावतार श्री श्रीगौरसुन्दर अपने पार्षद और कुत्सित अवस्थाके कीड़े हो पड़े हैं। हाय ! भक्तोंके साथ प्रकट होकर “श्रीमद्भागवतसंगही हाय ! हमारे ऐसे चार दुर्दिनमें कौन मायाके एकमात्र अवलम्बनीय है” इसीकी शिक्षा दे रहे हैं। इसे एक बार सुनें जीवन धन्य हो जायगा। निकट ले जायगा। कब हम श्रीहरिको परम सत्य पहला ग्रन्थभागवत और दूसरा भक्तभागवतके समझ सकेंगे कब हम प्राकृत जगन् के अन्दर वैकुण्ठ आश्रयसे ही सत्य वस्तुकी उपलब्धि होगी एव शोक, भय, मृत्युके कवलसे निस्तार पाकर हमलोग अमृत प्राप्त कर सकेंगे।

यस्मिन् शास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न विद्यते ।  
न श्रोतव्यं न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥  
ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ।  
सन्त एवास्य ह्यिन्दन्ति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥

इसी सर्वाराध्य महासमन्वयवाद अद्वयज्ञानोपासनाके प्रवर्तक श्रीमायापुरचन्द्रकी और उनके भक्तोंकी अभयवाणी शिरपर धारणकर, आइये हमलोग सत्यवस्तुके अनुसन्धानमें अग्रसर हों,—भावग्राही जनार्दन सभी अमङ्गल हटाकर हमें अभीप्सित सिद्धि निश्चय प्रदान करेंगे।

## भजन

यशमती-नन्दन,  
गोकुल-रञ्जन-कान ।

गोपी-परान-धन,  
कालिय-दमन-विधान ॥

अमल हरिनाम अमिय विलासा ।

विपिन-पुरन्दर,  
बंशीवदन सुवासा ॥

ब्रजजन-पालन,  
असुर-कुल नाशन,  
नन्द-गोधन राखओयाला ।

गोविन्द माधव,  
सुन्दर नन्दगोपाल ॥

यामुनातटचर,  
रास-रसिक कृपामय ।

श्रीराधावल्लभ,  
भक्तिविनोद-आश्रय ॥

पतितपावनवर परदुःखदुःखी

## श्री श्रील आचार्यदेवकी त्रिदण्ड-सन्यासलीला

अकेले ही श्री श्रीगुरुगोङ्गका आदर्श अनुसरण और निर्विशेषवादी लोगोंके प्रति अहंतुकी कृपा  
श्री श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुके विरह-दिवस को ४५३ गौगान्द, आपाद कृष्ण  
पञ्चमी तिथिमें श्री ईश्वरपुरी और श्रीगौगमुन्दरके मिलनक्षेत्र  
गयाधाममें मन्यासलीला

### सन्यासनाम—श्री श्रीमद्भक्ति प्रसाद पुरोगोस्वामी

परदुःखदुःखी अतिमर्त्य आचार्यवर्गोंकी और भजनकी उन्नतिके लिये बाहरसे किसी प्रकारका महावदान्यलीलाके धारणा करनेमें जीव असमर्थ है। विज्ञापन न कर सर्वदा सब तरहसे बहुत यत्न करते हैं। प्रत्येक निष्कपट सेवक निःसंकोच भावसे इसे स्वीकार करेगा। किन्तु श्रील प्रभुपादके श्रीमुखसे हमलोगोंने सुना है कि श्रील प्रभुपादने जिनलोगोंका अधिक उपकार किया है उनमें ही श्रील प्रभुपादके चरणमें अपराधकर उपकारका बदला दिया है। इसके प्रसङ्गमें श्रील प्रभुपादके कथित पाण्डित विद्या-मागर महाशयका एक गल्प बहुतांको स्मरण रह सकता है। श्रील आचार्यदेवकी महावदान्य लीलामें भी हमलोग उम्मी लीलाकी पुनर्गवृत्ति देख पाते हैं। महाप्रभुने नवद्वीपवामा कर्मकाण्डियों और निन्दकोंका सबसे अधिक उपकार करना चाहा था परन्तु वे ही महाप्रभुके सबसे अधिक निन्दक हुए। किन्तु महाप्रभुने उसका बदला दिया था मन्यास आश्रम ग्रहण लीलाके द्वारा।

करील पिपलिवण्ड कफ निवारने ।  
उलटिया आगे कफ बाढिलो देहेते ॥  
आमा देखि कोथा पाइबेक बन्धनाश ।  
एकगुण बन्ध छिल-हैल कोटी-पाश ॥  
आमार मारिने यंत्र करिलेक मने ।  
तखनइ पडि गेल अशेष बन्धने ॥

पतितपावनवर श्रील आचार्यदेवका एक स्वतः सिद्ध स्वभाव यह है कि वे प्रत्येक गुरुसेवकके कल्याण

करिल पिपलिवण्ड कफ निवारने ।  
उलटिया आगे कफ बाढिलो देहेते ॥  
आमा देखि कोथा पाइबेक बन्धनाश ।  
एकगुण बन्ध छिल-हैल कोटी-पाश ॥  
आमार मारिने यंत्र करिलेक मने ।  
तखनइ पडि गेल अशेष बन्धने ॥

भाल, लोक नार्गिते करि लूँ अवतार ।

आपने करि ल सब जीवैर संहार ॥

देख कालि शिखामुत्र सब मुड़ाइया ।

भिक्षा करि वेड़ाइमु सन्यास करिया ॥

(चै० भा० म १६। १०१, १०६-१३२)

श्री श्रीगुरुगौरांगके इस आदर्शका अनुसरण

परदुःखदुःखी श्रील आचार्यदेवकी लीलामें पूर्णरूपसे

प्रकाशित हुआ है । श्रील आचार्यदेवने निन्दक

निर्विशेषवादी निपुण आध्यत्मिक लोगोंके आचरण-

का बदला अपने महावदान्यमयी सन्यासलीला द्वारा

दिया । श्रील आचार्यदेव नित्यमिष्ट कृष्णतत्त्वचिन्

हैं, वे श्री श्रीरूपरघुनाथके वाणीके प्रेष्ट मेवक हैं, वे



ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजक आचार्येवम्ये  
अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिप्रसादपुरी गोस्वामी महाराज ।

महाभागवतवर परमहंस हैं, उनकी सन्यासलीलाका अभिनय केवल श्री श्रीगुरुगौरङ्गके मनोऽभिश्रुत्यायो, उनलोगोंके पदाङ्गानुसरण सेवा है।

इस लीलाके द्वारा उन्होंने हमें काय मन और वाक्यसे दुःसङ्ग परित्यागमें अधिकतर बलवान् और सत्सङ्ग धारण (ग्रहण) में अधिकार शक्ति सञ्चार की है।

श्रील आचार्यदेवकी इस लीलाके विषयमें बहुत लोग अनभिज्ञ थे। गयासे पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी विद्यार्णव बी-ए महोदय कर्तृक 'गौड़ीय' सम्पादकके निकट प्रेरित एक पत्रमें आचार्यदेवकी इस गूढ़ लीलाकी कथा प्रथम प्रकाशित हुई। उस पत्रमें विद्यार्णव प्रभुने लिखा है—“श्रील आचार्यदेवने हमको अति निकट बुलाकर कहा मैं भगवानके irresistible force के द्वारा चालित होकर यहां आया हूँ। मेरी दूसरी ओर जानेकी इच्छा थी। मैं जब पार्वतीपुरमें था उस समय श्रीमन्महाप्रभुने मुझे गयामें सन्यास लेनेके लिये प्रबल प्रेरणा की। मुझे त्रिदण्डसन्यास ग्रहण करना होगा, यह मैं नहीं जानता था, मठके और कोई भी यह नहीं जानते। श्रीपादभक्तिसुधाकर प्रभु और श्रीपाद तीर्थ महाराज वा श्रीपाद सुन्दरानन्द प्रभु प्रभृति कोई भी नहीं जानते। तुम मुझे इस विषयमें सहायता करो। अगामी कल प्रातः श्री श्रीगदाधरका श्रीपादपद्म दर्शन और परिक्रमा करनेके बाद श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी प्रभुकी तिरोभाव तिथिमें मठमें श्रील प्रभुपादके निकट सन्यास ग्रहण करूँगा। इस बात को अति दैन्यके साथ मुझे बताकर दण्ड-बहिर्वास प्रभृति प्रस्तुत करनेके लिये आदेश कियो। उस समय उन्होंने और भी कहा—सभी लोग विषय लेकर भगड़ा-विवाद कर रहे हैं। एक भीपण बबरेडर

आया है। इसमें बहुत कम लोग बचेगे। शरणागत और निष्कञ्चन लोगोंको कोई भय नहीं। श्रीगुरुपाद पद्मने मुझे अनुकूल कृष्णभजनका स्वयं सुयोग प्रदान किया है। मैं कृष्णानुसन्धानमें बाहर हुआ हूँ। श्रील प्रभुपादके निकट जो कथा सुनी है उस कथाके साथ किसी अन्य उपदेशका बहुत मेल नहीं होगा। मुझे श्रीगुरुपादपद्मसे कोई च्युत नहीं कर सकता। मेरे अनुपस्थितिकालमें श्रील तीर्थमहाराजमेरा कार्य करेंगे।”

विद्यार्णव प्रभुने पत्रमें और भी लिखा है—श्रील आचार्यदेवका वैराग्य देखनेसे पापान भी विद्वर्ण होगा। हमलोगोंका किभी प्रकारका अनुनय विनय भी उन्होंने नहीं मुना। सन्यासके दिन प्रातःकाल मस्तक मुण्डन कराकर स्नान किया और मुझे साथ लेकर पैदल श्री श्रीविष्णुपादपद्मदर्शन करनेके लिये गये। अग्योरी श्रीयुक्त कृष्ण प्रकाश सिंहकी अति सुन्दर गाड़ी श्रील आचार्यदेवकी सेवाके लिये प्रस्तुत रहनेपर भी वे उसपर नहीं बैठे। प्रायः दो मील रास्ता पैदल चलकर फल्गु नदीका जल स्पर्श किया, विरजाके जलमें स्नानकर अधोक्षज विष्णुपादपद्म सेवा प्राप्त करनेका वैशिष्ट्य वर्णन करते करते श्रीविष्णुपादपद्मके मन्दिरमें उपस्थित हुए। वहाँ पुनः पुनः साष्टाङ्ग दण्डवत्प्रति और कुछ देरतक पूर्व महाजनोके विरचित स्तवसमूह उच्चारणकर मन्दिर-प्राङ्गणमें उपस्थित हुए। वहाँ श्रीमन्महाचार्यका एक चित्रपट विराजित है। उसी चित्रपटकी ओर दृष्टि निबद्धकर कहा—आज हम श्रीमन्महाचार्यके आनुगत्यमें यहांकी किय दि सम्पन्न करेंगे। श्रीमन्दिर प्राङ्गणमें बैठकर प्रायः आधे घण्टे तक श्रीमन्महाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य और श्रीमन्महाप्रभुके प्रचारित भागवत धर्मके सिद्धान्तका

वैशिष्ट्य समूह कीर्तन किया, श्रीमन्दिरके द्वारके खुलनेपर श्रील आचार्यदेवने दूर पगही दण्डायमान होकर कुछ देरतक भववस्तुनि की एवं कीर्तन करने हुए श्रीमन्दिरकी परिक्रमा करने लगे। परिक्रमा करनेके समय उन्होंने एक पड़े हुए शेषशायी श्रीविग्रह एवं उसके बाद दण्डायमान अवस्थामें ही एक और शेषशायी मूर्ति का दर्शनकर उनके चारों हथोंका अभ्यास हमें लिखनेके लिये कहा एवं मठमें आकर श्रीचैतन्यचरितामृत के वर्णनके साथ मिलकर देखा कि वे यथाक्रमसे अधोक्षज और त्रिविक्रम श्रीविग्रह हैं। इन दोनों विग्रहोंकी कथा आपको ('गौड़ीय' सम्पादकको) सूचित करनेके लिये आदेश किया।

श्रील आचार्यदेवकी मन्यामलीलाका सम्वाद जानकर स्थानीय बहु भक्त मठमें उपस्थित हुए। वैष्णवहोम सम्पादनके बाद श्रील आचार्यदेवने ठाकुरमन्दिरमें प्रवेश किया और श्रीश्रील प्रभुपादके निकट यथारीति मन्याम ग्रहण किया। श्रील आचार्यदेव अब श्रीमद् भक्तिप्रसाद पुरी इस मन्याम नामसे विभूषित हुए हैं।

इस प्रकार उन्होंने श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी

प्रभुकी तिरोभावतिथि को मन्याम लीला प्रकट की एवं उमी दिन गया मठमें बहु वैष्णव, भक्त, सज्जन, और विशिष्ट व्यक्तियोंकी एक सभामें उन्होंने सङ्कीर्तन करने हुए प्रायः डेढ़ घण्टेतक एक सागरगर्भित भाषण प्रदान किया। उसमें उन्होंने जो दैन्योक्तियां सुनाईं उनके सुननेमें पापाण भी विदीर्ण होजाता, किन्तु पापाणसे भी काठिन हमलोगोंका हृदय विदीर्ण नहीं हुआ। उन्होंने श्री श्रीमद् गोपालभट्ट गोस्वामीके दान और उनके साहाय्य, त्रिदण्डकी व्याख्या, अवन्ती नगरके भिक्षुककी सहिष्णुता और भजनमें दृढ़ता, जीवशिक्षाके लिये श्रीमन्महाप्रभुका गयामें श्रीगुरुपाद-पदा आश्रयग्रहणका लीलाभिनय एवं अधोक्षज विष्णुकी सेवा वैशिष्ट्यकी कथा कीर्तन की। मन्याम लीला प्रकट करनेके बाद श्रील आचार्यदेवने जी अतिमन्य वैराग्यका आचरण आरम्भ किया है, उसको अपने आंग्रसे नहीं देखनेमें समझाया नहीं जा सकता। उनकी यह जीवशिक्षामयी लीला हमलोगोंका दुर्वृद्धि-को दण्डित करे। जय ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिप्रसाद पुरी गोस्वामी प्रभुकी जय !!

## शिक्षाष्टक

अनुवादक—रामकीर्ति सिंह वकील, औरंगाबाद।

(१) चरम साधन क्या है ?

चेतोदर्पणमाज्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं  
श्रेयः कैरवचन्द्रिक वितरणं विशावधू जीवनम् ।  
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादं  
सर्व्वान्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

धनाक्षरी

चित्त दर्पण मल हारी हरि कीर्तन,  
भवदावानलके बुझाविवेको वारी है।

श्रेय कुलकैरवको मुखकारी चन्द्रिकामी,  
विद्यावरनारीके सुजीवन संचारी है ॥

आनन्द उदधि वृद्धकारी प्रतिपद यह,  
भक्तिरस भूवेको अमृत स्वाद कारी है ।  
अखिल प्राणिनके पगनको आधार यह,  
" जय जय जय जय जय जयकारी है ॥

(२) नामसाधन सुलभ क्यों है ?

नाम्नामकारि बहुधा निजमूर्च्छशक्ति-  
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणेन कालः।

एतीदृशी तव कृपा भगवनममापि  
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुगागः ॥२॥

सवैया

पावन नामनि में निज नाथ,  
प्रभो निज शक्ति सबैभर दीनी ।  
तहां नहि देश न काल न शौच,  
अशौचहु की कलु देक न कीनी ॥  
भगवान तुम्हारी कृपा इतनी,  
अरु में हतभाग महामति दीनी ।  
पाइ सुअौसर ऐसो प्रभु,  
तवहुं तिन में अनुगाग न कीनी ॥

(३) नाममाधन की प्रणाली क्या है ?  
वृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुता ।  
अमर्तिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥३॥

दोहा

जमाशील नरुत अधिक, वृणहुं ते लघु होय ।  
आप अमानी मानप्रद, हरि कीर्तन कर मोय ॥

(४) साधक की कामना क्या है ?

न धनं न जनं न सुन्दरीं  
कवितां वा जगदीश कामये ।  
सम जन्मनि जन्मनीश्वरे  
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥४॥

चौपाई

नहिं धन जन न रुचिर कविताई,  
चाहौ मैं जगदीश दुहाई ।  
जनम जनम तव पद रति होऊ,  
अविरल भक्ति-प्रकारण मोऊ ॥

( ५ )

अयि नन्दतनुज विह्वरं  
पतितं मां विपमं भवाम्बुधौ ।  
कृपया तव पादपंकज-  
स्थितधृतीमदृशं विचिन्तय ॥  
चौपाई  
नन्दमुवन में किकर नोग,  
परेउ विकट स्वनिधि मंद धोरा ।  
निज पद पंकज धरि समाना,  
करि राखहु मोहि कृपाविधाना ॥

( ६ )

नयनं गलदश्रुधाराया  
वदनं गदगदरुद्वया गिरा ।  
पुनर्कैर्निचितं वपुः कदा  
तव नामग्रहणं भविष्यति ॥  
चौपाई  
प्रभु कहें कब गेहैं दिन मोई,  
जब तव नाम लेत अस होई ।  
नयनन बहिहिं अश्रु जल धारा,  
गदगद कंठन गिरा प्रचारा ॥  
हृदय मोद भरि पुलकित गाता,  
राहहौ लेत नाम दिन गाता ॥

( ७ )

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।  
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविग्रहेण मे ॥  
दोहा  
युग सम बातत निमिष मोहि,  
निशिदिन वरपत नैन,  
शून्य जगत गोविन्द सुनु,  
तुम बिनु नहीं क्षण बैन ॥

( ८ )

आश्लिष्य वा पादरतां पिनाटु मा-  
मदर्शनान्मर्मगतं करोतु वा ।  
यथा तथा वा विदधानु लम्पटो  
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥  
यत्नाक्षरी

अंक भरि मेले चाहे लात मारि ठेले मोहि,  
देश ने निकारै मोहि जानि अनि खुसरो ।

चाहे तरसावे दग्धावे न मरूप निज,  
चाहे विनतो करत मारै मार मुमरो ॥  
भावे नेहि जाहि विधि राखै मोहि ताहि विधि,  
लम्पट को नेह विचलित बात फुमरो ।  
नौहें मुनु सांची मखि सांवरी मुर्गति रांची,  
मेरो प्राणनाथ सोई कृष्ण नहीं दूसरो ॥

## शिक्षाष्टक

( ॐ विष्णुवाद श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुर )

परमतत्त्व एक और आद्वितीय है । यह तत्त्व सर्वदा  
सर्व अवस्थामें स्वाभाविक अचिन्त्य शक्तिमें सम्पन्न  
है ।

इसी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा यह परमतत्त्वका  
एकही समय सर्विशेष और निर्विशेष दो भिन्न भावोंमें  
अनुभव होता है ।

सर्विशेष और निर्विशेष दोनों भावों में, एकही  
समयमें, सिद्ध होनेपरमा। इन दोनोंमें सर्विशेष प्रती-  
ति ही बलवती है । निर्विशेष प्रतीति अनुभूत नहीं  
होती यह केवल मान ली जाती है ।

यह सर्विशेष प्रतीतिमय परमतत्त्व अचिन्त्य शक्ति-  
के बलमें स्वयं सर्वदा चार रूपोंमें अर्थात् स्वरूप,  
तद्रूपवैभव, जीव और प्रधान रूपोंमें अवस्थित है ।

जैसे मृग्य मण्डलका तेज, उसका मण्डल, मण्ड-  
लके बाहरकी तेजर्शमि और तेजकी छाया जिस प्रकार  
एकही मृग्यतत्त्वमें सदा चार रूपोंमें अवस्थित है  
उसी प्रकार परमतत्त्वके चार प्रकारके रूप नित्य  
सिद्ध हैं ।

शक्तिमान तत्त्व स्वरूपतः एक होनेपर भी चार  
प्रकारका है । अतएव भेद और अभेद दोनों एकही

समय नित्य और सत्यात्मक हैं ।

परमतत्त्वकी अचिन्त्य शक्ति विचित्र विक्रममयी  
है । उसके अनन्त प्रभावोंमें तीन प्रभावोंको हम-  
लोग जान सकते हैं । उन तीन प्रभावोंमें एक एक  
प्रभाव विशेषतायुक्त होकर तत्त्वकी पराशक्ति  
स्वभावतः अन्तरंगा चिच्छाक्ति, तदस्था वा जीव  
शक्ति, बाह्यरङ्गावा माया शक्ति के रूपोंमें नित्य  
देदीप्यमान है ।

जीवसमूह अन्तरङ्गा शक्तिकी सहायतामें उस  
तत्त्वके अर्गणित रश्मि परमाणुओंके से नित्य  
सिद्ध हैं, बाह्यरङ्गाशक्तिकी सहायतामें उस तत्त्वकी  
छायाकी रंगोंके जगहपर माया वैभव है । नित्य सिद्ध  
स्वरूपादिकी अमलियत यही है ।

स्वरूप अनन्त होनेपर भी विशेष परिचित इन  
नित्य तीन भावोंसे अर्थात् ऐश्वर्य, माधुर्य और  
औदार्य भेदोंसे भगवत्स्वरूप तीन प्रकारके हैं अर्थात्  
लाग्यणरूप, कृष्णरूप और कृष्ण चैतन्यरूप ।

स्वरूपवैभव अनन्त है । उनमेंसे परव्याम गो-  
लोक, वृन्दावन और नवद्वीप इन तीन धामोंसे  
विशिष्ट वैकुण्ठरूप चिज्जगत् है ।

इन्हीं इन्हीं स्वरूपोंके और उनके स्थानोंकी समस्त लीलाओंके उपकरणके ही स्वरूप वैभव कहते हैं।

भगवत सूर्यके बाहर निकले हुए चित्त परमाणुरूप जीवोंकी संख्या अनन्त है।

जीव स्वभावतः स्वरूपशक्ति और बहिरङ्गा मायाशक्ति इनदो वैभवोंके मध्यवर्ती तटस्था शक्तिके द्वारा दोनों वैभवोंकी योग्यतामें युक्त हैं। परन्तु अनादि स्वरूप विमुखताके कारण माया वैभवमें फंसा हुआ है और मायावृत्ति रूपा अविद्यामें पैदा हुए जड़भिमानके द्वारा जड़धर्मरूप कर्ममागमें भ्रमणशील है। इसीलिये यह सदा संसार-दुःखमें पाड़ित है।

अनन्त जड़त्वक ब्रह्माण्ड समूह तथा बड़ जीवगणके स्थूल और लिङ्गशरीरमें युक्त मायावैभव ही परमत्वका छायाके वर्णवैचित्र्यरूपमें उस विभूति का अत्यन्त होन चौथा पाद है।

पेश्वर्यमें भरा हुआ भगवत स्वरूप चतुर्भुज मूर्तिमें वैकुण्ठ परब्रह्ममें दाम्य रसाश्रित नित्य सिद्ध जीवगणोंके द्वारा संविन हैं।

माधुर्य प्रचुर भगवत स्वरूप द्विभुजमूर्तिमें वैकुण्ठ के अन्तर प्रकोष्ठमें नित्य दाम्य, सख्य, वातमल्य, और मधुर रसरं अनन्तलीलाका विस्तार करनेवाला है।

वैकुण्ठके इस अन्तःपुरमें दो प्रकोष्ठ हैं एक प्रकोष्ठमें गोलोक है जहां मधुर रस नित्य स्वकीय भावात्मक है। दूसरे प्रकोष्ठमें वृन्दावन है जहां मधुर रस नित्यपरकीय भावात्मक है।

औदार्य प्रचुर भगवत स्वरूप द्विभुज और कभी पद्भुज मूर्तिमें वैकुण्ठके अन्तर्गत नवद्वीप प्रकोष्ठमें भक्त भावात्मक औदार्यरस विशेषसे अपने रस

योग्य परिकरोंके साथ जीवाचार्य स्वरूपमें नित्य विराजमान है।

१४८१ शकाब्द के फाल्गुनी पूर्णिमाके सन्ध्याके बाद औदार्य प्रचुर भगवान् श्री चैतन्यदेव गौड़देशमें गंगार्तारपर प्रपञ्चगत स्वीयधाम नवद्वीपमें श्री जगन्नाथ मिश्रकी पत्नी श्री शची देवीके गर्भसे अवतीर्ण हुए। और उन्होंने शिशुकालके वयसोचित बालचपलता, पौगण्ड वयसमें विद्याभ्यासादि, केमोर वयसमें विवाह, माध्व सम्प्रदायी वैष्णव श्री ईश्वरपुरीके पास दोहा ग्रहण और कीर्तन प्रचार द्वारा समस्त गौड़ भूमिका आनन्द विधान किया।

चौबीस वर्षको अवस्थामें केशव भारतामें सन्यास ग्रहण करके पहले छः वर्षोंमें पाश्चात्य, गौड़ तट, दार्जिलाल्य प्रभृति देशोंमें पवित्र हरिभक्तिका प्रचार और गुड हरिभक्तिके विरुद्ध समस्त मतोंका खण्डन किया और अन्तिम अठारह वर्षों तक श्री पुरुषोत्तम क्षेत्रमें अपने पापदोषोंके साथ रहते हुए श्री रूप सनातन प्रभृति प्रचारकोंके द्वारा बहुत देशोंमें अपने “अचिन्त्य भेदाभेद” मतका प्रचार किया, और अपने बनाए हुए शिक्षाष्टकके प्रेमरसका पान कराने हुए जीवोंको कर्तव्यता विधान की।

श्री कृष्णदास गोस्वामी श्री चैतन्यचरितामृतकी अन्त्य लीलाके २०वे परिच्छेदमें लिखते हैं:—

पूर्वे अष्ट श्लोक करि लोक शिक्षा दिल्।

संइ अष्ट श्लोक आपने आम्बादिल् ॥

प्रभु शिक्षा अष्ट श्लोक यह पढ़े सुने।

कृष्ण प्रेम भक्ति तार बाढ़े दिने दिने ॥

प्रभुने जिन आठ श्लोकोंका प्रचार किया था उनके तात्पर्यकी व्याख्या करता हूँ।



( १ )

जिस श्री कृष्ण संकीर्तनके द्वारा जीवोंका चित्त-दर्पण मार्जित होता है, स्वरूप महादावाग्नि वृक्ष जाती है, श्रय रूप कुमुद विकाशक भाव चान्द्रिका चितरग्न होता है और जो विद्या वशके जीवन स्वरूप ज्ञानन्द समुद्रको वर्धन करने वाला है, पद पदपर पूर्णामृतका आम्बादन करने वाला है एवं शुद्ध जीवके समस्त स्वरूपको स्निग्ध करने वाला है वह श्रीकृष्ण नाम, रूप, लीला संकीर्तन सर्वोपरि उपयुक्त हो ।

उस श्लोकके द्वारा परम औदार्य विग्रह निम्निल जीवनाचार्य श्री मन्महाप्रभु समस्त तत्वोंको बतलाते हुए जीवगणको आशीर्वाद करते हैं । पृथक् परमतत्त्वके अन्तर्गत तटस्थ शक्तिसे पैदा हुए जीवके सम्बन्ध ज्ञानकी सिद्धिके लिये “चेतोदपणं मार्जनम् भवमहादावाग्निं निर्व्यापणम्” इस चरणकी उक्ति हुई है । स्वरूप सिद्धि क्या है ? जीव स्वभावतः तटस्थ अर्थात् स्वरूपानन्दरूप वैकुण्ठ और विरूपानन्द रूप माया वैभव इन दोनों अवस्थाओंके योग्य है ।

परेश वैमुन्यवश होनेके कारण उसने मायामें प्रवेश किया है, और विशुद्ध चिदभिमान रूप विशुद्ध अहंकार विकृत होकर जड़भिमान रूप विकारके द्वारा शुद्ध चिन्तनत्व जड़मलसे ढक गया है ।

कृष्णानुशीलनके द्वारा चित्तका अविद्यामल दूर होनेसे चित्त दर्पणमें स्वरूप तत्वका विशुद्ध दर्शन होता है इसी अवस्थाका नाम स्वरूप सिद्धि है ।

इस सिद्धिके अवान्तर फलसे सुख दुःखका नाश हो जाता है । जीव इससे माया स्वरूप

वैधर्मको परित्याग करके स्वरूपशक्तिका आश्रय लाभ करता है, भगवन् स्वरूप, जीवस्वरूप, माया-स्वरूप और मायान्तर्गत भूत, भविष्यात्मक काल और कर्म स्वरूप ज्ञानको सम्बन्ध ज्ञान कहते हैं ।

“श्रेयः कैरव चान्द्रिका चितरगणम्” इस अर्द्धपद के द्वारा अभियेयतत्त्वस्वरूप साधन भक्तिका उल्लेख किया है । कर्म ज्ञानादिके द्वारा जीवका नित्य मंगल-साधन नहीं हो सकता है । केवल हरिभक्तिके द्वारा ही यह साधित होता है ।

सत्संगके द्वारा उस प्रकारकी शास्त्रार्थ अवधान-रूपा श्रद्धाके उत्पन्न होनेसे जीव साधु गुरुपदाश्रय करके श्रयण कीर्तन, विष्णुस्मरण, पादसेवन, अर्पण, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन रूप सवधा भक्तिका अवलम्बन करके श्रीकृष्ण संकीर्तन करता है । और इसी संकीर्तनमें परविद्याकी परम-ज्योति प्रकाशित होकर जीवका श्रय साधन करता है ।

साधनाङ्गके द्वारा पहलेकी जनमा हुई श्रद्धा वा भगवन्माधुर्य लोभ जिस समय परिपक्व होकर निष्ठा, रुचि, आसक्ति इत्यादि अवस्थाओंको पार करके भावदशा प्राप्त होती है उस समय स्वरूपतः जडोद्भूत स्थूल और लिङ्गरूप औपाधिक देहद्वय आत्माभिमान शून्य हो जाता है और पूर्व सिद्ध चित् स्वरूप और रमाधिकार विशेषसे इस योग्य चिद्देह प्राप्त होता है ।

मधुर रस विशिष्ट जीवगण अपना रस योग्य गोपीदेह लाभ करके माधुर्यमय श्री वृन्दावन धाम में कृष्ण लीलाके उपकरण हो जाते हैं ।

यहां पर स्वरूप शक्ति विद्याके प्रभावसे जीवका गोपीभाव प्राप्त करना ही स्वरूपतः विद्यावभूत्व प्राप्त करना है । उस समय जीव विद्यावधू होकर श्रीकृष्ण कीर्तनको जीवन स्वरूपसे वरण करता है ।

भावदशा क्रमशः चिद्धामका विभाव अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी रूप चित्त मामग्रीके द्वारा परिणुष्ट होकर चिदेकग्रसता लाभ करता है। ऐसे समयमें जीवकी आनन्दाम्बुधि स्वभावतः परिवर्द्धित होती है और चिद्ग्रसकी नित्यता धर्मके द्वारा भूत भविष्यत् रूप जड़मल दूर हो जाता है। और उसके लिये सदाही वर्तमान कालकी नवीनता रहती है अतएव अनुराग लब्ध जीवको पग पग पर श्रीकृष्ण संकीर्तन पृणामृत स्वादस्वरूप होता है इस अवस्थामें गुण गुणी भेदभाव जनिन विशुद्ध चिन्मय तन्वात्मक जीव विशुद्ध अहंकार चित्त, मन, बुद्धि देह, इन्द्रियविशिष्ट अणु-चैतन्य स्वरूपमें रहता है।

ऐसी अवस्थामें जो कृष्णकीर्तन होता है वह सर्वात्मनपन रूप अवस्था है अर्थात् स्वरूप साक्षात्कार समयमें ब्रह्मलय वा स्वायम्भोगसुख रहित सच्चिदानन्द युगल स्वरूप की सेवाही जीवकी सिद्धसत्ताका हर समयका सार्थी है। यही प्रयोजन तत्त्व है।

इस प्रकार सम्बन्धाभिधेय प्रयोजन ज्ञानसे मार्जित शुद्धभक्ति स्वरूप श्रीकृष्ण संकीर्तन ही का सर्वत्र प्रयोजन है।

यहाँपर श्लोकके चतुर्थ पाद में "परम" शब्दके द्वारा ऐसे धर्म ज्ञानान्तर्गत हरि कीर्तनका जो भुक्ति और मुक्तिकी साधनाके लिये की जाती है अनादर हुआ है।

श्री कृष्ण संकीर्तन चार प्रकारका है—नाम संकीर्तन, रूप संकीर्तन, गुण संकीर्तन और लीला संकीर्तन।

परमार्थरूप वस्तु का नाम ही उसके अनुभवका मूल है। नामके पूर्णरूपसे उदित होनेसे उसके

गुण समूहका उदय होता है। गुणके सम्पूर्ण रूपसे उदित होनेसे लीला मालूम होती है अतएव नामही सबका मूल एवं समस्त सिद्धियोंका एकमात्र कारण है।

नामही क्रमशः रूप गुण लीलारूप में परिणत हो जाता है अतएव नामको छोड़कर बद्ध और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंकी दृमरी गति नहीं है।

प्रभुके सभी उपदेश नामको ही लक्ष्य करते हैं।

( २ )

श्रीमन्नमहाप्रभु कहते हैं हे भगवन! आपने जीवोंके प्रांत अपार करुणा प्रकाश कर अनेक नामका प्रकाश किया है कृष्ण, गोविन्द, अच्युत, प्रभुति मुख्य नामोंमें जिनका अधिकार नहीं होता है उनके लिये परमात्मा, पाता, नियन्ता ब्रह्म प्रभुति अनेक गौण नामका प्रकाशित किया है।

उन समस्त नामोंमेंसे मुख्य नामोंमें समस्त शक्ति एवं गौण नाम समूहमें अनेक प्रकारके पापनाशक भुक्ति मुक्तिफल देने वाली शक्ति दे रखी है, जीवकी अयोग्यताका विचार करके अपने नामके लेनेमें देशकालादिका कोई नियम नहीं रखा है। यह सब तुम्हारी कृपा है किन्तु हम अपने दुर्भाग्यकी बात क्या कहें। तुम्हारे ऐसे मधुर नाममें मेरा अनुराग नहीं हुआ।

नाममें समस्त शक्ति है जरूर किन्तु हम प्रकार के नाम अपराध रूप दुर्दैव दूर नहीं होनेसे नाममें जीवकी रुचि नहीं होती।

साधु निन्दा, भगवान् कृष्ण और उनकी विभूति शिवादि देवताओंमें भेदबुद्धि, गुरु के प्रति अवज्ञा वेद और उनके अनुगत शास्त्रोंकी निन्दा, हरिनाम में अर्थवाद नाम बल पर असत प्रवृत्ति; अन्यशुभ कर्मों के साथ हरिनाम की समानता, बहिर्मुख और

अनधिकारियोंको नामोपदेश, नामका माहात्म्य सुनकर उसमें प्रीति नहीं करना इन्हीं कई एक अपराधोंको वचाकर नाम लेनेसे नामका स्वरूप उदित होता है।

अतएव श्रद्धावान् व्यक्ति श्रीगुरुपे नामतन्व प्राप्त करके निरपराध होकर उसका अनुशीलन करें।

नाम लेनेवालेके लिये कर्मन्तिर्गत पापके क्षयकी चेष्टा वा पुण्यके संचयकी चेष्टा करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि श्रद्धा उदित होनेके समय ही कर्माधिकार दूर हो जाता है।

भगवद् विषयकी श्रद्धाके उदय होते ही उससे भिन्न वस्तुओंमें अश्रद्धा हो जाती है। जिस समय यह हो जाता है उस समय पाप पुण्यकी वृद्धि वाकी नहीं रह जाती है।

श्रद्धावान् पुरुष स्वभावतः जो कुछ करता है या जिनवस्तुओंमें उसका विराक्ति होनी है वे सभी विधि निर्दिष्ट पुण्यकी अपेक्षा मार्थक और निमेल होते हैं।

किन्तु पूर्वोक्त नामापराधके रहनेसे श्रद्धा क्रमशः उन्नत होकर निष्ठाके रूपमें होनेके बदलेमें अवनत हो जाती है।

सारा जीवन साधन करनेसे भी निरपराध नाम नहीं होनेके कारण नामाभास अवस्था उत्पत्ति लाभ नहीं करती।

इसी लिये पद्मपुराणमें इस प्रकार कहा है "नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यधम"।

अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तान्येवार्थ करानिच" ॥ अर्थात् नामापराध छोड़नेके लिये व्याकुल चित्तसे कुछ दिन अनवरत नाम लेनेसे अपराध होनेके अवकाश नहीं मिलनेके कारण नामापराध शून्यता हो जाती है।

( ३ )

अपराध रहित होकर श्रद्धावान् व्यक्ति जिस

समय मुख्य नामकी आलोचना करते हैं उस समय उनको स्वभावतः चार लक्षण अनुभवमें आते हैं। अतएव श्री महाप्रभुने कहा है "हे जीवगण ! जो अपनेको तृणकी अपेक्षा क्षुद्र समझते हैं जो वृक्षकी सहिष्णुताका अवलम्बन करते हैं और स्वयं अमानी होकर दूसरोंका यथायोग्य सम्मान करते हैं वेही हरिकीर्तनके अधिकारी हैं।

इस जड़ जगत्में तृण अति तुच्छ वस्तु होनेपर भी विश्वमें एक वस्तु कहकर अभिमान करे तो अयुक्त नहीं है किन्तु चित्परामाणु रूप जीवका इस जड़ जगत्में कुछ भी अभिमान करना उचित नहीं है क्योंकि जीवके लिये चिदभिमानही न्यायपर है जड़ाभिमान नितान्त आरोपित और मिथ्या है।

काटने वालेके द्वारा काटेजाने पर भी वृक्ष सब किसीको छाया और फल देना अभ्युक्ति नहीं करता। किन्तु जड़ वस्तुओंमें श्रेष्ठधर्मवाला जीवका उपकार करनेवाला और अस्कार करने वाले दोनोंके प्राति सदा दयायुक्त रहना स्वाभाविक है इसका कारण यही है कि जीवकी दया ही जीवमें स्वधर्म रूप भक्तिका धर्म विशेष है।

नाम लेनेवालेको स्वयं जड़ाभिमान जातित्वाद्यदि वर्ण, सन्यासादि आश्रम, धन, रूप, बल, वीर्य अधिकार पद इत्यादिके सम्बन्धमें निरर्थक अभिमान शून्य होकर शुद्ध वैष्णवमात्रके प्रति परम आदर स्वरूप मान देना चाहिये।

भगवत् कृपासे जिन सब अधिकारी सत्त्वगुणोंने ब्रह्म, शिवादि पद लाभ किया है उनलोगोंको यथायोग्य सम्मान करना चाहिये। यदि पूर्वोक्त लक्षण साधकमें नहीं पाए जायें तो समझना चाहिये कि अपराध अभी भी दूर नहीं हुए हैं।

क्रमशः

## SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

### SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs 2-8-0.

### RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

### THE BHAGBAT

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick, paper bound—Twelve Ans.

( बंगलामें )

### श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन् मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, नध्य व विवृत्यादियुक्त । प्रति स्कन्धकं आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है । श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान—सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित । प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है । भिन्ना प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र ।

### श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रीज कविराज गोस्वामीकृत । श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं । श्लोककी साम्बन्ध व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पदवारके पूर्व संक्षिप्त अभिप्रेय संयोजित है । प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है । श्लोक, पदवार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृहत् सूची व ग्रन्थकारकी विरतृत् जीवनी—समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है । उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न है । भिन्ना बिना बंधा हुआ ९) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र ।

### श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचिन गौडीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आरम्भ—अन्वय ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १३४० पृष्ठ भिन्ना—६) मात्र ( बिना बंधा हुआ ) ।

## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—( तृतीय खण्ड )

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक एक विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामों व सत्यका अनुभवान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भागवत बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, शिक्षा, साहित्य व सामाजिक अवस्था, धर्मजगनकी अवस्था, समाजसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व - भवन और प्रशासनिक प्रणय व विवरण समस्त गणतन्त्र व जनतन्त्र में स्थापत्यके पदनेके जोर धरून किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । अन्तर्गत शिक्षा, समाज, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला हाथ । शिक्षा ३॥ प्रातिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० बोयारी, ढाका ।

### सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनेकें मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मलसर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

### ‘सामयिक-संख्या’—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-लोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्ष्यसे सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥) आना ।

### ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा ॥) मात्र । प्रातिस्थान—कलकत्ता ( बागबाजार ) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

### अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत रत्नोकाकारमें बहुत संक्षेपसे बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृशब्द क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

५ पञ्चनाभ  
गोराबन्द  
४५३



आश्विन कृष्ण ५  
संवत्  
१९६६ वि०

प्रति संख्या  
७॥

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।  
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

वार्षिक  
१)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानानीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसम्भान-रहिता ऐकान्तिकी  
स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होता है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—  
उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari,  
Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

## विषय सूची

| विषय                   | पृष्ठांक | विषय                                     | पृष्ठांक |
|------------------------|----------|--|----------|
| प्रवृत्ति तथा निवृत्ति | .... १२८ | वैष्णव कौन पहचानेगा                      | .... १२८ |
| शिक्षाष्टक             | ... १२३  | श्रवन और कीर्तन                          | .... १३० |
| दास                    | १२६      | सन्यास ग्रहण-लीला के बाद श्रील आचार्यदेव | १३२      |
|                        |          | श्री श्रील आचार्यदेवके उपदेश             | .... १३५ |

## भक्तिके अन्यान्य पत्र

१ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अनन्त पारमार्थिक दैनिक पत्रिका हैं। श्रीधाम-मायापुर वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज सम्पादित श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होती हैं। वार्षिक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका। प्रति एकादशीको कलकत्ता भिन्ना डाक व्यय समेत ६) मात्र।

बागवाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होते हैं। ४ परमार्थी—श्रीयुक्त रघुनाथ महापात्र द्वारा सम्पादित उत्कल पाक्षिक। कटक श्रीसच्चिदानन्द मठसे प्रकाशित। वार्षिक भिन्ना १॥ मात्र डाक व्यय समेत।

२ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला सामाहिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिन्ना ३) डाकखर्च समेत। ५ श्रीगौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला पाक्षिक। कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिन्ना १॥०) मात्र डाक व्ययके साथ।

३ दैनिक नदीया-प्रकाश (बंगभाषामें प्रकाशित)—बंगला पाक्षिक। कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिन्ना १॥०) मात्र डाक व्ययके साथ।

## SREE CHAITANYA MAHAPRABHU

The teachings and characteristics of Sree Mahanahaprabhu have been clearly published in this book. It has been written by Tridandi Swami Sreemad Bhakti Pradip Tirtha Maharaj. Price Rs. 4/-  
To be had:—Nand Kishore Bhaktishastri,  
Sree Jogpith, Sree Mandir  
P. O Sree Mayapur (Nadia)

## वैष्णवाचार्य श्रीमध्व

गौड़ीय सम्पादक-सम्पादित, इस ग्रन्थमें श्रीमध्वाचार्यजी जीवन चरित, सिद्धान्त और शिक्षा भली भाँतिसे आलोचित हुआ है। यह एक अपूर्व मौलिक विराट् ग्रन्थ है। भिन्ना २) मात्र।

## श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित पद्यावली श्रील आचार्यदेव-विरचित “सौरभ” नामक भाष्यके सहित प्रकाशित हुआ है। श्रील प्रभुपादके बहुतसे अप्रकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं। भिन्ना ॥०) आठ आना मात्र।

## श्रीश्रीभक्तिविनोदब्राह्मीवैभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंसे सम्बन्ध, अभिषेय और प्रयोजनाकारमें प्रश्नोत्तररूपसे उनका वाणी-सङ्कलन। भिन्ना ३) मात्र।

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गो जयतः



वर्ष ५

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

संख्या ६

आश्विन कृष्ण ५, ४५३ सं० १९९६ वि०, ३ अक्टूबर सन १९३६

## प्रवृत्ति तथा निवृत्ति (३)

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील ठाकुर भक्तिविनाद )

यहांपर प्रतिवादीलोग कुनर्क कर सकते हैं और पूछ सकते हैं कि परमेश्वर जीवोंको अपूर्व धाममें न रखकर इस असम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें क्यों रखे हुए हैं। यदि जीव उस धामके योग्य बनाये गये हैं, तब वे वहांपर क्यों नहीं रहे। इस विषयमें भी विश्वास तथा युक्ति उत्तर देगो। हे भागवत महोदयः! आप-लोगोंकी आत्मा निगूढ़ प्रदेशमें (हृदय कन्दरेमें) एकबार स्थिरचित्त होकर समाधियांगके द्वारा इस तत्वका विचार करें। समाधिके बिना अप्राकृत तत्वका कोई भाव उपलब्ध नहीं होता। जो लोग समाधिवृत्तिकी आलोचना नहीं करते, उन लोगोंके लिये आत्मतत्व नितान्त दुरूह है। समाधिके द्वारा जीव बाहरी दरवाजोंको बन्द करके अन्तवृत्ति द्वारा

अप्राकृत धाममें विचरण करते हुए अप्राकृत तत्वांका साक्षात् दर्शन करता है। जिस समय हमलोग समाधियांगसे उस परमपुरुष सच्चिदानन्द कृष्णके सन्निकटस्थ होकर साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, उस समय हमलोगोंका अन्तःकरण परमप्रेमसे उत्कूल (आनन्दित) होता है। किन्तु उस समय हमलोगोंके पूर्वकृत किसी अपराधके जिये अनुताप उपस्थित होता है। हमलोगोंका उस समय मोहछा द्वारा माया-स्वीकाररूप जो अकार्य, वह स्मरणपथारूढ होकर हमलोगोंको विलजित तथा मन्तव्यमान करता है। हमलोग उस समय विवेचना करते हैं कि हाय! हमलोगोंने क्यों ऐसे अपूर्व पूर्णानन्दका पारत्यागकर मायाके चूड़ानन्दमें प्रवेश किया था। ऐसे दयालु



परमेश्वर को परित्याग कर सामान्य जड़-सुख की वाञ्छा की थी। किन्तु परमेश्वर कैसे दयालु हैं। वे हमें परित्याग नहीं कर अपने धाम के सहित हमारे निकट वर्तमान हैं। हम जिस अवस्थामें पतित क्यों न हों, वे स्व-स्वरूपमें हमारे साथ साथ हमारे पीछे पीछे गमन करते हैं। हमारे केवल दृष्टिपात करने की आवश्यकता है। इस प्रकारका भाव समाधिमें हमलोगों के मनमें निरन्तर उदित होता है। इसका कारण क्या है? हमलोग किसी न किसी समय ईश्वर के निकट अपराधी हुए हैं, यही प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है। मृतः सिद्ध आत्म-प्रत्यय (विश्वास) होनेसे वार्त्ताओं का केवल धीज पाया जाता है, वार्त्ता नहीं जानी जा सकती। इस बीजमें युक्ति तथा शास्त्र विचार द्वारा समग्र वार्त्ता संगृहीत होती है। महाप्रभुने सनातनमें कहा था—

कृष्णान्नित्यदास जीव तादा भूल गेल ।

पह दोषे माया तर गलतय बाँधील ॥

अभीतक उपनिषद् स्वरूप प्रभु वाक्य द्वारा क्या संगृहीत हुआ? मालूम पड़ता है कि जीव किसी समय अपने स्वाभाविक कृष्णभक्तिकी विस्मृति करके भोगेच्छा द्वारा माया के हाथमें पड़कर इस ब्रह्माण्ड कारागारमें बन्द होनेके सदृश ठहरा हुआ है। असम्पूर्ण मायिक ब्रह्माण्डमें यत्किञ्चित् इन्द्रिय-सुखभोग के द्वारा जीव समय बिता रहा है। इस ब्रह्माण्ड में की अवस्थिति-कालकी जीवोंका दण्डकाल कह सकते हैं। जीव अपने कर्मफलसे इस स्थानमें नानाप्रकारका दुःख भोग रहा है। इस ब्रह्माण्डमें हमलोगोंकी जितनी प्राकृत उन्नति होती है, उतनीही बन्धनकी दृढ़ता होती जाती है। यह स्वीकार करना होगा। इस ब्रह्माण्डकी उन्नतिसे हमलोगोंके सुखका कोई कारण नहीं है। जीवकी इस पतित अवस्था

को, जो एक निश्चित सत्य है, सभी देशके शास्त्र-वेत्ता स्वीकार करते हैं। खीष्ट धर्ममें आदमका पतन जिस प्रकार हुआ था, उसको आपलोग जानते हैं। ज्ञान-वृत्तका फल-भक्षणही उसके पतनका कारण था। कृष्ण के अधीनत्वको परित्याग कर जो अपने ज्ञान द्वारा स्वाधीन होकर भक्ति-सुखको छोड़ देते हैं, उसका और मङ्गल कहां? जीव कृष्णदा-सत्त्व परित्याग कर शैतान अर्थात् माया के हाथमें पड़कर इस ब्रह्माण्डमें दुःख पा रहा है, यह कुराणमें भी स्वीकार किया गया है। जीवका मृतः सिद्ध सन्तापका मूलही समस्त विवरणमें देखा जाता है। यद्यपि मृतः सिद्ध विश्वास करनेके उपरान्त भी कोई विशेष सत्यका आविष्कार नहीं किया जाय तो हमलोगोंकी युक्तिशक्तिका क्या फल दुःख? हमलोग पशुओंमें किस विषयमें श्रेष्ठ हुए?

यहांपर प्रतिवादा प्रश्न कर सकते हैं कि जीव क्यों ईश्वरका दासत्व भूल गया तथा परमेश्वरहीने किम कारण उसको इस प्रकार भूल जानेकी योग्यता दी थी। इस विषयके विचारमें पयुक्त होनेसे पहले यह जानना चाहिये कि समस्त ज्ञानका आकर जो मृतः सिद्ध आत्म-प्रत्यय (विश्वास) है वह कभी भी समाधि छोड़कर विवेचित नहीं हो सकता। अतएव हे भागवत! आपलोग और एकवार समाधियोगके द्वारा आत्माके अन्तःपुर धाममें प्रवेश कीजिये। अप्राकृत तत्त्वस्वरूप भगवद्दीपिका वहांपर निरन्तर सङ्कर्षण-सुखसे सुनी जाती है। जिस प्रकार सनकादि ऋषियोंने भगवान् सङ्कर्षण के निकट सात्वती श्रुति भागवत श्रवण किया था आपलोगभी उसी प्रकार श्रवण कीजिये। विशुद्धसत्त्वमय आत्मावाले सङ्कर्षण अनन्त कहते हैं—श्रवण करो, परमेश्वर सर्वमङ्गल-मय हैं। उन्होंने जीवोंकी अनन्त उन्नतिकी

कल्पनाकर जीवके स्वभावको अपने दासत्वमें परिणत किया है। कृष्ण-दासत्व ही जीवका स्वभाव हुआ। दासत्व-सुखमें जीव परमानन्दसे कालयापन करने लगा। किन्तु जीवका जो अगत्या दासत्व, उसमें जीवको किसी विशेष गौरव नहीं रहनेके कारण अधिकतर उन्नतिका अधिकारी नहीं हो सकता। परमकरुणामय जगदीश्वरने जीवको स्वाधीनता रूप एक अपूर्व रत्न दान किया। उस स्वाधीनताका सद्व्यवहार करके जो स्व जीवोंने ईश्वर-सेवामें अधिकतर भक्ति की वे उन्नत अवस्थाके अधिकारी हुए; किन्तु जिस जीवने उस स्वाधीनताका असद्व्यवहार करके भोगवासना करके दासत्वको छोड़ दिया, उन्होंने गुणवता मात्रासे अवर्धित होकर भावके अपेक्षित सेवामें रत होकर कभी दुःख, कभी सुख भोग करनेके लिये भोगायतन प्राकृत देहमें प्राकृत जगतमें प्रवेश किया। यह घृतान्त पुरातन उपाख्यानमें मिलेगा। जो लोग परमेश्वर पर विश्वास करते हैं, किन्तु इन विषयोंके विचारमें प्रवृत्त नहीं होते, वे इस प्रकारके सिद्धान्तमें रह जाते हैं।

केवल परमेश्वरकी असीम दयामें विश्वास करके जो भजनानन्दमें कालयापन करते हैं, वे निर्बोध होकर भी सुखी हैं तथा जो इस तत्वका विचार करके इस प्रकार सिद्धान्त करते हैं, उनलोगोंका भी दुःख अपगत होता है, किन्तु जो व्याक्त इन दोनोंके मध्यमें हैं वे अत्यन्त दुःख पाते हैं। जैसे

यश्च मृदतमो लोके यश्च वृद्धेः परं गतः ।

तावुभौ सुखमेधेते किंश्यन्यन्नरितो जनः ॥

हे भागवत महोदयो ! विचारकर देखिये कि जीवके केशका कारण जंतुको छोड़कर और कौन है ? परमेश्वरने हमलोगोंके प्रति अपार करुणा प्रकाश करके हमलोगोंको उद्धार करनेके लिये प्राकृत जगतमें भी अविरत होकर ब्रज-लीलाका प्रकाश किया है। अरा ! उसकी करुणाका सीमा नहीं है। इस प्राकृत ब्रजलीलाका जो वाष्प तत्व है, उसके स्पष्ट हृदयङ्गम होनेसे जीवको और दुःख कैसे हो सकता है ? संसारके बीच जन्म-मरण चक्रकाण्ड आर्यधर्म कहकर घेद बनास्य करने हैं, उसमें जीवका क्या फायदा हो सकता है ?

## शिक्षाष्टक (२)

(ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिविनायक ठाकुर)

उक्त चारों लक्षणोंसे युक्त निरपराधनाम ग्रहण करनेसे अहैतुकी, उत्तमा, केवला श्रद्धा, अमिश्रा, अकिञ्चना निर्गुणा इत्यादि विशेषणोंसे युक्त भक्ति प्राप्त होती है।

किन्तु जीवकी वद्धावस्थामें दो व्यतिरेक लक्षण देखे जाते हैं। उन लक्षणोंसे युक्त होनेसे भक्ति शुद्ध होती है। अन्याभिलाषशून्यता और ज्ञान कर्मादिसे अनासक्तता ही भक्तिके व्यतिरेक लक्षण हैं।

(५)

इसी तत्वको अच्छे प्रकारसे समझाने के लिये श्री श्री महाप्रभु कहते हैं—“हे जगदीश मैं धन, जन वा सुन्दरी कविताकी प्रार्थना नहीं करना किन्तु जन्म जन्ममें प्राणेश्वर रूप तुझमें हमारी अहैतुकी भक्ति रहे” यही प्रार्थना है।

• वर्णाश्रमधर्मप्रदत्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इत्यादि में नहीं चाहता। देह वा देहानुगत स्त्रीपुंव कलव प्रजादिरूप जन भी मैं नहीं चाहता। कृष्ण

म ही पोषण करनेवाली विद्याको छाँड़कर सामान्य व्याकरणादि अलङ्कार, काव्य, नाटकादिकी रचना-शास्त्रिके लिये बहिर्मुख विद्या भी मैं नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ केवल फलानुसन्धान रहित शुद्ध भक्ति। यही मेरी प्रार्थना है।

संसार-दुःखका नाश एवं चित्स्वरूपलाभरूप मोक्ष तो भक्तोंको अनायास ही प्राप्य हैं, ये तो भक्ति के अवान्तर फल हैं। इनके लिये प्रयत्न वा प्रार्थना द्वारा भक्तिके स्वरूपको दृष्टिमान करना उचित नहीं है।

जिस समय जीव को जड़मोचनकी योग्यता प्राप्त होगी उस समय कृष्ण कृपाके द्वारा वह अवश्य ही प्राप्त होजायगा। अतएव भक्तगण जन्म जन्ममें अहैतुकी भक्ति लाभ करें इतनीही वामना करें, और दूसरी वासना न करें।

संसारके दुःखाविषयकी आलोचना क्या नितान्त अकर्तव्य है? नहीं। ऐसी बात नहीं है।

भक्ति भावको विशुद्धरूपसे रखकर जहां तक संसार-माचनके विषयकी आलोचना की जा सकता है साधक वहां तक उस विषयकी आलोचना कर सकते हैं। सिद्धान्त यहो है कि श्रीकृष्णके निकट संसारके दुःख-माचनकी प्रार्थना कदापि नहीं करनी चाहिये।

( ५ )

प्रार्थना केवल इस प्रकार होनी चाहिये कि हे माधुग्यरसविषय श्री नन्दनन्दन! मैं तुम्हारा नित्यदास हूँ तुमको भूल जानेसे माया वैभवमें कर्मजालमय विषम-भव समुद्रमें गिर गया हूँ। इस अवस्थामें मैं जितनीही चेष्टा करता हूँ उतनाही तुम्हारा चरणाश्रय मुझसे सुदूरवर्ती हुआ जाता है। तुम्हारे कृपा नहीं करनेसे तुम्हारी अकृत्रिम दासता

रूप मेरा स्वधर्म मेरे लिये सुलभ नहीं हो सकता। हे करुणामय! मुझे अपने पाद पद्मकी धूल बना कर रखो ऐसा होनेसे मैं तुम्हारी बहिर्मुखतारूप मायामें आवद्ध नहीं होऊँगा।

इस प्रकार प्रार्थना करते-२ वह करुणामय जिस समय अपना चरणाश्रय देगें उस समय जीवको और क्लेश नहीं रह जायगा।

( ६ )

पूर्व पांच श्लोकोंमें सत्सङ्गके साथ साथ कृष्णानुशीलन करनेवाली श्रद्धा, उसके उपरान्त माधुगुरुचरणाश्रय, तब श्रवणकीर्तनादिमय भजन, उससे स्वरूपोपलब्धिजनित अविद्यारूप अनर्थ-नाश, तदन्तर निष्ठा, उससे रुचि, उससे आसक्ति और आसक्तिके परिपक्व होने पर भाव वा रति ह्लादिनीमारवृत्तिको आश्रय करके उदित होती है; यही क्रम चला आ रहा है। भावदशामें भक्तिका अखण्ड एकस्वरूपत्व सिद्ध होता है। नाम-कीर्तन उस समय अत्यन्त प्रबल होता है। शान्ति, अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, अशावद्ध, समुत्कण्ठा, नामगान करनेमें रुचि, कृष्णगुणगान करनेमें आसक्ति तथा कृष्णधाममें प्रीति इत्यादि रतिके लक्षण होते हैं। भाव वा रति शुद्धसत्त्वाविशेष प्रेमरूप सूर्यकी किरणों का परमाणु है अर्थात् प्रेमकी प्रथमावस्था है। उसके उदय होनेसे नृत्य, लोटपोट, गीत, चित्कार, शरीर-मोटन, हुंकार, जम्हाई, प्रभृतस्वास, लोकापेक्षाशून्यता, लालास्राव, अट्टहास, धूर्ण तथा हिका यह सब अनुभाव तथा स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलयरूप अष्ट सात्त्विक विकार कुछ कुछ देखनेमें आते हैं। उनमेंसे नृत्य, गीत, अश्रु, पुलक और स्वरभङ्ग विशेषरूपसे देखनेमें आते हैं।

अतएव उसदशाकी उपलब्धिकी प्रार्थनाके बदले साधक इस प्रकारकी लालसा करने हैं:—“हे गोपीजनवल्लभ ! तुम्हारा अमृतमय नाम उच्चारण करते करते कब मेरी दोनों आँखोंसे अश्रुधारा बह चलेगी । मेरा वदन गदगदभावसे कब स्वरभङ्गरूप विकार लाभ करेगा और मेरा समस्त शरीर पुलकित होता रहेगा ! हे नाम ! मैं भोगमोक्ष प्रार्थना नहीं करता उसा सर्वानन्दविस्तारिणी भावदशा की प्रार्थना करता हूँ ।”

( ७ )

रतिरूपा साक्षात्मिका भक्तिप्रेम दशामे विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्यभिचाररूप भावचतुष्टयके द्वारा परिपुष्ट होकर भक्तिरसरूपमें परिणता होती है । उस समय पूर्वोक्त अनुभाव और सात्विक विकार सम्पूर्णरूपसे देखनेमें आते हैं । ममतातिशयद्वारा भक्तका अन्तःकरण भलोभाति ममृण तथा घनीभूत और भावमय होकर प्रेमका आधार हो जाता है । उस समय भक्तिरसके आश्रय जो भक्त तथा विषयरूप जो कृष्ण हैं उनदोनोंमें मुख्य सम्बन्ध—बुद्धि भेदसे शान्त, दास्य, सख्य, वानमल्य तथा मधुर यही पाँच प्रकारके मुख्यरस तथा उनदोनोंके गौण सम्बन्धसे हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और वीभत्स यही सात गौणरस देखनेमें आते हैं । जिस जीवकी जिस रसमें रुचि हो उसके लिये वही रस आश्रयणोप्य है । किन्तु मधुर रस ही सर्वोत्कृष्ट है । उसमें प्रेम, प्रणय, मान, स्नेह, राग, अनुराग और महाभाव सम्पूर्णरूपसे अवस्थित हैं । शान्त रसमें उल्लासमयी प्रीति रति अवस्थामें देखनेमें आती है । उस अवस्थामें उस विषयको छोड़कर अन्य विषयोंमें तुच्छबाका त्रिचार रहता है । रतिं ममतातिशययुक्ता होनेसे

प्रेमरूपसे दास्यरसमें देखा जाता है । उस अवस्थामें प्रीतिभङ्गकारी हेतुमकल कार्य नहीं कर सकता । नितान्त विश्वासमय प्रेम प्रणयरूपसे सख्यभावमें देख पड़ता है । उस अवस्थामें विषयका सम्भ्रम-योग्यता रहने पर भी सम्भ्रम नहीं रहता है । प्रियत्वका आतिशय प्रयुक्त कौटिल्याभामय भाववैचित्र्यका नाम मान है । उस अवस्थामें भगवान भी प्रेममय भयको स्वीकार करते हैं । चित्तके अतिशय द्रवभावमय प्रेमको स्नेह कहते हैं । उस अवस्थामें महावाष्पादि विकार दर्शनमें अतृप्ति, विषयमें ऐश्वर्य रहनेपर भी आनन्दकी आशङ्का होती है । मान और स्नेह वानमल्यमें ही देखनेमें आता है, अर्थात् शान्त, दास्य तथा सख्यमें नहीं देखे जाते । अभिलषात्मक स्नेहका नाम राग है । उस अवस्थामें थोड़ा विरह भी असह्य हो जाता है । संयोगपर दुःख भी मुख्य है । वही राग अनुक्षण अपने विषयीभूत तत्त्वको नये नये रूपमें अनुभव कराकर स्वयं नवनवभावमें अनुभूत होकर अनुराग नाममें परिचित होता है । उस अवस्थामें आश्रय तथा विषयका परस्पर अत्यन्त वशभाव रहता है । विषय-सम्बन्धसे अन्य प्राणीमें जन्म ग्रहण करनेकी लालसा होता है । विप्रलम्भमें अत्यन्त विस्मृति होती है । असमोर्द्ध चमत्कार उन्मत्ततामय अनुरागको ही महाभाव कहते हैं । उस अवस्थामें संयोगके समय निमेषभी असह्य तथा कल्प भी क्षण जान पड़ता है । वियोगमें क्षणकल्पके ऐसा मालूम पड़ता है । योगमें भी वियोगसे उर्ध्व अशेष सात्विक विकारादि उद्भूत होते हैं । इन समस्त लक्षणोंका दिग्दर्शन श्री मन्महाप्रभुके वाक्योंसे होता है । “अहो ! गोविन्दविरहमें मुझे निमेष युगके समान बाध होता है, नेत्रोंसे वर्षाकालकी धारा चल

रही है तथा समस्त जगत् शून्यवत् बंध हो रहा है ।” जड़वद्ध जीवोंके लिये पूर्वगगमय विप्रलम्भ अत्यन्त उपयोगी है, यही कहा गया है ।

( ८ )

प्रेमदशाप्राप्त जीवका ऐसा भाव होता है,—

मैं श्रीकृष्ण-चरणार्गवन्दको छोड़कर और कुछ नहीं जानता । वे कृपा करके मुझे आलिङ्गन करें अथवा चरणके नीचे मुझे मर्हन् करके सुखी हों अथवा अदर्शन द्वारा मुझे सम्मोहित करें । वे प्रेमलम्पट हैं । मुझे जिस प्रकार विधान करके वे सुख प्राप्त करें मुझे वही अवस्था स्वीकार है । कारण वे मेरे प्राणनाथ हैं दूसरे नहीं । प्रेमदशामें भक्तलोग कृष्णैकजीवन हो जाते हैं । उस समय भक्त तथा कृष्ण दोनोंके बीच आकर्षणरूप एक उभयसम्बन्धान्तर परमधर्म उदय होता है । चुम्बक और लोहा जिस प्रकार परस्पर यथार्थावाहित रखे जातेपर लोहा चुम्बकका ओर दौड़ता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-प्रति मार्जित चित्त विहित होता रहता है । यही जाय और कृष्णके बीचमें पूर्वमिद्ध धर्म है । जीवकी विमुखताके कारण यह

धर्म लुप्त होकर विषय और आश्रयमें अवस्थित है । सामुख्य उदित होनेसे ही उस धर्मकी क्रियाका परिचय लक्षित होता है । वही धर्म साधन जीवका कार्य और उस धर्मके उदयको छोड़कर उसका और कोई फल नहीं है । श्रीकृष्णने गोपी लोगोंसे कहा है,—(भा: १०-२२-२२)

न पाग्येऽहं निरवशसंयुजां

स्वसाधुकृत्यं विवृधायुयापि वः ।

या माभजन दुर्जय-गेहशृङ्खलाः

संवृश्च्य तद्वः पतियातु साधुना ॥

इस शिक्षाष्टकमें श्रीमन्महाप्रभुने सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-स्वरूप-ज्ञान-विज्ञान की सहायतामें साधनभावप्रेम-अनुसन्धानरूप परमतन्त्रकी आलोचनाका उपदेश दिया है,—हे 'जीव ! यदि तुम्हारा भाग्योदय हुआ है, तब समस्त कर्मचेष्टा ज्ञानचेष्टा परित्याग करके तुम विशेष यत्नके साथ इस शिक्षाष्टक का अनुभव करो ।

श्रीचैतन्यार्पणमस्तु ।

## दास

'दास' शब्द इस संसारमें अत्यन्त हेय और घृणित समझा जाता है किन्तु बैकुण्ठमें यह परमोपादेय है । वहां कृष्णही एक मात्र प्रभु हैं एवं उनकी कान्ता, पिता माता एवं बन्धु-बान्धव सभी उनके सेवक वा दास हैं । कृष्णही एकमात्र भोक्ता हैं, और उनके सिवाय सभी उनके भोग्य हैं । सभी एक साथ कृष्णेन्द्रिय तर्पणमें व्यस्त हैं । किन्तु इस संसारमें ठीक उसका उल्टा है । इस संसारके प्रभु-भृत्य, पिता-पुत्र, कान्त कान्ता सभी प्रभु अभिमानी हैं । इन लोगोंमें एक दूसरेका

दासत्व करनेका दिग्वाचा रहनेपर भी अन्तरमें प्रभु अभिमान ही प्रबल है । यहां कोई किसीके आधीन नहीं रहना चाहता, सभी अपना अपना सुख चाहते हैं । इसी लिये इस संसारमें परस्पर विवाद विसम्वाद और नाना प्रकारकी अशान्ति देखी जाती है । भगवानकी सेवामें कितना असीम सुख है यह हम लोगोंकी उपलब्धिका विषय नहीं होता । इसीलिये हम लोग दास्य सम्बन्धमें ऐसी विकृत धारणा पोषण करते हैं । शास्त्र कहते हैं—

“कृष्णदास अभिमाने जे आनन्द सिन्धु ।  
कोटी ब्रह्म-सुख नहे तार एक विन्दु ॥”  
भगवान् भोगकर जो सुख अनुभव करते हैं उससे अधिक आनन्द उनके सेवक सम्प्रदाय उनकी सेवा करके पाते हैं। कृष्ण दास्यकी इतनी महिमा है।

कृष्णके सिवाय सभी उनके भृत्य हैं इस कथा-का शास्त्रने तारस्वरसे कीर्त्तन किया है।

“एकला ईश्वर कृष्ण आग सब भृत्य ।

जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य ॥”

सख्य, वात्सल्य, मधुरादि सभी रसमें पूर्णदास्य विराजमान है।

कृष्णेर प्रेयसी ब्रजैर जत गोपीगण ।

जाग पदधूली करे उद्धव प्रार्थन ॥

जा सवार उपरे कृष्णेर प्रिय नहीं आन ।

तारा वो करेन कृष्णेर दामी अभिमान ॥

श्रीकृष्णके द्वितीय देह सभी विष्णु तत्वके मूल शक्तिमत्त्व श्रीवलदेव नित्यानन्द प्रभुभी अपनेको सर्वदा गौर-कृष्ण दासही समझते हैं।

आपनाके भृत्य करि कृष्ण प्रभु जाने ।

कृष्णेर कलार कला आपना के माने ॥

यहां तक कि कृष्ण-दास्यमें इतना सुख है कि उस सुखका आस्वादन करनेके लिये भगवान् कृष्ण भक्तभाव अङ्गीकार कर गौराङ्ग रूपसे इस संसारमें आये थे। कृष्ण दास्यकी इतनी महिमा है, कृष्ण दास्यमें इतना सुख है ! अतः ऐसा मूढ़ कौन होगा जो ऐसा सेवासुखरूप परमानन्द प्राप्त करनेसे वञ्चित रहे ? इसी लिये भक्तगण भूलसे भी कृष्णदास्यकी कथा विस्मृत नहीं करते।

बहुतसे लोग अज्ञतावश समझते हैं कि वैष्णव-का अर्थ है नौकर-नौकरानी या दास-दासी। क्योंकि

वे इस जगत्में भी दास होना अर्थात् भगवान्के अधीन रहना चाहते हैं और उस जगत्में भी अधीन अवस्थाको ही पसंद करते हैं। यदि इस लोक और परलोक दोनोंमें ही अधीन रहना हुआ तो लाभ क्या हुआ ? मर्त्योका यह विचार चाञ्चल्य उन लोगोंकी अज्ञताका ही परिचायक है।

वे इस जगत्की धारणाको सर जगत्में ले जाता चाहते हैं। इसीलिये उन लोगोंकी ऐसी अवस्था है। किन्तु भगवत्सेवाभिरामन बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा मूढ़ताको प्रशय नहीं देते।

कृष्ण दास्यके प्रसंगोद्धृत साहित्यापी कथा हन-लोग कृष्णसेवावञ्चित होनेमें नहीं जानते। किन्तु शास्त्र कहते हैं—

अल्प करि ना मांजह ‘दास’ हेत नाम ।

अल्प भाग्ये दास नाहि करे भगवान् ॥

आगे दय मुक्ति नवे भव बन्ध नाश ।

नवे से दइते पारे श्रीकृष्णेर दास ॥

हम लोगोंमें अनेकों व्यक्ति स्वार्थीनता प्राप्त करनेके लिये व्यस्त हैं किन्तु प्रकृत स्वाधीनता किस प्रकार प्राप्त की जाती है इसका ज्ञान उन्हें नहीं है। इसीलिये हमलोगोंका परिश्रम और चिन्ताही सार होता है। इस संसारमें दास्य बन्धन और परार्थीनता बढ़ाही कष्टकर है। किन्तु उस जगत्में स्वराट् पुरुषका दास्यही पूर्णतम स्वाधीनता है, पूर्णतम आनन्द वा पूर्णतम मङ्गल है। उसमें दुःखकी कोई कथा नहीं है। यह दास्य कृष्णेन्द्रिय तर्पणपर है, निजेन्द्रिय तर्पणपर नहीं है। यद्यपि घृणित दास्यके साथ वहाँके परमोपादय दास्यका यही पार्थक्य है। वर्तमान श्री गौड़ीयमठही एकमात्र गुरुगौरानुगत्यमें कृष्णदास्यके असमोद्धृत्य प्रकारमें दृढ़व्रत है।

हम लोगोंकी धारणा है कि इस संसारमें प्रभु होता ही वाञ्छनीय है, क्योंकि दाम्य जीवनमें आजाकारी कुत्तेके मसान केवल कष्टही भोगना पड़ता है। सुतर्ग तारनस्य विचारमें दाम्यकी अपेक्षा प्रभुत्वका ही आदर करना उचित है। मुक्तिवांछन (मुक्तिहीन) आस्यहीन हमलोग बेकुण्ठ और भायिक जगत्ता वैशिष्ट्य नहीं समझते हैं। इसीलिये हमके सम्बन्धन हमलोगों के हृदयमें ज्ञाना प्रकारके चिन्ताश्रोत उपस्थित होते हैं। भगवत्स्यर्ह! जो आत्माकी एकमात्र वृत्ति है— इस धारणे साधु मुख्यसे ज्ञान करनेके कारण ही आत्मनके ब्रह्मत्व हम लोग आर्वाभिश्र मुख प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय जो भगवत्सेवा है, उससे स्वामीने बहुत मोक्ष और त्यागमें सुखानुसन्धान करते हुए अज्ञान होते हैं।

भक्तगो भवदा सेवानन्दमें मत हैं। वे नित्य बेकुण्ठप्राप्त हैं। दुःखका लेश भी यहाँ नहीं है। वे परम दयाल और परमदुःख दुःखी हैं। इसीलिये हमलोगों को भवामुख-प्रदानपूर्वक आनन्द भुग्दमें निर्माजित करनेके लिये वे हम जगत्तमें आगमन करते हैं। उन लोगोंके श्रीमुखसे हम लोग सुन पाते हैं,—आन्यातकज्ञानसे भगवानकी सेवा विस्मृत

होना उचित नहीं है। विष्णुदास्यमें लालसा ही जीव का मङ्गल उत्पादन करती है। साधु संगके प्रभावसे भगवानकी एकान्तिकी सेवा प्राप्त होनेसे जीवका परम मङ्गल होता है। भगवद्दास्यके विना—भगवानके प्रीतिविधानके विना—आनन्दमयके साथ नित्य सम्बन्धयुक्त न होने तक जीवका शान्ति प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं। इसीलिये आज हमलोग हरिगुरुवैष्णवचरणमें उनका नित्यदाम्य प्रार्थना कर रहे हैं एवं इसके लिये कर जोड़कर सभीको अनुरोध कर रहे हैं।—

प्रेमधन विना व्यर्थ दरिद्र जावन ।

‘दास करि’ वेतन मारे देह(दोजिये) प्राणधन ॥

(चं० च०)

‘आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः ।

श्रीमदरूपपदाम्भोजवृत्तिभ्यां जन्म जन्मान् ॥

“भववन्धनिच्छेदे तस्मै स्पृहायामि न मुक्तये ।

भवान पभुरहं दाम इति यत्र विलुप्यते ॥”

“मज्जन्मनः फलामिदं मधुकैटभागे

मत्प्रार्थनीय मदनुग्रह एव एव ।

ददभृत्य-भृत्य-परिचारक भृत्य भृत्य-

भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लाकनाथ ॥”

## वैष्णव कौन पहचानेगा ?

श्री श्रीरत्नहाप्रभुने वैष्णवका लक्षण इस प्रकार दर्शन किया है:—

श्रद्धाया । जन हय भक्ति अधिकारी ।

‘उत्तम,’ ‘मध्यम,’ ‘कनिष्ठ’—श्रद्धानुसारी ॥

शास्त्रयुक्त य सुनिपुण दृढ़ श्रद्धा यार (जिसका) ।

उत्तम अधिकारी सेइ तारये संसार ॥

शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ़, श्रद्धावान् ।

‘मध्यम अधिकारी’ सेइ महाभाग्यवान्

याहार कोमल श्रद्धा से कनिष्ठ जन ।

क्रमे क्रमे तिहो भक्त होइवे उत्तम ॥

पूर्वोक्तमतानुसार जिनके हृदयमें श्रद्धा हुई है, वे ही भक्तिके अधिकारी हैं। वही श्रद्धावान् व्यक्तिगण उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेदसे त्रिविध हैं। जो

शास्त्र और युक्तिमें दत्त होकर दृढ़-श्रद्धा हुए हैं वे उत्तमाधिकारी हैं, जो दृढ़ शास्त्रयुक्ति नहीं जानते, किन्तु श्रद्धावान् हैं, वे मध्यमाधिकारी हैं, और जिनकी श्रद्धा दृढ़ नहीं हुई है, वे कनिष्ठाधिकारी हैं। इस त्रिविध विभागके द्वारा केवल भक्त लोगोंकाही विभाग हुआ ऐसा नहीं, शुद्धभक्तके अधिकारी व्यक्तिका भी विभाग हुआ। कनिष्ठ-श्रद्धा केवल 'कृष्णभक्ति अच्छी है' इतना ही मात्र विश्वास करते हैं, किन्तु शुद्ध कृष्णभक्ति क्या है एवं भक्तिके तटस्थ लक्षण द्वारा सिद्ध-प्रक्रिया क्या है, उसको नहीं जानते। इसीलिये कोमल श्रद्धालुओंके हृदयमें ज्ञानकर्मका मिश्र भाव पाया जाता है। उसके तिरोहित होनेसे साधक मध्यमाधिकारी होते हैं। फिर वही मध्यमाधिकारीगत श्रद्धा शास्त्रयुक्ति द्वारा जब दृढ़ीकृत होगी तब वे उत्तमाधिकारी होंगे।

जो भक्त ईश्वरमें प्रेम, भक्तमें मैत्री, मूढ़लोगों-पर कृपा एवं विद्वेषी लोगोंके प्रति उपेक्षा करते हैं, वे मध्यम भक्त हैं। जो लौकिक एवं पारिवारिक प्रथाक्रमसे परम्परागत श्रद्धाके साथ अर्चामूर्तिमें हरिकी पूजा करते हैं, किन्तु शास्त्रानुशीलन द्वारा शुद्धभक्तित्व अवगत न होनेके कारण हरिभक्तोंकी पूजा नहीं करते,—वे प्राकृत भक्त हैं अर्थात् उन्होंने केवल भक्तिपद्व मात्र आरम्भ किया है। वैसेलोगोंको भक्त-प्राय वा वैष्णवाभास प्रभृति शब्दोंमें वर्णन किया गया है।

तात्पर्य यह है कि जब वे ईश्वरके प्रति प्रेम, भक्तके प्रति मैत्री, मूढ़लोगोंके प्रति कृपा एवं भगवद्विद्वेषी और भक्तविद्वेषीकी उपेक्षा करनेमें समर्थ होते हैं तब वे शुद्धभक्तरूपसे मध्यमभक्तके मध्यमें परिगणित होते हैं। इसके बाद भजन करते करते जब उनका सर्वभूतमें भगवद्भाव एवं सभी भगवत्-

पदार्थोंमें आत्मस्वरूपदृष्टि पड़ती है, उस समय उनका ईश्वर, तद्धीन व्यक्ति, बालिश एवं विद्वेषीके प्रति भेदभाव नहीं रहता। उसी अवस्थामें वे भागवतोत्तम होते हैं।" (अमृतप्रवाहभाष्य) मध्यम-भक्त श्रद्धावान् होनेपर भी शास्त्रादिमें उतने कुशल नहीं होते। और कोमल श्रद्धाविशिष्ट कनिष्ठ भक्त शास्त्रज्ञान विहीन होते हैं, अतः इन दो श्रेणियोंके भक्त उत्तम भागवतका स्वरूप किस प्रकार समझेंगे ?

जिसको उत्तम भक्तभक्त जाना गया है एवं उसके अनुरूप सम्मान किया गया है, उसको अकस्मान् बिना कारण अस्वीकार करनेमें वा लघु प्रतिपादन करनेकी चेष्टा होनेमें मध्यम और कनिष्ठके मध्यमें कोई एपणा आई है ऐसा समझना होगा। कनक, कार्मनी वा प्रतिष्ठाकी वासना मनुष्यको अन्धा कर देती है ; उस समय उसको और हिताहित ज्ञान नहीं रहता। अभक्त-मङ्गल उत्तमाधिकारीको श्रद्धाको कम नहीं कर सकता। किन्तु अभक्तगण यदि प्रपन्न हों तो उत्तमाधिकारीके सङ्गमें उत्तम हो सकते हैं ; नहीं तो केला, मूलीकी चर्चा कर चलें जानेसे कुछ लाभ नहीं होगा।

"आश्रय लइया भजे, तारं कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण"—इस महाजन-वाणीको भूलकर वा इसकी उपेक्षाकर स्वतन्त्रताके वशीभूत होना सर्वनाशका मूल है। कनिष्ठ वा मध्यम भक्तको सर्वदा उत्तम-भक्तका आश्रय आवश्यक है। किन्तु जहां अन्य प्रकारकी वासना है, वहां ही स्वतन्त्र होनेकी चेष्टा है। उत्तमभक्तके आश्रयमें रहनेमें अपनी स्वतन्त्रतावश स्वेच्छापूर्वक काम नहीं करने पायेंगे क्योंकि वे शामनके आधीन रहेंगे।

मनेर कथा गोरा जाने फाँकि केमने दिवे ।

सरल होले गोरा शिजा बुझिया लोइवे ॥



वाहरमे लोगोंको दिखलानेके लिये भगवद् भजनोंकी चेष्टा करनेसे क्या होगा, अन्तर्यामी रूपसे श्रीकृष्ण हमलोगोंका स्वरूप पहचान लेते हैं। अतः शामन घटग नहीं करनेसे 'स्वकर्मफलभुक् पुमान्'। यदि शुद्ध भागवतके मुख्यमें मनुष्य जन्मके मुदूर्तभवकी कथा सुनकर और 'काल विलम्ब न कर हरि भजन करो' यह वाणी सुनकर भी मेरी अन्य वामना जागे भोगवामना, मोक्षकामना, सिद्धिनामना वा देशभ्रमणादि काम हृदयमें उदित हो, और मैं वाहरमे हरिभजन करनेकी दृढ़ता दिखलाकर हृदयमें इन सब कामनाओंको पोसनेकी चेष्टा करूँ तो अन्याभिलाषका प्रश्रय देना हुआ। अतः शुद्धभक्तिमें बहुत दूर रहा।

सद्गुरुपदाश्रयकर भजन आरम्भ करनेमें अनर्थ निशुक्ति होनेके पहले साधकका कई अवस्थाएँ हैं, उसके मध्यमें 'निरङ्गराज्ञी' नामक अवस्था आनेमें लोग मुझपर बहुत श्रद्धा करते हैं, मेरी कथासे बहुत लोग आकृष्ट हो रहे हैं एवं मेरी लाभ-पूजा प्रतिष्ठा बहुत हो रही है, सुतरां उत्तम भागवतमें मैं क्या किसी अंशमें कमहूँ?—इस प्रकार अभिमान आकर हमलोगोंको और भी अनर्थके मध्यमें ले जाता है। मेरा यथेष्ट पाण्डित्य रह सकता है, मेरे वागाडम्बरसे आकृष्ट होकर बहुत लोग आ सकते हैं, किन्तु मेरी कितनी निष्ठा हुई है? मैं क्या रुचि, आर्माक्ति वा भावदशामें उपनीत हो सका हूँ? तब तो 'कृष्णेश चरणे जवे उपजय राग। कृष्ण विनु अन्यत्र तार

नहै अनुराग।" इत्यादि बातें मुझमें पूर्णरूपसे देखी जायगी। किन्तु ऐसा न होकर यदि सबमुच ही अन्य वामनाएँ मेरे हृदयपर गंभीर-आना कब्जा किये रहें, तो समझना होगा कि मेरी इनके दिनों की साधन भजन चेष्टा भ्रममें धुलानेके समान निरर्थक हुई है; मेरे समान महा दुर्दैवधस्त अनर्थ-समुद्रमें निर्मज्जित व्यक्ति किस प्रकार उत्तम भक्तको पहचानेगा? गौराङ्गि गदाधरके समान व्यक्तिने भी एकदिन पुण्डरीक विद्यानिधिसे न पहचाननेका अभिनय कर हमलोगोंके समान महामूर्खोंको अभिमान-पद्धतिमें उद्धार करनेकी चेष्टा की है। किन्तु मैं किसी प्रकारसे भी वह नहीं कर पाया। इसीलिये कहता हूँ, हे दुष्ट मन! धूल हारना, वास टाकुरकी यह वाणी श्रवण करो—

विषय-मदान्ध सब किछु न जान।  
विद्यामंद, धनमंद वैष्णव न जाने ॥  
भागवत पढ़िया वो करो न जान।  
नित्यानन्द निन्दा करे यादोंके नाश ॥  
प्रेम भक्ति हय प्रभु-चरणारविन्दे।  
मेड कृष्ण पाय जे वैष्णव नाहि निन्दे ॥  
निन्दाय नाहिक कार्य सबे पाष लाभ।  
एतेके ना करे निन्दा यत महाभाग ॥  
अनिन्दुक हड बे मकृन् कृष्ण बले।  
सत्य सत्य कृष्ण तारे उद्धारिवे हेले ॥  
वैष्णवेर पाय मोर एड नमस्कार।  
श्रीचैतन्य-नित्यानन्द हउक प्राण मोर ॥

### श्रवण और कीर्तन

भक्तिमार्गमें पहले ही साधुगुरु-मुखसे हरिकथा श्रवण एवं उसके बाद कीर्तन है। कीर्तन करने-वालोंके चेतनमय नहीं होनेसे अप्राकृतका

कीर्तन नहीं होता। वैकुण्ठ वा वैकुण्ठशब्द के वक्ता अकिञ्चन हैं। वे शास्त्रयुक्तिपूर्ण चेतनमयी वाणीके द्वारा श्रोताका चित्त निर्मलकर अर्थात् उसको सभी

धर्मकी किञ्चनता परित्याग करके उसको भी अधिक्रान बना सकते हैं। कीर्तनकारीको भगवान्‌का पूर्णानुगत होना चाहिये—उन्हें भगवान्‌का शुद्धभक्त होना चाहिये एवं श्रोताको भी श्रद्धालु होकर श्रवण करना चाहिये। ऐसा होनेसे चेतनका विकास दिखलाई पड़ेगा। साधुमुखसे हरिकथा श्रवणकर उसको साधुमङ्गलमें ही कीर्तन करना होगा। हमलोग यदि मनोयोगपूर्वक आकर्षक कृष्णकी कथा कीर्तन करें, तो हमलोग बहुत आसानीसे उनके प्रति आकृष्ट हो सकेंगे।

मैं क्या करूँगा, मेरा कर्तव्य क्या है, यह सब जान यदि मैं किसी अभिज्ञ व्यक्तिके निकट नहीं सुनूँ, तो मेरा जीवन किस प्रकार नियमित होगा? यदि किसीके निकट न सुनकर स्नेहान्तरिकाके वश मुझे जो अच्छा लगे, वही करने का चेष्टा करूँ, तो मैं प्रेय पत्नी हुआ, मैंने अपना अमङ्गल आप ही किया। इसीलिये श्रेयःपन्थी गुरुकी आवश्यकता है एवं उनके निकट श्रवण कर उसको ग्रहण करना आवश्यक है। साधुमुखसे मङ्गलोपदेश श्रवणकर उसको फिर साधुके निकट ही कीर्तन करना आवश्यक है। साधुलोग मेरे मङ्गलाकाङ्क्षी बन्धु हैं; मैं यदि उनके निकट श्रुत-विषयका कीर्तन करूँ तो वे मेरी भूल संशोधन कर देंगे। इसके सिवा यदि हमलोग अकपट भावसे कीर्तन करें तो चैत्यगुरु (अन्तर्यामी) भी वह संशोधन कर देते हैं।

श्रवण और कीर्तन भक्तिके दो प्रधान अङ्ग हैं; एकको छोड़ देनेसे फल प्राप्त नहीं होता। पत्नी दाढ़ों हैनोंकी सहायतासे उड़ते हैं। एक डैना काट देनेसे उसकी जो अवस्था होती है, श्रवण और कीर्तनमें भी एकको छोड़ देनेसे जीवकी वही अवस्था होती है। श्रवण और कीर्तन दोनोंही नित्य हैं। यह निरकाल

समभावसे चलेंगा। भगवान् वडे ही दयालु हैं, सुतरां उन्होंने हमलोगोंके एकमात्र मङ्गलका उपाय भगवत्‌कथा श्रवण कीर्तन ही सुयोग दिया है। भगवान्‌की दया है कि हमलोगोंके उपरान् होनेपर भी उसी उपायसे पूर्ण भगवान्‌को अनायास प्राप्त कर सकते हैं। पूर्णके निकट नहीं जानेसे पूर्ण मङ्गल प्राप्त नहीं होता। पूर्णके निकट खण्डानन्द वा परिमित चरितः पाया। हमलोगोंकी आशा नहीं मिलती। श्रीहृदयमें पूर्ण बस्तु हैं। श्रीचिन्मयदेवने दयाकर सर्वदा पूजना सत् करनेके लिये—सर्वदा सभीको हरिता कर लेके लिये आदेश किया है। जिन्होंने यथाशक्ति उनकी कथाका श्रवण किया है, वे सर्वदा पूर्ण प्राप्त कर पायेंगे। हरिकथा श्रवण कीर्तन करते हैं किंकर सत् हरिता कीर्तन नहीं करना होगा, ऐसा कोई मसाला नहीं है—हरिः सदा कीर्तनीयः। कीर्तन श्रवण करनेसे कीर्तन आरम्भ होता है, कीर्तन करनेसे स्मरण होता है। कीर्तनकारी जब कीर्तन करते हैं, उस समय हरिकी कथा स्मरण होता है। सुतरां निरन्तर कीर्तनही निरन्तर कृष्णस्मृति प्राप्त करनेका सहज उपाय है, यह अनायास ही अनुमेय है। जो सुमेधा हैं वे ही कृष्ण कीर्तन करते हैं; और कुमेधागण अन्यासिलापी हैं सुतरां उनकी कीर्तनमें रुचि नहीं है। श्रीवार्पभानवी सर्वदा ही कृष्णनाम उच्चारण करती हैं। वे साजान् कृष्ण भी नहीं हैं, फिर कृष्णके सिवाय दूसरा कोई नहीं है। श्रीवार्प-भावनी सुमेधा लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; और श्रीगौरमुन्दर इन सुमेधालोगोंके मूलपुरुष हैं।

कृष्ण कौन बस्तु हैं, यह हमलोग नहीं जानते, इसीलिये कृष्ण अपनी सर्वशक्ति नामसे अपर्णकर श्रीनामरूपसे जगत्‌में अवतीर्ण हुए हैं। गौण और मुख्यभेदसे भगवान्‌के नाम अनन्त हैं। गौणनामसे

शब्द और शब्दोंमें कुछ भेद है, किन्तु मुख्य नाममें शब्द और शब्दों अन्तर है। सबदाही कीर्तन करना होगा, नहीं तो इतर कथा हमलोगोंका ग्राम लेगी। यदि हमलोग हरिकथा श्रवण न करें तो अन्य कथा सुने बिना नहीं रह सकेंगे। बहुतेरे हरिकथा छोड़कर मोनधर्मावलम्बन करते हैं, यह कपटता और प्रतिष्ठा-भारता मात्र है। मोनी होनेसे श्रवण और स्मरणका द्वार भी रुद्ध हो जाता है। जो हरिस्मरणकी अवहेलना करते हैं, परममङ्गलमय हरिस्मृति अपेक्षा जिनको अन्य स्मृति अच्छी लगती है वे ही निर्व्रतता-प्रयासी और मोनी होकर श्रवण-कीर्तनका पथ रुद्ध करते हैं। यह बुद्धिमानका कार्य नहीं है।

श्रीमद्भागवत का कथन है—

“शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गुणतश्च स्वचेष्टितम् ।  
नातिदीर्घाण कालेन भगवान् विशते हृदि ॥”

हरिकथा-श्रवण कीर्तन ही साधुलोगोंका जीवन है। इसको छोड़कर वे लोग ठहर नहीं सकते। श्रवण-कीर्तन साक्षात् भगवत्-सेवा है। सुतरां भक्त भगवत्-सेवा छोड़कर किस प्रकार रहेंगे? हमलोग बद्धजीव हैं, इसीलिये हमलोगोंकी हरिकथा श्रवण कीर्तनमें रुचि नहीं है। जिनलोगोंकी हरिकथा श्रवण-कीर्तनमें रुचि है, उनलोगोंका इतर कथा श्रवण-कीर्तनमें रुचि नहीं होती। सुतरां साधुसङ्ग करना ही प्रयोजनीय है।

## सन्यास ग्रहण-लीलाके बाद श्रील आचार्यदेव

लोकशिक्षकवर पतितपावनशिरोमणि श्रीश्रील आचार्यदेवने जो सन्यासलीला प्रकट की है, उसपर विचार करते हुए श्री श्रीरूपानुगशुद्धभक्त सम्प्रदायके हृदयमें बहुतसी बातें उद्भूत हो रही हैं। नित्यासद्ध आचार्यवर्गके सन्यासलीलाका वैशिष्ट्य आध्यात्मिक और निर्विशेषवादी सम्प्रदाय अनुभव नहीं कर सकता। निर्विशेषवादी सम्प्रदाय कहता है, श्रीगमानुजाचार्यने अपनी पत्नीसे विवाद कर सन्यास लिखा था। यादवप्रकाश और कृष्णकण्ठके भयसे आत्म-गोपन किया था। श्रीमन्महाप्रभु कमलवाध्य जीवके समान मायावादी-सम्प्रदायके सन्यासी हुए थे। क्योंकि, “आमृत सन्यासी मायावादे भासि” प्रभृति महाप्रभुके स्वमुखसे निकली हुई उक्ति यह प्रमाण कर रही है। श्रील प्रभुपादने अपने स्वलिखित जीवनचरितमें लिखा है कि पुरीमें शुद्धभक्तिकी कथाका प्रचार आरम्भ करनेपर अन्याभिलाषी-सम्प्रदायने उनके ऊपर नाना प्रकारसे निर्यातन (शत्रुता)

आरम्भ किया। उस समय ठाकुर भक्तिविनोद के आदेशसे श्रील प्रभुपादको पुरी परित्याग कर श्रीगमानुजाचार्यके तिरुनारायणपुरमें बस करनेके समान श्रीमायापुरमें निर्जन भजन करना पड़ा था। प्रतीप प्रियनाथ प्रभृतिने श्रीश्रील प्रभुपादकी सन्यासलीलाका तात्पर्य न समझकर उनके चरणोंमें और भी भीषण अपराध किया। उसी आध्यात्मिक निर्विशेषवादी प्रियनाथके प्रत्युत्तर ग्रन्थमें और ‘श्रीसज्जनतोषणी’ ‘गौड़ीय,’ ‘नदिया प्रकाश’ प्रभृति संवाद पत्रके स्तम्भमें यह असंख्यवार खण्डित हुआ है। निर्विशेषवादी श्री श्रीरूप-सनातन और श्रीरघुनाथकी वैराग्य लीलाको मायावादीके फलगुत्याग और तपस्याको एक सा समझता है। क्योंकि, वे कृष्णभक्तिरसमयी विप्रलम्भ-लीलाकी कथा नहीं समझ सकते। परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवकी सन्यासलीलाके मध्यमें बहुत गूढ़ तात्पर्य भरा है, वह हमलोगोंके समान चुद्रवद्ध जीवकी समझ में नहीं आसकती है।

हमलोग कृतघ्न हैं, श्रील आचार्यदेव अहैतुक कृपामय हैं; हमलोग “कामुकाः पश्यन्ति कामिनीमय जगत्” मन्त्रमे दोषित हैं, श्रील आचार्यदेवने हमारे उसी जड़ काममें अन्धीभूत चतुको अप्राकृत प्रेमा-अनशलाकाके द्वारा निर्मल करनेके लिये सर्वदा चेष्टा की है; हमलोग इन्द्रियजज्ञानक विश्वास हैं, वे अयोक्तज्ञ ज्ञानके शिष्यादाता हैं; हमलोग कनक कामिनी-प्रतिष्ठाको ही-हरिभजनभित्तिका उपेय-रूपमें वरण (ग्रहण) करनेके लिये कृतमङ्गल्य हैं, और वे अनुकूलकृष्णानुसन्धानका श्रील प्रमुपादका प्रदत्त सर्व श्रेष्ठ उत्तराधिकाररूपमें वरण करनेके आदर्श-प्रदर्शनकारा हैं।

परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने हरि-शयन-कालमें अपना सन्यास-नाला प्रकट का है। आध्यत्मिक लोग हरि-शयन कालका कृष्णार्चनके प्रतिकूल समझते हैं। जिस समय हरि निद्रित हैं, उस समय हरिका अनुसन्धान करना बुरा है—यह उतजार्गाका विचार है। हरिक निद्रित होनेमें किम्बा गुरुगौराङ्गक इस संसारसे विदा ग्रहण करनेसे कनककामिनी-प्रतिष्ठाका भाग घंटवारा लेकर खूब प्रसन्न रहा जाता है। उस समय हरिक अनुसन्धानका क्या प्रयोजन है? हरिदास नामाचार्यके अस्तित्वका भी उस समय सहज ही लोप किया जाता है। कौशल और पङ्क्यन्त्रका आश्रय ग्रहण किया जाता है। मनसर रामचन्द्रखॉके समान नामाचार्यके चरित्र कलङ्कित करनेके लिये अनेक प्रकार अवैध कौशल और पङ्क्यन्त्रका आश्रय ग्रहण किया जाता है किन्तु हरिके दास इस समय जीवके जागरणका गीति गान करते अधिकतर कृष्णानुसन्धान लाला प्रकट करते हैं।

पतितपावनवर श्रीश्रील आचार्यदेवने श्रील गो-

पालभट्ट गोस्वामी प्रभुकी विरहस्मृति तिथिमें सन्यास लेकर श्रील भट्टगोस्वामी प्रभुकी रचित और श्रील ठाकुर भक्तिविनादकी अविष्कृत संस्कारदीपिका वा वैष्णवस्मृतिका कथा रूपानुग साधु लोगोंके चित्तमें उदीम का है। हरिभक्तवलासके उपक्रममें श्रीगोपालभट्टश्रीगोप्रिय प्रबोधानन्दके शिष्य और श्रीमन्नानन-रूप-रघुनाथके प्रियाचरण द्वारा एव वैष्णव-स्मृतिके रचयिता बतलाये गये हैं। अतएव श्रील गोपालभट्टगोस्वामी प्रभुकी विरहस्मृतिक साथ ही साथ श्रीरूपकी धारामें जा विप्रलम्बही स्मृति है एवं गौरवमार्गमें जो वैष्णव-स्मृतिके विचार हैं, उनका भी समावेश देखा जाता है, अर्थात् आचार्यदेवकी जो सन्यासलीला है वह श्रीश्रील गोपालभट्टके स्मृति-विधानसम्मत है, श्रीरूपकी उपदेशासृत धारामें निष्पन्न है एवं श्रीरूप-मन्नानन-रघुनाथक कथासृतक प्रवाहमें सर्वात्मनापन (सम्यक् रूपमें आत्माका शातल करने वाला) मुकुन्दमेवतत्रन है।

कृष्ण पञ्चमार्ति। ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्त-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रमुपादके आधिर्भावित-थिरूपमें धन्य हुइ है। कृष्ण पञ्चमीतिथिके साथ श्रीश्रील प्रमुपादके आधिर्भाव लीलाकी स्मृतिका समावेश (लगव) है। श्रील प्रमुपादने इस तिथिमें आधिर्भूत होकर अपने प्रेष्ठ निजजनको भक्त प्रसाद वितरण किया है।

“श्रीमद्भक्तिप्रसाद” नामके मध्यमें श्रीभक्तिविनाद-गौरवाणीकी प्रसन्नता और कृपाकी कथा है। ‘पुरी’ नामके साथ प्रेमभक्तिके मध्यमूल माधवेन्द्रपुरीका सम्बन्ध और धाराकी कथा एवं गया क्षेत्रमें श्री श्री-ईश्वरपुरीसे भगवान श्रीगौरमुन्दरकी दीक्षालीलाके मध्यमें वही माधवेन्द्रकी सम्बन्धधारा वा ब्राह्ममाध्व गौड़ीयान्ताय-धाराके प्रवाहकी कथा है।

गया धाममें गयासुर अर्थात् आध्यात्मिकता और निर्विशेषवाद असुरका विनाश अधोक्षज विष्णुके पादपद्मके द्वारा साधित हुआ है। विष्णुसुरका पुत्र गयासुर है। यह असुर किस प्रकार आध्यात्मिक और निर्विशेषवादीका आदर्श था, वह शस्त्रमें कहा गया है। गयासुरने प्रसन्नत्वमें पारंगत होनेका आदर्श प्रदर्शन किया था। इस स्थानमें श्रीगौर-सुन्दरने कर्मपाण्डका स्पष्टन कर चिद्विलाससिद्धन्तके दिव्यज्ञानकी कथा प्रकाशकी थी। इसस्थानमें निरञ्जना वा विरजानदी निर्विशेषवादी बौद्धगणोंकी गति और चिद्विलाससिद्धान्तमें प्राप्तिप्राप्त वैष्णव-लोगोंके विचारका वैशिष्ट्य निर्देश कर रही है। गयाधाममें “आर्य दीनदयार्द्रनाथ हे मथुरानाथ कदाथलोक्यसे।” यह विप्रलम्भगीति कीर्तन करने-वाले श्रील माधवेन्द्रपुरीकी जो प्रेमासुतधारा, प्रवाहित हुई थी, वही विष्णुपाद परमहंस परिव्राजका-चार्यवर्य अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिसमाद पुरी गोस्वामी प्रभुमें प्रकाशित होकर भक्तिविनोदाश्रयका नित्यत्व नगक्षण कर रही है।

आचार्यदेवने अधोक्षज श्रीगदाधरपादपद्ममें आध्यात्मिकता और निर्विशेषवादको निराश करके भी अधोक्षज मुकुन्दसेवनव्रतमें दीक्षित होनेकी लीला प्रकट कर सम्बन्ध विज्ञानक्षेत्र काशीमें वैराग्ययुक्ति भक्तिरसप्रदाता श्री श्रील मनतनप्रभुकी कृपासे अभिषिक्त होनेकी लीला और उसके बाद अभिधेय विज्ञानक्षेत्र प्रयागके दशाश्वमेधमें श्रीरूपके श्री श्रीराधागोविन्दकी सेवामृतमें आत्माके निर्माजित होनेकी लीला प्रकटकर प्रयोजनक्षेत्र श्रीव्रजमण्डलमें अपने रूपानुगवरत्वका परिचय प्रकाश किया है।

उत्तर-पश्चिम प्रदेशके विभिन्न मठोंके सेवकोंने जो विवरण प्रेरण किया है, वह पाठ करनेसे पापाण-

हृदयभी विगलित होता है। काशी श्रीसनातन गौड़ीयमठसे श्रीपाद-नेत्रानन्द ब्रह्मचारी भक्तिमुन्दर-प्रभुने लिखा है :—

“परमाराध्यतम श्री श्रीलआचार्यदेवके गयामें मन्यामलीला प्रकट करनेके दूसरे दिन अर्थात् २३ आपाढ़ शनिवार को १०½ बजे काशीधाममें शुभविजय करनेसे मठके सेवकवृन्द, रायबहादुर गुरुचरण क्षाविय, शेठ जयगोविन्दलाल, श्रीकृष्णचन्द्रदास आधिकारी प्रभृति बहु विशिष्ट सज्जनोंने श्रीलआचार्यदेवका श्रीपादपद्म अभिनन्दन किया। श्रील आचार्यदेव श्रीसनातनगौड़ीय मठमें उपस्थित होकर श्रीवृषहके सम्मुख कटे हुए केलके समान माष्टांग दर्शित हुए एवं उन्होंने वन्दनाकी। दोपहरको श्रीमठमें प्रसाद सेवाके लिये अनुरोध किये जाने पर श्रील आचार्यदेवने सधुकराभिज्ञा संग्रह करनेकी लीलाका आदर्श प्रदर्शन किया और भिन्न भिन्न सज्जनोंके गृहमें हरिकथा-कीर्तन कर भिज्ञा संग्रह की। मठमें जो थोड़ी देर तक ठहरे उसमें सर्वथा समागत सज्जनवृन्दोंके निकट अविश्रान्तभावमें हरिकथा कीर्तन की। इसके बाद श्रीमनातन-शिष्याक्षेत्र श्रीचैतन्यवट दर्शन करनेके लिये गये एवं रातमें नव बजे तक निरन्तर हरिकीर्तन किया। कई सज्जन और मठसेवकगण उनकी इस सुगम्भीर जगन्मङ्गल-लीलाके दर्शनसे आनन्दित हुए; किन्तु उनकी आश्चर्यमय वैराग्य दर्शनसे महापापण्डका हृदय भी विदीर्ण हो जाता है। केवलमाव बिदण्ड और कौपीन वहिर्वासके सिवाय उनके साथ और कोई द्रव्य नहीं है। ठीक महाप्रभुके समान कृष्णप्रेममें उन्मत्त हैं; मुखमें केवल ‘कहाँ कृष्ण’ यही वाणी है। ‘कृष्ण’ प्राप्त करना ही होगा; वहाँ जानेसे कृष्ण पाऊँगा ?” केवल इसी प्रकार कह रहे हैं, सभीका उपदेश कर

रहे हैं—‘कृष्णको पुकारो, और कुछ न चाहो और न बोलो ।’ श्रील आचार्यदेवने काशीसे २४ आपाठ रविवारको इलाहाबाद शुभ विजय किया है ।

इलाहाबादसे श्रीपाद अनुलानन्द ब्रह्मचारी भक्तिकङ्कण भक्तिशास्त्रीजाने एक पत्र लिखा है:—

“परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने यहां शुभ विजय कर उसी दिन ब्रजमण्डलकी ओर शुभ विजय किया है । उनकी यह लीला देखकर सभी आवाक हुए हैं । यहां आकर मधुकरी-भक्ता ग्रहणलीला प्रकाश कर कुछ प्रसाद ग्रहण करनेके बाद दशाश्व-मेधघाटमें जाकर उन्होंने ‘श्रारूपमञ्जरीपद’ प्रभृति सङ्गीत कीर्तन किया । उसी दिन पाँच बजे ब्रज-मण्डलकी ओर यात्रा की ।”

श्रीधाम वृन्दावनके प्रेरित संवादसे जाना गया है कि श्रीश्रील आचार्यदेव किमाको साथ न ले अकेला ही ब्रजमण्डलके विभिन्न वनोंमें कृष्णानुसन्धान लीला प्रकटकर विचरण कर रहे हैं । श्री श्रील आचार्य-देवका अदृश देखनेसे ठाकुर श्रील नरोत्तमका यह आन्तिमयी गीति हृदयमें मूर्तिमती हो उठती है—

हरि हरि, कवे मोर होइवे मुदिन

फल मूल वृन्दावने, खाइया दिवा अवसाने, (शेषमें)

अमिवो होइया उदासीन ॥

शीतल यमुनाजले, स्नान करि कुतुहले ।

प्रेमावेशे आनन्दित होइया ।

बाहर उपर बाहु तुलि, वृन्दावने कुलि कुलि,  
कृष्ण बोलि बेड़ावो (भ्रमण करंगा) कान्दिया ॥

देखिवो मङ्गेत स्थान जुड़ावे तापित प्राण,

प्रेमावेशे गड़ागड़ी दिवो ।

कहां राधा प्राणेश्वरी, कहां गिरिवरधारी,

कहां नाथ बोलिया डाकवो ॥

माधवो कुञ्जोर पारि, मुखे वसि शुकमारी,

गाइवेकराधाकृष्ण रस

नरमूल वसि ताहा, मुनि जुड़ावे हिया ।

कवे मुखे गवावो दिवस ॥

हरि हरि ! कवे (कव) हव (होऊगा) वृन्दावनवामी ।

निराखवो नयने युगल-रूपराशा ॥

त्याजिया शयनमुख विचिव पालङ्ग ।

कवे बजेर भूलाय धूमर हवे (होगा) अङ्ग ॥

पट्ट रस-भोजन दूरे परिहरि ।

कवे बजे मांगिया खाइवो माधुकरी ॥

परिक्रमा करिया बेड़ावो बने बने ।

विश्राम करिव जाइ यमुनापुलने ॥

लोकांशिक श्री श्रील आचार्यदेवका यह लीला-दृश मेरे सदृश जड़सम्भोगवादी और आध्यात्मिक निर्विशेषवादीके स्पष्ट और प्रच्छन्न जड़सम्भोगवृद्धि-को दण्डित कर उनके श्रीश्री पादपङ्कजमें सम्यक् प्रकारसे शरणागत करे ।

## श्री श्रील आचार्यदेवके उपदेश

(स्थान अविद्या हरण न टयमंदिर (श्रीचैतन्यपीठ)

काल १ मार्च १९३६ अपराह्न) •

श्रीयुक्त ब्रजेश्वरीबाबू—दीक्षागुरु और शिक्षागुरु-में क्या भेद है और क्या विशेषताएँ हैं ?

श्रील आचार्यदेव—शिक्षागुरु और दीक्षा गुरु

दोनों एक अद्वयज्ञान हैं । दीक्षा गुरु सम्बन्धाता और सम्बन्ध ज्ञान दाता है ।

गुरु तीन प्रकारके हैं श्रवण गुरु, शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु । श्रवण गुरु वर्त्म प्रदर्शक गुरु हैं दीक्षा गुरु एकही होते हैं दो नहीं हो सकते । श्रवण

गुरु और दीक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं। श्रवण गुरु preliminary आरम्भिक बातें सिखलाकर प्रारम्भिक योग्यता देते हैं। जो मंत्र देते हैं वह दीक्षा गुरु हैं वेही सम्बन्ध ज्ञान भी देते हैं। आ मूर्ति के प्रति क्या कर्तव्य है वे बतला देते हैं।

वे अर्थ पञ्चक की शिक्षा देते हैं, संस्कार देते हैं।

शिक्षा गुरु हरिभजन की बातें बतलाते हैं। किस प्रकार भजन किया जाता है इसकी शिक्षा देते हैं। शिक्षा गुरु और दीक्षा दोनों एक हो सकते हैं इसमें दोनोंमें से किसी एककी बड़ाई दूसरेकी छुटाईकी बात नहीं है।

दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरुके बीच दुनोयही बड़ाई छुटाई (Mandane Superiority and Inferiority) का विचार नहीं है।

(काव्य वस्तु एक है) दोनों ही भगवन् प्रेष्ठ है। भगवन् प्रेष्ठोंमें बड़ाई छुटाईका भेद नहीं है। जिस प्रकार दीक्षा गुरु यदुनन्दन आचार्यक सम्बन्धम श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी प्रभुने कहा था:—

नामश्रेष्ठं मनुमपि शशिपुत्रमत्र स्वरूपम् ।

रूपतस्याग्रजमुरुपुगीम् माथुरीम् गोष्ठ वाटीम् ॥

राधाकुण्डं गिरिवर महा राधिका माधवा शाम् ।

प्राप्ता यस्य प्रथित कृपया श्रीगुरुं तं नतोऽस्मि ॥

श्रील यदुनन्दनाचार्य श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके शिक्षा गुरु थे। दीक्षा गुरुने इन्हीं तीनोंकी पता बतलाई है ये ही तीनों आराध्य वस्तु हैं।

श्रील दास गोस्वामी प्रभु, गोष्ठ वाटी राधाकुण्ड, गिरिराज गोवर्धन और राधामाधवकी सेवा पाकर भी “सेवाशाके लिए” क्यों कहा है? सेवा पाकर और “सेवाशा” अर्थात् विरह क्यों? वे कृष्णके प्रियतम हैं तौभी “पालिया” ऐसा अभिमान नहीं करते बल्कि कहते हैं कि “पार्वेगे” यही आशा, है।

‘पालिया’ यह बात सम्भोग है।

दीक्षा गुरु शिक्षा गुरु हो सकते हैं। शिक्षा गुरु अभिवेय दाता है अनर्थ निवृत्तिके बाद अभिवेयके देनेवाले हैं।

शिक्षा गुरु नाम भजनकी शिक्षा देते हैं। दीक्षा गुरु दिव्य ज्ञान वा सम्बन्ध ज्ञानके देनेवाले हैं। वे मंत्र देकर संसार मोचन करते हैं वे मंत्र द्वारा (Tendency to measure the universe) विश्वको नाप लेनेकी प्रवृत्ति और (Predominating mood) भोक्तृवाभिमानका नाश करते हैं।

मंत्र है भगवन् शब्द वा भगवन्नाम। मन्त्रमें नमः वा स्वाहा शब्द चतुर्थि विभक्तिसे है।

केवल भगवन्नाम (भजनकी बात) जो विशुद्ध अभिवेय है उसे अनर्थ निवृत्तिके बाद शिक्षा गुरु बतलाते हैं। अभिवेय और प्रयोजन, शिक्षा गुरु देते हैं। भागवत परम्परा ही शिक्षा गुरु परम्परा है यह दीक्षा गुरु परम्परा नहीं है।

श्रील कृष्णदासके प्रियतम नरात्तम थे नरात्तमके दीक्षा गुरु लाकनाथ थे। नरात्तमके प्रिय थे विश्वनाथ। गंगानारायण प्रभुनि तान पुरुषोंके बाद विश्वनाथ थे। यह पाञ्चरात्रिक परम्परा नहीं है यह शिक्षा गुरु परम्परा है।

ठाकुर भक्ति विनोद श्रील जगन्नाथ दासके पाञ्चरात्रिक शिष्य नहीं थे वे वेदान्त स्यमन्तकके रचयिता श्रीराधादामादरके शिष्य थे। वे राधादामादरजी बलदेवके दीक्षा गुरु थे। श्रील बलदेव श्री विश्वनाथके अनुगत थे।

सम्बन्ध ज्ञान दीक्षा गुरु देते हैं। नाम भजनकी शिक्षा देते हैं शिक्षा गुरु मन्त्र दीक्षा और भजन शिक्षाके बाद और एक शिक्षा है।

स्वरूप सिद्धिके बाद यदि सांभग्यसे लीला प्रवेश हो अर्थात् वस्तु सिद्धि हो तब भी शिक्षा गुरुके साथ संग करनेकी आवश्यकता रहती है।

## SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

## SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs 2-8-0.

## RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

## THE BHAGBAT

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Peabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick, paper bound—Twelve Ans.

( बंगल'में )

## श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन् मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत ग्रन्थ व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्त्यादियुक्त । प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तत्त्वपर्यादि विवृत हैं । श्लोकमूर्ची, विषयमूर्ची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित । प्रथमसे १२वां स्कन्धतक लुप्त सम्पूर्णरूपमें शेष हो गया है । भिन्ना प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०० स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र ।

## श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविगज गोस्वामीकृत । श्रीभक्तविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' अति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं । श्लोककी सान्ध्य व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पद्याके पूर्व संक्षिप्त अभिधेय संयोजित हैं । प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है । श्लोक, पद्या, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृद्ध सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी—समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है । उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है—ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न है । भिन्ना बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र ।

## श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौडीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आद्यतन—कांडन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १३४० पृष्ठ भिन्ना—६) मात्र ( बिना बंधा हुआ ) ।



## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—( तृतीय खण्ड )

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामों व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जिह्वा भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिन्ना १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

### सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमन्नक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मलसर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड गायल ८ पेजी आकारमें एन्स्टक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिन्ना ४)

### ‘सामयिक-संख्या’—गौड़ीय

सामयिक संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ग व एकवर्ण चित्रोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिन्ना ॥) आना ।

### ठाकुर भक्तिविनोद

श्रुत्यानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिन्ना ॥) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता ( बागबाजार ) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

### अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी-टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिन्ना २) मात्र ।

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

५ दामोदर  
गौरानन्द  
४५३



कार्तिक कृष्ण ५  
संवत्  
१८८६ वि०

प्रति संख्या } स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । } वार्षिक  
७॥ } अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसोदति ॥१॥ } १)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणदि-लक्षणा फलाभिमन्धान-रहिता ऐकान्तिकी  
स्वाभाविक निरपेक्ष भक्ति उद्भूत होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—  
इसी भक्तिके बलमे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रमन्नता लाभ करती है ।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari,  
Bhaktishastri B A.

## विषय सूची

| विषय                         | पृष्ठांक | विषय                       | पृष्ठांक |
|------------------------------|----------|----------------------------|----------|
| श्रीमद्भागवत                 | .... १३७ | द्वितीय वैभव               | .... १४७ |
| श्री श्रील आचार्यदेवके उपदेश | .... १४२ | लोकशिक्षक ठाकुर भक्तिविनोद | .... १५० |
| प्रथम वैभव                   | .... १४६ |                            |          |

## भक्तिके अन्यान्य पत्र

१ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज सम्पादित श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होतो हैं। वार्षिक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका। प्रति एकादशीको कलकत्ता भिक्षा डाक व्यय समेत ६) मात्र।

बागबाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होते हैं। ४ परमार्थी—श्रीयुक्त रघुनाथ महापात्र द्वारा सम्पादित उत्कल पाक्षिक। कटक श्रीसच्चिदानन्द मठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा १॥ मात्र डाक व्यय समेत।

२ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला साप्ताहिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा ३) डाकखर्च समेत।

३ दैनिक नदीया-प्रकाश (बंगभाषामें प्रकाशित)—बंगला पाक्षिक। कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा १॥०) मात्र डाक व्ययके साथ।

४ श्रीगौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला पाक्षिक। कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा १॥०) मात्र डाक व्ययके साथ।

### SREE CHAITANYA MAHAPRABHU

The teachings and characteristics of Sree Manmahaprabhu have been clearly published in this book. It has been written by Tridandi Swami Sreemad Bhakti Pradip Tirtha Maharaj. Price Rs. 4/-

To be had:—Nand Kishore Bhaktishastri,  
Sree Jogpith, Sree Mandir  
P. O Sree Mayapur (Nadia)

### वैष्णवाचार्य श्रीमध्व

गौड़ीय संपादक-सम्पादित, इस ग्रन्थमें श्रीमध्वाचार्यका जीवन चरित, सिद्धान्त और शिक्षा भली भाँतिसे आलोचित हुआ है। यह एक अपूर्व मौलिक विराट् ग्रन्थ है। भिक्षा २) मात्र।

### श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित पद्यावली श्रील आचार्यदेव-विरचित "सौरभ" नामक भाष्यके साथ प्रकाशित हुआ है। श्रील प्रभुपादके बहुतसे अप्रकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं। भिक्षा ॥०) आठ आना मात्र।

### श्रीश्रीभक्तिविनोदवाणीवैभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंसे सम्बन्ध, अभिषेक और प्रयोजनाकारमें प्रश्नोत्तररूपसे उनका वाणी-रङ्ग तन। भिक्षा ३) मात्र।



वप ५

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

संख्या १०

कार्तिक कृष्ण ५, १९३३ स० १९६६ वि०, २ नवम्बर सन् १९३६ ई०

## श्रीमद्भागवत

(ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद )

श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें कृष्णकथा वर्णन की गयी है। उस कृष्णकथाकीर्तनके कानसे प्रवेश करनेसे मात्मान् कृष्णकी स्मृति होती है, उस समय जड़कथाके प्रवेशरूपी मधुकैटभ नामक अगुरु का विनाश होता है। यही कर्णवेध संस्कार है। चिन्मय कर्ण जड़से आवृत है। विचार करनेपर समझमें आता है कि भोगमस्वन्धी बातें हमारे हृदयको चञ्चल कर देती हैं। ऐसी अवस्थामें कृष्णसे भिन्न विषय ही हमलोगोंका लक्ष्य होता है। श्रद्धापूर्वक श्रीमद्भागवतका श्रवण करनेसे जीवके शुद्ध और निर्मल हृदयमें भगवान्के वैकुण्ठ नाम ग्रहण करने, वैकुण्ठ रूप और गुण श्रवण करने, वैकुण्ठभक्तिक कीर्तन श्रवण करने और वैकुण्ठलीला कथा श्रवण

करनेकी योग्यता पैदा होती है। उस समय उसका हृदय वृन्दावन हो जाता है। वहाँपर कृष्णचन्द्रकी अर्वास्थिति होती है।

जो व्यक्ति मूल छोड़कर शाखा पकड़नेकी नीति का अवलम्बन करके अनेक कलाओंका ज्ञान प्राप्त करनेका श्यत्न करता है वह श्रीमद्भागवतको अनेक शाखोंमेंसे एक शाखा समझता है, अतः वह धर्मच्युत (पथभ्रष्ट) होजाता है और इसी कारण श्रीमद्भागवत का तात्पर्य और श्रीभगवान्की लीलाको किसी प्रकार नहीं समझ सकता। उसकी जन्म-जन्मान्तरवाली वासना भागवतके तात्पर्यको समझने नहीं देती। वह भागवत पाठ करके भी कृष्णसे भिन्न वासनाके कारण भक्तिहीन दोषमें दूषित रहता है।

भागवतके तात्पर्यमें वेश न पाकर केवल शब्दो-  
द्दिष्ट व्यापारों द्वारा जटुवामनामें आवद्ध होकर जो  
समझनेकी चेष्टा करते हैं, वे भगवत् सम्बन्धी कथामें  
किसी प्रकार प्रवेश नहीं पा सकते ।

सारे वेदशास्त्र श्रीमद्भागवतकी 'प्रेम' रूप प्रयोजन-  
तत्त्व कहते हैं । प्रयोजनमें साधारण भोगीसम्प्रदाय  
धर्मार्थकामको समझते हैं, त्यागी-सम्प्रदाय मोक्षको  
पुरुषार्थ कहते हैं, किन्तु भोगी और त्यागी सम्प्रदाय-  
को छोड़कर अन्य सुनिर्मल आत्माय भगवद्भजनमें  
पारङ्गत होकर चाणोवेदोंमें धर्मार्थ-काम-मोक्ष प्रसू-  
ति चतुर्वर्गका विचार छोड़कर श्रीमद्भागवतके  
कृष्णप्रेमको ही प्रयोजन समझते हैं । कर्म, ज्ञान,  
योग, स्वाध्याय पशुति अभिधेय समूह यदि सचमुच  
पुरुषार्थ संग्रह करनेके लिये उत्कण्ठित हों तो वे अपना  
आस्तित्व त्यागकर भक्तिमें ही लीन हो जाते हैं ।

वेदशास्त्रकी दृष्टिके साथ उपमा दी गयी है ।  
शुकदेव उसी दृष्टिके मथने वाले हैं, उसमें वेद-तात्पर्य  
सकल श्रीमद्भागवतरूपमें उद्भूत हुआ । श्रीपरीक्षितने  
विषयोंमें निरुक्त होकर सारे वेदोंका तात्पर्य श्रीशुक-  
देवके उपदेशों द्वारा ही प्राप्त किया था ।

मेरठ जिलेकी सीमापर हस्तिनापुर है । आधुनिक  
मोजपफरनगर जिलेकी सीमापर भोपा थानेके  
अन्दर भुवाइहेड़ी स्थानके निकटवर्ती शूकरतल  
ग्राममें गङ्गातटपर ही श्रीपरीक्षित महाराजने  
अनशनव्रत धारणकर श्रीशुकदेवजीमें समग्र  
वेद-तात्पर्य एक सप्ताहके अन्दर प्राप्त किया था ।  
दृष्टिके मथनेमें जिस प्रकार सारांश सकल  
निकलता है, उसी प्रकार वेदके कर्मकाण्ड और  
ज्ञानकाण्डके असार अंशोंकी तुच्छता दिखलाने  
हुए, प्रेम-भक्ति साररूपमें प्रतिपादित हुई थी ।  
परीक्षितने और सब कथा छोड़कर वही सार ग्रहण

किया था उसीलिये सकल भागवतगण सारग्राही हैं ।  
विद्वद् भागवतगणने असन्तु संमर्गसे फल-भोगवाद  
और फलत्यागवादके विचारमें लगकर भारवाहीरूप-  
में अपना अधःपतन ला उपस्थित किया है । असार-  
मिश्रित किञ्चित् सारकी अपेक्षा असार-रहित विशुद्ध  
सार वा निचोड़ही ग्रहण करना चाहिये । वही  
आत्मविद्वद् लोगोंका भोग्य और ऐय है । असार-  
ग्राहीगण फलभोगवादके कारण स लसाधमें भारवाही  
एवं फलत्यागवादके कारण वाहरमें 'भारहीन' होनेका  
अनुभव करंहुए भी सूक्ष्मभावमें गुरुभारवाही हैं ।  
जोनोंही सार-ग्रहण करनेमें पराङ्मुख हैं ।

भगवान् तथा भक्तमें भेदबुद्धि रखनेके कारण  
जो विष्णु-वैष्णव-तत्त्व नहीं जानते, वे हर प्रकार  
अपने अमङ्गलका ही आवाहन करने हैं । लीलामें-  
प्रविष्ट नहीं होनेतक भगवान्की पूर्ण कथा सुन्दररूपमें  
रही नहीं जा सकती । भगवत्कथामय भागवत  
शुकदेव ही जानते हैं, और कोई नहीं जानता । एक  
कहावत है कि महादेवने एक समय कहा था : मैं  
भागवत जानता हूँ और शुकदेव भागवत जानते हैं ।  
लेखक श्रीव्यासदेवने गुरुपदाश्रय करके विशुद्ध  
गुरुसेवाके अभावके कारण कुछ दिनोंतक धर्मार्थ-  
काम-मोक्षके सेवकोंके उपकारार्थ शास्त्र ग्रन्थोंदि-  
रचनाकी थी ; किन्तु मन्त्राश्व-समूहका एकमात्र  
तात्पर्य श्रीमद्भागवतकी रचना करनेके समय उन्होंने  
धर्मार्थ-काम-मोक्षाधिकारी युद्धका आश्रय करके  
कृष्णलीलाका वर्णन किया था, तौमी चूँकि उन्होंने  
साधारण लोगोंकी अयोग्यताका ध्यान रखकर  
श्रीवार्पमानदीदेवोंकी कथाकी प्रधानता न ही और  
उसीलिये अपने वर्णनमें जो सारवर्तिचिह्नतावा  
प्रकाश किया है उसमें उन्होंने ऐसा जतलाया  
है मानो कुछ वे जानते और कुछ नहीं जानते थे

किन्तु नृसिंहोपासक त्रिदण्डीस्वामी श्रीधरने भगवत-  
कृपासे सेवोन्मुख होकर भागवतका तात्पर्य  
सुन्दररूपसे जाना था इसीमें गोपीजनवल्लभकी  
सेवाकी कथा उन्होंने खूब समझी थी। भक्तिके एक-  
मात्र रत्नक श्रीधर और उनके सहोदर भाई लक्ष्मीधर  
ने नाम भजनके प्रभावसे भगवान्‌के रूप, गुण,  
परिक्लृप्त-वैशिष्ट्य तथा लीलामें जो अधिकार दिख-  
लाया है, उसे श्रीधर विरोधी पर श्रीधरटीकापाठकारी  
भोगी तथा मोक्षकामी सम्प्रदाय अभक्त होनेके कारण  
नहीं पा सका है और उनकी उस कृपासे सदा वर्जित  
रहगया है। कतिप्राधिकारियोंकी चेष्टासे भगवान्‌के  
कुछ परिचयकी बात रहनेपर भी भक्तोंका निगदर  
करनेके कारण वे भगवत्‌सेवाके कतिप्राधिकारमें भी  
वर्जित हो जाते हैं। इसलिये परिक्लृप्त-वैशिष्ट्य तथा  
विषय-आश्रय-विचारमें जिन लोगोंके भीतर भेदज्ञान-  
जनित अमङ्गल प्रवेश कर गया है, वे प्रेमभक्तिको  
पूर्ण प्रयोजनीय नहीं समझते। अतएव वे मानव-  
जीवन प्राप्त करके भी केवल आत्मघाती ही हैं।

जहांपर अद्वयज्ञान ब्रह्म अनियोंके जाननेकी वस्तु  
है वहांपर ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता इन्हीं तीनों अवस्थाओंका  
निर्वैशिष्ट्य प्राप्त करना ही चरम आराध्य व्यापार है।  
योगी गर्भोदकशायी विष्णुमें संयुक्त होनेका प्रयत्न  
करते हुए केवल्य प्राप्त करनेके लिये यत्न करते हैं।  
भगवद्भक्त वैसा नहीं करते। श्रीमद्भागवत  
ग्रन्थमें भगवान्‌की लीला, परिक्लृप्त-वैशिष्ट्य, अखिल  
सद्गुण भगवद् रूप एवं भगवान्‌के नामादिका  
उल्लेख है। नित्यमुक्त भगवद्भक्त एवं साधनामिदं  
भक्तगण तथा भक्तिपरायण सेवकगण भगवान्‌की  
नित्यकाल सेवाको छोड़कर और कुछ प्रयोजनीय  
नहीं समझते। सुतरां नित्य सेवकके लिये सेवा  
विचार छोड़कर और कोई बात भागवतमें नहीं है।

जो भागवतमें भगवान्‌की नित्यसेवाको छोड़कर  
और कुछ खोजते हैं उन्हें नितान्त मूर्ख समझना  
चाहिये। जो भक्त नहीं हैं वे सेवा धर्मसे हटकर  
अन्याभिलाष, कर्म-फल-लाभ, निर्भेदब्रह्मानुसन्धान,  
प्रभृति भागवतमें दृढ़ते और उसके प्रचार करनेकी  
चेष्टाकरते हैं किन्तु असल उद्देश्यमें भ्रष्ट होकर  
भागवतके असली उद्देश्यको ग्रहण करनेमें वर्जित  
हो जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने भागवतकी अभक्तियुक्त  
व्याख्या सुनकर कहा था, कि जिस भागवतमें पाठकों-  
के हृदयमें अभक्ति पैदा होती है वज्रनाके भावमें  
परिपूर्ण उस भागवतका कोई प्रयोजन नहीं। अतः  
उस भागवत ग्रन्थको भगवद्भक्त नहीं समझना  
चाहिये और उसे पार्थिव पदार्थ और नश्यत समझ-  
कर फाड़कर फेंक देना चाहिये। श्रीमद्भागवतको  
भोग्य वस्तु समझकर जो उसका दर्शन करते हैं उनके  
उस दर्शनसे उनकी उत्तरोत्तर कामवृद्धि ही होती है।  
इसलिये भोगवृद्धिमें विषयी लोगोंको भागवत पाठमें  
हटानाही भगवान्‌का उद्देश्य है।

सभी शास्त्रोंमें प्रमाणित होता है कि भोग और  
त्याग तुल्य बनी रहने तक श्रीमद्भागवतका विचार  
कभी किसीको समझमें नहीं आसकता। इसीलिये  
जड़विद्या जड़तपस्या, जड़वस्तुमें प्रतिष्ठाकी आशा  
जबतक रहेगी जबतक चिन्तामें परेचाले राज्यमें  
अवस्थित भगवत्‌कथाके समझनेकी किसीको भी  
सम्भावना नहीं होती। जो लोग भागवतको भोग्य  
वस्तुओंमेंसे एक समझकर उसमें अधिकार प्राप्त कर  
लिया है ऐसा समझते हैं वे भागवतके किसी अंशको  
नहीं समझ सकते। श्रीमद्भागवत जिस वस्तुको  
प्रतिपादित करनेके लिये लिखा गया है, वह प्रमेय  
वस्तु कभी जड़ इन्द्रियोंके अधिकारकी वस्तु नहीं  
हो सकती। जो श्रीमद्भागवतके कीर्तनको साक्षात्

भगवद्विग्रह समझते हैं और उसे केवल प्राकृत ग्रन्थ मात्र नहीं समझते और श्रीमद्भागवतके विचारके द्वारा अपने जड़स्थित बुद्धि-दोषको निर्यामन करते हैं, वे श्रीमद्भागवतका एकमात्र प्रयोजन सर्वसार भगवद्भजनक ही है यह समझ सकते हैं। अतिशय प्रतिभा सम्पन्न, सर्वगुणान्वित, ज्ञानवान् पण्डित होकर भी श्रीमद्भागवतके अर्थ ग्रहण करनेमें भूल कर सकते हैं; ऐसे पण्डितोंके गौरवको बढ़ानेके लिये जो प्रयत्न-शील हैं, न्याय तथा अन्यायके विचारकर्त्ता वा पुण्यकार तिग्मकार-दाला यम उसको दण्ड देते हैं। भक्तिरहित पण्डित "हमने भागवतमें अधिकार प्राप्त कर लिया है" ऐसा मनमें समझते हैं पर भक्तिके मूल आश्रयवस्तुकी निन्दा करनेके कारण वे कभी भागवतके अधिकारी नहीं हो सकते।

श्री मद्भागवत ग्रन्थ भगवत्कथामय है अतः दूसरे दूसरे ग्रन्थोंमें पूर्ण भिन्न है। ऋक् मन्त्रमें हमलोग 'भग' नामक प्रकाशमय देवताकी बात देखते हैं। भगवत् शब्दमें हमारा भी उसी भगदेवतामें मतलब है कि नहीं यह सोचनेकी बात है। अर्थमा, विद्यमान, सविता प्रमुख देवगण-सदृश भगदेव देवश्रेणीमें गणने योग्य हैं एवं ऐसे भगवान्की कथाएँ ही श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें स्थान पाय है, ऐसा मनमें विचार हो सकता है। किन्तु वर्तमान श्रीमद्भागवत-ग्रन्थमें उस प्रकारके आंशिक प्रतिनिधिपण भजनीय वस्तुका ईश्वरत्व सम्पादित नहीं हुआ है।

पाठकोंके मनमें ऐसी भवना भी उठ सकती है कि भगवद्वस्तु जानने योग्य प्राकृत वस्तुओंमेंसे एक हैं। किन्तु श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य स्वयंरूप भगवद्वस्तु अप्राकृत, अतीन्द्रिय तथा अधोक्ष्ज है। पाठकोंके मनमें पुनः ऐसा भी विचार आ सकता है कि 'अपरा' विद्याकी श्रेणीमें उल्लिखित ऋक्, साम, यजुः अथर्व

एवं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष प्रमृति वेदाङ्ग भी वेदानुस्य वेदानुशास्त्र हैं। वस्तुतः ऐसी बात नहीं। ये जगज्ज्ञानमय अर्थात् परिवर्तनशील हैं; किन्तु भगवद्वस्तु कालक्षेपमें नाश होनेवाली नहीं हैं। जगज्ज्ञानके अन्तर्गत नहीं हैं। अक्षर और अच्युत वस्तुकी आलोचना वा व्याख्या वा वर्णन जिस शास्त्रमें होती है वह शास्त्र पराविद्याके अन्तर्गत है। यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ उन पराविद्या शास्त्रसमूहोंमें शिरोमणि है। आधुनिक तार्किक मनमें सोच सकते हैं कि मानव सभ्यताका अदि ग्रन्थ भारतीय ऋग्वेदमंहिता ही है। उस सर्वप्राचीन आदि ग्रन्थके पीछे जो सब ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं वे अपेक्षाकृत नये तथा आधुनिक ग्रन्थ हैं। उनलोगोंमेंसे कोई ऐसा भी कह सकते हैं कि यह पौर्वाणिक ग्रन्थोंका कोटिमें गिनाजाने वाला एक शास्त्र है और यह भी कि जब इसमें बौद्धार्थ अन्य शास्त्रोंकी समालोचना की गया है तब उनके पीछे यह ग्रन्थ लिखा गया होगा। कुछ लोग ऐसा भी समझ सकते हैं कि नाम्नपणी, कृतमाला वा पराश्विनी नदी तीरवासी किसी लेखकने अपने देशकी मंहिमा गान करनेकी उच्छ्वासमें श्रीमद्भागवतकी रचना की है। फिर दूसरे दूसरे पुगणोंकी प्राचीनता तथा उनकी लेखन प्रणालीसे इसकी प्रणालीका मिलान करके यह भी कहा जा सकता है कि दूसरे पुगणोंकी अपेक्षा यह पीछेका रचा हुआ है। जो हो अश्रौत-पन्था ऐसेही अमंग्य विवाद पूर्ण युक्तियोंके बलपर श्रीमद्भागवतको अन्य पुगणोंकी अपेक्षा आधुनिक वा मध्ययुगीय समझ सकते हैं किन्तु वास्तवमें ऐसी धारणाओंके विरुद्ध नीचे लिखी हुई कई बातोंपर ध्यान देनेपर दूसरे निर्णयपर पहुँचना होगा।

श्रीमद्भागवतमें जिस विषयका वर्णन किया गया

है, उसकी प्रतिपादनप्रणालीमें हमें ज्ञान होता है कि मानव सभ्यताकालके भीतर जिन ग्रन्थोंका निर्माण हुआ है उनमें सर्व प्राचीन ग्रन्थके प्रतिपाद्य देवगण इन्द्रिय-ग्राह्य द्वितियाभिनिवेशके जाज्वल्यमान दृष्टान्त मात्र हैं। ऋगादि-संहिता प्रतिपाद्य-विषयमें अलौकिकताका अधिक अवकाश नहीं है। उसके बादके सूत्र इत्यादिमें भी जो आधुनिक संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं उन्हींकी बातोंके मारका वर्णन मध्ययुगीय संस्कृत भाषामें विस्तारपूर्वक किया है। दर्शन ग्रंथोंके सूत्र, श्रौत, गृह्यसूत्र और बौद्धादि सम्प्रदायके सूत्र-ग्रंथ प्रत्यक्ष विचारमें भगवदितर द्वितियाभिनिवेशका प्रकृष्ट परिचय देते हैं, परन्तु अपरोक्ष, अधोक्षज वा अप्राकृत विचार तथा अलौकिक ऐतिह्यका कोई परिचय नहीं देते। श्रीमद्भागवतके अलोच्य विषयमें द्वितियाभिनिवेशमें पैदा होनेवाली युक्ति, तर्क तथा विचारादिको विनाश करनेके लिये जो इतिहासादिका वर्णन किया गया है उनमें भी मानव जातिकी इन्द्रिय-लौक्य-विशेषी और प्रत्यक्ष ज्ञानादिवर्ती कथा ही अन्यन्त विस्तार पूर्वक कही गयी है। यद्यपि संस्कृत भाषामें लिखित ग्रन्थोंकी भाषा और संहिता कालके ग्रन्थोंकी भाषामें विषमता देख पड़ती है तौभी विषय विचारमें श्रीमद्भागवतमें वर्णन किये गये भाव विचारयुगमें पहलेके और अलौकिक सत्यके सहज आवाहन ही प्रमाणित होते हैं। उस समयके ऐतिह्य श्रीमद्भागवतप्रमुख पुराणादिमें सर्वाविष्ट हैं, उसीका सामान्य निर्देश वैदिक संहितादि ग्रन्थमें सर्वाप्र-रूपसे देखनेमें आता है। जिन ग्रंथोंके आधारपर पुराण लिखे गये वे जिस भाषामें लिखे गये हैं पर वे सब वैदिक ग्रंथ कालवश लुप्त हो गये। बाद वाले कालमें चूँकि वे सब मूल ग्रन्थ लुप्त और अलभ्य हो गये इसलिए यह नहीं कहा जा सकता

कि पुराणोंमें वर्णित विषय आधुनिक हैं। हम कहनेके लिये बाध्य होते हैं कि पुराणमें लिखी हुई विष्णु सम्बन्धीय प्राचीन आख्यायिकायें जो कथा रूपमें अवतीर्ण हुई हैं उपान्यासके सदृश्य आधुनिक वा काल्पनिक नहीं हैं। श्रीमन्महाभारत और श्रीमद्भागवतादि पुराण ग्रंथोंके प्रतिपाद्य विषय ऋक्-संहिताप्रकाशकालके बहुत पहलेकी बातें हैं, इसलिए संहिताके पीछेके लिखे हुए पुराणादि वैदिक कालसे पहलेके विषयकी आलोचनामें परिपूर्ण हैं। सूत्र ग्रंथोंके बीच हम शाण्डिल्य और भगद्वाजादि ऋषि-प्रणीत कई सूत्र ग्रंथोंका संयोजन पाते हैं। भित्तुसूत्र कर्मन्दी, पागशीयसूत्र, व्याससूत्रमें बहुत पहले रचे गये थे। भक्ति सूत्रोंने सात्वत-पञ्चरात्र-रचनाकालमें विस्तृत लाभ की थी। गृह्य-सूत्रोंने कर्मकाण्डी स्मार्तलोगोंके हाथमें जिस प्रकार २० धर्मशास्त्रोंके रूपमें स्थान पाया है, उसी प्रकार सूत्र ग्रंथादिमेंभी पंचरात्रादि सात्वतशास्त्रोंमें संस्कृत भाषामें स्थान लाभ किया है। सात्वतसूत्र राजस तथा तामस सूत्रकी प्रणालीमें भिन्न प्रणालीमें रचे गये हैं। भागवत, वैष्णव, नैष्कर्म, वैश्वानस, पाञ्चरात्रिक प्रभृति विचारधारा प्राग्वैदिक युगमें प्रचल थी। उसके उपरान्त जड़विचारमें परिपूर्ण और तर्कदर्शनोंमें भगवद्भक्तिका विचार मन्द हो जानेपर भी और पौराणिक रचना कालमें पूर्वके रहते हुए भी पुनः प्रकाशित हुए हैं। भागवत पाठके पहले बुद्धिमान निष्पक्ष पाठक वेदरूपी कल्पतरुमें गिरहुए रमीले भागवतरूपी फलकी सर्वश्रेष्ठता जानकर तर्कयुक्त विचारपर निर्भर करनेमें अन्धकार रहित सहज सत्यकोप्राप्त करनेमें असमर्थ होंगे। आनुगत्यरूप भक्तिधर्मही श्रौत विचारकी सर्वश्रेष्ठताको बतलाता है। उसके अभावमें कर्म और ज्ञान मार्ग दोनों प्रकृत सत्यप्राप्तिके प्रतिबन्धक



हो जायेंगे।

अन्तमें हमलोगोंका कहना यह है कि इस नुगत्य अनिवार्य है। श्रीमद्भागवत-बिरोधी दलको श्रीमद्भागवत ग्रंथको ही कलियुगपावनावतारी श्री हम उससे अधिक बुद्धिमान कहकर आदर नहीं कर मन्महाप्रभुने अमल प्रमाण-शिरोमणि कहकर स्वी- सकते।

## श्री श्रील आचार्यदेवके उपदेश

श्रीरूपविलास प्रभु—शिक्षागुरु क्या जीवतत्त्व हैं? गुरुके साथ जगन्मृष्टि वा मायाशक्तिके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे भगवान्का सबसे अधिक सुख हैं। जब गुरुज्ञान हो जाता है, तब जीवतत्त्व-दर्शन वा विधान करते हैं। जो भगवान्को सबसे अधिक सुख तटस्थ-दर्शन नहीं रहता: मुक्त जीवरूपसे भी दर्शन देते हैं, वे ही मेरे गुरुदेव हैं।

श्रील आचार्यदेव—नहीं। गुरु जीवतत्त्व नहीं मुक्त जीव वैष्णव हैं। वद्ध, तटस्थ और मुक्त हैं। गुरुदर्शन जीवरूपका दर्शन नहीं है। एक नहीं। गुरुदर्शन जीवरूपका दर्शन नहीं है। 'आचार्य' मां विजानीयान।' यहां जीवरूपसे दर्शन करनेसे अपराध होगा। नित्यमिद्ध 'पार्षद जीव- जातीय नहीं हैं। उनलोगोंको जीव नहीं कहा जा सकता। तटस्थ अवस्थामें ब्रह्म—परमान्म ज्ञान होता है, और मुक्त अवस्थामें भगवदनुभूति होती है।

त्रजेश्वरी बाबू—गुरुका ज्ञान कौन करेगा? वह कब होगा?

आचार्यदेव—शिष्य आचार्यको गुरु समझेगा। किंवा विप्र किंवा न्यासी शूद्र केने नय।

येई कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय॥

वर्णाश्रम वद्ध जीवके लिये है; भगवान् वा परमहंसके लिये वर्णाश्रम नहीं है। श्रीगुरुदेव विप्रकुलमें उत्पन्न हुए हों, वा जिन किसी वर्ण वा आश्रममें रहें वा शूद्र वर्णमें आविर्भूत हों, उससे कुछ आता जाता नहीं। जो कृष्णतत्त्ववेत्ता हैं वे ही गुरु हैं।

जो मायामङ्गी हैं वे वह शिव नहीं हैं। जगन्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्म हमलोगोंके गुरु नहीं हैं। मेरे श्रीवलदेव विद्याभूषण प्रभुके "मिद्धान्तर्गत्तमें" और ठाकुर भक्तिविनोदके "जैवधर्ममें" ये सब

बातें हैं; वह कृष्णतत्त्ववेत्ता ( कृष्णतत्त्वको जानने-वाला ) कृष्णको छोड़कर दूसरा नहीं होता। कृष्णको कृष्ण ही जानते हैं। वहां जीव वा नटस्थ वा विभिन्नांश दर्शन नहीं हो सकता। मुक्त जीव दो प्रकारके हैं—नित्यमुक्त और यद्वमुक्त।

ब्रजेश्वरी बाबू—तब तो मुक्त जीवोंको गुरु नहीं कहा जायगा ?

आचार्यदेव—जीव कहनेसे 'गुरु' नहीं कहा जायगा। और 'गुरु' कहनेसे जीव नहीं कहा जायगा। पापद और जीव एक नहीं हैं। पापद वा पापकर ही 'गुरु' हैं। उन्हें जीव कहनेसे काम नहीं चलेगा।

श्रीपाद भक्तिवान्धव प्रभु—गुरुको वैष्णव कहनेसे कौनसा दोष होता है ?

आचार्यदेव—वैष्णव दो प्रकारके हैं—विभिन्नांश जीव और आश्रय विग्रहगण। मुक्त जीव ही वैष्णव हैं। मधुरगमसे—वार्पमानवी, वात्सल्यगमसे—तन्दयशोदा—ये स्वांश हैं—स्वरूपशक्ति हैं। गुरुको केवल वैष्णव न कहकर 'भक्तश्रेष्ठ' वा 'वैष्णवराज' कहा जाता है। महाभागवत वा वैष्णव एक तत्त्व हैं। महाभागवत-श्रेष्ठ—गुरुदेव हैं। 'महाभागवत' श्रीगौरकिशोरवर, मुक्तजीव—वैष्णव हैं। स्वरूपशक्ति वा परिकरगण ठीक मुक्त जीव नहीं हैं। वे चिच्छाक्तिक विलास हैं। विभिन्नांश जीव कारणार्णवशायीसे प्रकट हैं। वे नटस्थ हैं। सङ्कर्पणसे प्रकटित जीव नित्यसिद्ध हैं। सन्धिनी-शक्तिमद-विग्रह बलदेव—सङ्कर्पण-प्रकटित नित्य-सिद्ध पापद-गण कारणार्णवशायीसे प्रकटित जीवके ठीक एक समान नहीं हैं, उनसे श्रेष्ठ हैं। बलदेव ही नन्दादिरूपसे कृष्णकी सेवा कर रहे हैं! सन्धिनी-शक्ति-प्रकटित धाम और नित्यानन्द एक समान हैं। वे

बहुरूपसे गौरसेवा कर रहे हैं।

श्रीभक्तिवान्धव—विलास कहनेसे क्या समझा जाता है ?

आचार्यदेव—विलास जहां जीव हैं, वहां जड़-विलास है। वह बन्धन है। चिदाविलाम—परममोक्ष मोक्षकी पराकाष्ठा है। कृष्णका जितना विलास है सब पूर्णज्ञान—घनानन्दरूप है। वह अविद्याद्वारा अभिभूत ( मुग्ध ) कोई पदार्थ नहीं है। वहां बन्धन वा क्लेश नहीं है, वहां केवल निरवच्छिन्न (अप्रतिहत) आनन्द है। वहां सब एक ही तात्पर्यके बोधक है—All Harmony एक सुखपर है। वहां विरोध नहीं है—Parallel नहीं है। वह प्रेमभूमि है, वहां विलास हो रहा है, संघका अर्थ मिशन वा यूथ है। वही संघ यहां अवतीर्ण होते हैं।

अभिधेय भक्ति विगुह बन्तु है। श्रद्धामे भक्ति आरम्भ होती है।

ब्रह्माण्ड भ्रमिने कोन भाग्यवान जीव।

गुरु कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति लताबीज ॥

यहां बीज है—वहां बीज नहीं है, सभी प्रस्फुटित हैं। यहां पहले बीज आरम्भ होता है। भक्ति लताका पहला बीज श्रद्धा है, उसके बाद मुकुलित अवस्था होती है। अप्रस्फुटित विकास वा स्वल्पतम प्रकाश ही बीज है। वृत्तका प्रथम आरम्भ है—Seed (बीज), embryonic stage (अङ्कुरित अवस्था), slightest manifestation (कुछ विकसित अवस्था)।

विलास और प्रकाश एक ही वस्तु है। एक ही वस्तु जहां बहुरूपसे प्रकाशित होती है, वह प्रकाश है। जैसे द्वारकेश कृष्णने बहुरूप धारणकर पोंडिश सहस्र महिषियोंका पाणिग्रहण किया था—वहां प्रकाश था और जहां मूर्तिके आकारमें भेद है, वह विलास

हैं। बलदेव, नारायण—कृष्णके विलास हैं। रासमें कृष्णका प्रकाश है। शक्तिका विलास-विचित्रता वा वैशिष्ट्य Excellent diversity हैं। प्रमुपाद ने इनको 'Relative worlds' कहा है।

श्रीभक्ति बान्धव—गुरुदेवको बलदेवाभिन्न विग्रह कहनेसे क्या विषय विग्रहत्व नहीं रहता ?

आचार्यदेव—श्री गुरुदेव रोहिणी-नन्दन वा रोहिण्यगम नहीं हैं। बलदेवका जो रास है उसमें कृष्णने ही बलदेवके अङ्गमें रास किया है। भोग किया है। बलदेवमें कृष्णमुखपरमात्मके सिवाय और कुछ नहीं है। उन्होंने चार रसमें कृष्ण सेवाकी है। रासमें उन्होंने अपने अङ्गमें कृष्णको भोग करवाया है।

चतुर्व्यूहमें जो बलदेव हैं उनमें ईश्वरत्व है। (Quadrant Diversity जहाँ तहाँ विषय विग्रहकी प्रबलता है। ह्लादिनी (श्री राधागानी)का आनुगम्य करनेसे अप्राकृत प्रकृति होना ही होगा। शक्तिविलासकी कथा ही सेवाकी कथा—आश्रयकी कथा है। श्री गुरुदेव शक्तिमान नहीं हैं, वे कृष्णकी शक्ति हैं—स्वरूप शक्ति हैं—आश्रयविग्रह हैं।

सन्धिनीके प्रकाश-धाम, चित्तवृत्ति वा भव और रूप—Identity हैं। सन्धिदमे कृष्णकी अनुभूति होती है, और ह्लादिनी शक्तिका कार्य—रसका उदय कराना वा आनन्द देना है।

श्रीभक्ति बान्धव—साधुसङ्ग किस प्रकारसे प्राप्त होता है ?

आचार्यदेव—'कोन भाग्ये, कोन जीवेर श्रद्धा यदि हय। तबे मेई जीव साधुसङ्ग करय।'

श्रद्धा और साधुसङ्ग दोनों एक साथ होता है। जब संसार क्षयान्मुख होता है, Prison gate के खुलनेका समय आता है तब High

Court Judgeने release order दिया है ऐसा समझना होगा, क्योंकि दोनों एक साथ होता है।

जहाँ कृष्णको अपना ज्ञान है, वहाँ पूर्ण शरणागति समझनी होगी। जहाँ शरणागति, अकिञ्चनत्व वा दीनताकी उपलब्धि है वहाँ गुरु और वैष्णव ठाकुरका सङ्ग है। वहाँ मापाधर्म, पुरुषाभिमान वा प्रभुत्वमृदा कम होनी जाती है—मुखवाञ्छाका ह्रास होता है, वहाँ बन्धन भी कटता जाता है।

अज्ञानभक्त्युन्मुखी सुकृति ही भाग्य है। संसार के क्षयान्मुख नहीं होनेमें श्रद्धा नहीं होती। बड़े सांभाग्यवान् जीव ही गुरु कृष्ण कृपासे श्रद्धा प्राप्त करते हैं। जिसको श्रद्धा नहीं होती उसके भाग्यका उदय नहीं हुआ।

भवापवर्गो भ्रमनो यदा भवे-

जनस्य तर्ह्यच्युत मनुममागमः।

मनु सङ्गमो यर्हि तदैव मदगती

परावरेणैव न्वाय जायते गतिः॥

हे अच्युत, संसार भ्रमण करने करने जब संसारसे उत्तीर्ण होनेका समय उपस्थित होता है, तब जीवका यदि मनुसङ्ग हो तभी मदगति और परावरे-श्वर स्वरूप आपमें गति होती है।

साधुसङ्ग विशेष रूपसे आवश्यक है। साधु सङ्ग करते करते बन्धन खुल जायगा। सब असुविधा मिट जायगी। कृष्ण ग्रहण (accept) करेंगे। A pencil of ray from the sun of mercy आनेसे प्रकृतके ऊपर प्रभुत्व करनेकी मृदा कम हो जायगी। वर्ण वा आश्रमके प्रति उस समय आसक्ति नहीं रहेगी। जागतिक अभिमान वा भोग त्यागकी प्रवृत्ति कम हो जायगी। इस जगत्के साथ केवल देहका सम्बन्ध है। इस जगत्के साथ सम्बन्ध वा देहात्म बुद्धि उस समय शिथिल हो पड़ेगी।

सङ्गका इतना प्रभाव है। कृपाकी इतनी शक्ति है!

साधुसङ्ग करने करने आत्माभिमान वा सेवकाभिमान जागता है इसलिये वैष्णवके प्रति उसका अभिनिवेश होता है। आत्मानुभूतिमें अप्रकृत वस्तुके प्रति—साधु गुरुके प्रति जो अभिनिवेश (आसक्ति) होता है वही राग है। 'रगज्' धातुसे 'गग' शब्द निष्पन्न हुआ है। यही राग वा अभिनिवेश (आसक्ति) अनाम वस्तुमें वा प्राकृत वस्तुमें होनेसे रजोगुण युक्त वा बन्धनका कारण होता है, और आत्मवस्तुमें होनेसे—अच्युत वस्तुमें होनेसे—गुरु वैष्णवमें होनेसे सम्बन्ध वा बन्धुत्व होता है। वहां बन्धन नहीं है। यही आवश्यक है। प्रीति नहीं होनेसे सङ्ग नहीं होता।

कृष्णके अनुकरण करनेका नाम प्रभुत्व इच्छा है। वहां बन्धन है। जहां तटस्थ जीव अनुमानके द्वारा अपनेका अन्तर्गत देह और मन समझ लेता है, और एकमात्र भोक्ता भगवानका अनुकरण करते हुए विवर्तबुद्धिद्वारा कृष्णके प्रति सत्संगी हो जाता है वही उसका सर्वनाश है। Enjoyment is the eternal function of Krishna. Krishna—minus enjoyment—निर्विशेष ब्रह्म है, और जहां कृष्णका अनुकरण है, वहां जड़बिलास है। बद्ध जीव Perverted shadow भोग करता है। जीवके स्वरूपमें पुरुषाभिमान (भोक्ताभिमान) नहीं है। पुरुषाभिमान बुरा है, स्वरूपमें ग्रहण वा त्यागकी कोई बात नहीं है।

श्रीभक्तिवान्धव—साधुसङ्ग क्या है ?

श्रीआचार्यदेव साधु कृष्णकी चिच्छक्ति हैं—प्रकृतिके अतीत वस्तु हैं। कृष्णके सेवोपकरणका नाम साधु है। साधु दर्शन होनेसे बाहरका दर्शन नहीं रहता। जहां देहके प्रति दृष्टि है, वहां

आत्मदर्शन नहीं है। आत्म दर्शन होनेसे देहकी ओर दृष्टि नहीं रहती। शरीर रक्षाके लिये पोशाक की आवश्यकता है। अज्ञानक्रमसे अप्राकृत वस्तुके मुखके लिये यदि कुछ किया जाय एवं वह फल यदि अप्राकृत वस्तुको मिले, तो मुक्ति होती है। जहां सम्बन्ध नहीं हुआ वहां मुक्ति है। साधुसङ्गके पहले यह अज्ञानक्रमसे होता है और जहां सम्बन्ध-ज्ञान है वहां भक्ति होती है। वही प्रकृत सेवा है।

घरमें आग लग गयी है। कोई बन्धु घरसे बाहर आनेके लिये कह रहे हैं। द्वार खोलने वा बन्द करनेकी शक्ति वा अधिकार गृहवामीका है। यदि उस समय स्वतन्त्रताका मद्ध्यवहार हो अर्थात् श्रौतवाणीमें—आत्मीयके पुकारसे यदि उत्तर दे नभी वचेगा और यदि सोचा रहा तो वञ्चित हुआ अथवा मर गया। सूर्य उठा है, समय हुआ है। बन्धु दरवाजा पर धक्का दे रहा है। किन्तु मैं यदि दरवाजा न खोलूँ, तो प्रकाश किस प्रकार पाऊँगा ? साधुसङ्ग करनेसे बन्धुके पुकारसे उत्तर देनेसे अवश्य सङ्गल होगा। ग्रहण करना ही स्वतन्त्रताका मद्ध्यवहार है। इसलिये बुद्धिमान उसका ही आदर करने है; मोहका कोई आदर नहीं करना।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानां सा निशा पश्यतो मुनेः॥

सेवामें जगे हुए विद्वत्समाजकी प्रशंसा करूँगा; नहीं तो पुरुषाभिमानसे बन्धन होगा। जहां चेतनके पुकारसे उत्तर नहीं, वहां ही पुरुषाभिमान है—वहां ही बन्धन है।

संभारे आसिया, प्रकृत भजिया,

पुरुषाभिमाने मार।

जीव जब प्रकृतिका भजन करता है, उस समय जड़ प्रकृतिके अधीन होता है। प्रपन्न वा शरणागत

होकर मुक्त जीव जिस भावसे भजन करते हैं—जिस भावसे मेरे साथ विलास करते हैं, उसी भावसे वा उमी रससे मैं (भगवान्) उनको सुख देता हूँ। कृष्ण कहते हैं—“ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।” तटस्थको पुरुषाभिमान है—बन्धन है। पुरुषोत्तम—तुरीय हैं। पुरुषावतार तीन हैं—कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी और क्षीरोदकशायी। प्रकृति वा जीवके साथ इन लोगोंका कार्य है। जीवके कारण वा आश्रय हुए कारणार्णवशायी विष्णु। समष्टि-अन्तर्यामी वा आधार हुए गर्भोदकशायी विष्णु, और प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी हुए क्षीरोदकशायी विष्णु। वे पुरुष हैं, क्लीव (नपुंसक) नहीं हैं। पुरुष—विलासी हैं। वे चित्शक्तिके साथ विलास करते हैं। जीवको मुक्तकर बलदेवकी कृपा, तुरीय पहुँचानी है। ‘मां’—मुझको—मेरे विग्रहको। स्थायी-भाव रति उदय होनेके पहले विग्रह दर्शन नहीं होता।

देवता—अचिदावृत्त तटस्थ हैं। सत्वगुणप्रधान तटस्थ जीव देवता हैं। उनके भजनमें Bartering system है। देवताओंमें jealousy है। एक देवताको भजन करनेमें दूसरे रंज होते हैं। किन्तु Absolute की सेवा करनेमें Bartering system नहीं है।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन

नृप्यन्ति तन्मूकन्धभुजोपशाखाः।

प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां

तथैव सर्वार्हणमच्युतेऽप्या ॥

जिस प्रकार वृत्तके मूलमें जल पटानेमें, उसके स्कन्ध, शाखा, उपशाखा प्रभृति सभी सञ्जीवित होते हैं, और प्राणमें आहार प्रदान करनेसे (अर्थात् भोजन करनेसे) जिस प्रकार सभी इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उसी प्रकार एकमात्र श्रीकृष्णकी पूजा द्वारा सभी देव-पित्रादिकी पूजा होती है।

## प्रथम वैभव

सम्बन्धतत्त्व और श्रीभक्तिविनोद

१ प्रश्नः—सम्बन्धतत्त्व तथा सम्बन्धज्ञान किनको कहते हैं ?

उत्तर.—सम्बन्धतत्त्वमें तीन वस्तुओंकी पृथक् पृथक् शक्तियाँ हैं—जड़जगत् वा मायिक तत्त्व, जीव वा अधीनतत्त्व। वं भगवान् वा प्रभुत्व की। भगवान् एक और अद्वितीय, सर्वशक्ति सम्पन्न, सर्वोंका अपनी ओर खींचने वाले, ऐश्वर्य और माधुर्यके एकमात्र निलय तथा माया और जीव-शक्तिके एकमात्र आश्रय हैं। वे माया और जीवके एकमात्र आश्रय होकर भी सर्वदा सुन्दररूपमें एक स्वतन्त्र स्वरूप हैं। उनके अङ्गोंकी कान्ति अति-दूरस्थ हो निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें ललित होती है।

उनकी ऐसी शक्ति संसार और जीवोंकी सृष्टि कर एक अंशसे (परमात्म-रूपसे) जगत्में प्रविष्ट ईश्वर-तत्त्व है। ऐश्वर्य-प्रधान प्रकाशावस्थामें वे परम व्योममें विराजमान नारायण हैं; माधुर्य-प्रकाश-कालमें वे गोलोक वृन्दावन वासी गोपीजनवल्लभ श्रीश्रीकृष्णचन्द्र हैं। उनके प्रकाश और विलास नित्य तथा अनन्त हैं। उनके समान कोई और कुछ भी नहीं है, उनसे अधिककी तो बात ही नहीं। समस्त प्रकाश और विलास उनकी परा शक्तिसे ही उत्पन्न हुए हैं। उनकी परा शक्तिके अनेक विक्रमोंमेंसे तीन ही विक्रमोंका जीवको पता है—एकका नाम चिद्विक्रम है, जिसके द्वारा उनकी सम्पूर्ण लीलायें सुचारुरूपसे संपन्न होती हैं; दूसरेका नाम है जीवविक्रम वा

तटस्थविक्रम—जिसके द्वारा अनन्त जीवोंका उदय सकता ।"

तथा अवस्थिति होती है ; तीसरे विक्रमका नाम मायाविक्रम है, जिसकेद्वारा सकल मायिक वस्तुओं, काल तथा कर्मकी रचना होती है । जीवों साथ भगवान्का जो सम्बन्ध, भगवान्के साथ जीव और जड़का जो सम्बन्ध, एवं जड़के साथ जो भगवान् और जीवका सम्बन्ध है—इन्हीं सम्बन्धोंका नाम है सम्बन्धतत्त्व । सम्बन्धतत्त्वके अच्छीतरह जानलेने से ही 'सम्बन्धज्ञान' होता है । सम्बन्धज्ञानसे हीन व्यक्ति किसी प्रकार शुद्ध वैष्णव नहीं कहा जा

—जै० ध० ४४ अ०

२ प्रश्न—सम्बन्ध-ज्ञानयुक्त 'अहन्ता ममता' क्या कोई निकृष्ट वस्तु है ?

उत्तर—श्रील ठाकुर भक्तिविनोद कहते हैं—वास्तविक श्री कृष्ण-सम्बन्ध-अभिमानमें अहन्ता ममताका भाव नहीं है । कृष्णोत्तर प्राकृत वस्तुओंमें जो मेरा अहन्ता और ममताका भाव है वह श्रीकृष्णकी सेवाके साथ सम्बन्ध रखते हुए ही है ।

—यामुन भावावली, गीतमाला

## द्वितीय वैभव

१ 'आम्नाय' क्या है ?

"संसार-रर्चायिता ब्रह्माके निकटसे गुरुशिष्य-परम्परा द्वारा प्राप्त 'ब्रह्मविद्या' नामक वेद-समूहको 'आम्नाय' कहते हैं ।"

—श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा २५ परिच्छेद ।

२ श्री चैतन्यदेवकी मूलशिक्षा क्या है ?

"आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिदं परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिं

तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृतिकर्त्तानानां तद्विमुक्तांश्च भावान् ।

भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं

शुद्धभक्तिं

साध्यं प्रीतिमेवेत्युपादिशति जनान् गौरचन्द्रः

स्वयं सः ॥"

—'दशमूलनिर्यास,' मञ्जनतोषिणी ९९ ।

३ दशमूल क्या है ?

दशमूलमें एक तो प्रमाण और नव प्रमेय हैं । प्रमाण है आम्नाय वाक्य, और प्रमेय ये हैं—

(१) हरिही पर तत्त्व है ; (२) वे (श्यामसुन्दर)

सर्वशक्तिमान हैं ; (३) वही श्यामसुन्दर परमरसमय

हैं, संव्योम या परव्योममें ही उनका धाम है ; (४)

जीव अनन्त, चित्परमाणु तथा कृष्णके विभिन्नांश

हैं ; और नित्यवद्ध तथा नित्यमृक्त भेदोंसे दो प्रकारके

हैं । (५) कृष्णवर्हिर्मुख जीव मायासे बन्धे हुए हैं ;

(६) शुद्ध भक्तगण माया से मुक्त हैं ; (७) जीव

और जड़मय ममस्त जगत उनकी अचिन्त्य शक्तिसे

उत्पन्न उनका नित्य-भेदाभेद प्रकाश है ; (८) नव

प्रकारकी कृष्ण भक्ति ही अभिधेय तत्त्व है ; (९)

कृष्ण-प्रेम ही प्रयोजन तत्त्व है ।"

—श्रुति शाम्भानिन्दा हः चिः ।

४ तत्त्ववस्तु एक है वा अनेक ?

"तत्त्वमेकमेवाद्वितीयम्

तत्त्ववस्तु एक ही है दो नहीं ।"

—शक्तिमत्तत्व प्रकरण आः सूः २ ।

५ श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षायें किन ग्रन्थोंमें लिखित हैं ?

“श्रीमहाप्रभुकी शिष्यायें दो ग्रन्थोंमें अच्छीतरह वेद और श्रीचैतन्यदेवकी वाणी—इनमें पार्थक्य लिखी हुई हैं; तन्त्रशिष्या—‘श्रीब्रह्मसंहिता’ में तथा भजनाशिष्या—‘श्रीकृष्ण कर्णामृत’ ग्रन्थमें।”

—‘विज्ञप्ति’ कृ. क. ।

६ एकमात्र प्रमाण क्या है? वेदोंका प्रतिपाद —विषय-वस्तु क्या है?

“वेदशास्त्रोंमें विशुद्ध भक्ति ही की शिक्षा दी गई है। वेद-वादियोंके प्रकृति-दोषमें अनेक प्रकारके मतों, तथा अनेक प्रकारके कर्मों और ज्ञानोंकी व्यवस्था प्रचलित है। वास्तवमें तो केवल वेद ही मनुष्योंके एकमात्र प्रमाण तथा शिक्षागुरु हैं। वेदोंमें मतमतान्तर प्रवेश कराकर शुद्धभक्तिसे पृथक्, भिन्न भिन्न मतोंका प्रचार हुआ है।”

—प्रमाणनिर्देश, भा. म. १.६ ।

७ सच्छास्त्र क्या है?

“एक अन्धा मनुष्य यदि दूसरे अन्धेका पथ-प्रदर्शन करे तो दोनों जाकर कुएंमें गिर पड़ें; उसी तरह असत शास्त्रके बनाने वाले तथा उनके अनुसरण करने वाले अज्ञ लोग कुमार्गमें चले जाकर शोचनीय होते हैं। वेद और वेदानुगत शास्त्र ही ‘सच्छास्त्र’ हैं।

—चै. शि. १।२ ।

८, वेद क्या है?—

“जिस किसी स्थानमें कोई एक वेदग्रंथ पा लेनेसेही जो वह ग्रंथ सब जगह माननीय होगा यह बात नहीं है। समय समयपर मतमम्प्रदायोंके आचार्योंने जिनको स्वीकार किया है वेही ‘वेद’ हैं और जिनको प्रक्षिप्त कह परित्याग किया है वे ‘वेद’ नहीं हैं, अतएव हमारे माननीय नहीं हैं।”

—जै. ध. १३श अ. ।

९, गीता, भागवत, सात्वत-पञ्चरात्रादि शास्त्र,

“गीताका श्रीमुखसे उच्चारित वाक्य होनेके कारण ‘गीतापनिषद्’ कहा जाता है अतएव वह ‘वेद’ है। श्रीचैतन्य महाप्रभुका शिक्षित दशमूलतत्त्व भी श्रीमुखवाक्य है सुतरां वह भी ‘वेद’ है। समस्त वेदार्थोंके सारसंग्रहरूप श्रीमद्भागवत ही प्रमाण चूडामणि हैं। और अन्यान्य स्मृतिशास्त्रोंके वचन भी यदि वेदानुगत हों तो वे भी प्रमाण ही हैं। तन्त्र शास्त्र तीन प्रकारके हैं—मार्खिक, राजम और तामस। उनमें ‘पञ्चगत्र’ प्रभृति मार्खिक तन्त्र सब वेदोंके गूढ़ अर्थोंका विस्तार करनेके कारण वे भी प्रमाणोंके मध्य माने गये हैं।

जै. ध. १३श अ.

१०, आम्नाय-धाराओंके नित्यत्वका क्या प्रयोजन है?

“No book is without its errors. God's Revelation is Absolute Truth, but it is scarcely received and preserved in its natural purity \* \* \* Truth when revealed is Absolute, but it gets the tincture of the nature of the receiver in course of time and is converted into error by continual exchange of hands from age to age. Now Revelation, therefore, are continually necessary in order to keep Truth in its original purity.”

The Bhagawat Its Philosophy, Its Ethics and Its-Theology.

अर्थात्—“कोई भी ग्रन्थ पूर्णतया दोषरहित

नहीं होता है। स्वयं भगवान् अपने भक्तके हृदयमें जिस सत्यका प्रकाश करते हैं वह परम सत्य है किन्तु अपनी स्वाभाविक पवित्रताके साथ वह मनुष्योंमें प्रायः गृहीत तथा रक्षित नहीं ही होता है। सत्य जब प्रकाशित होता है परम सत्य रहता है, किन्तु समयवशान्त वह ग्राहकके स्वभावकी भूलक ग्रहण कर लेता है और एक हाथसे दूसरे हाथोंमें जाते रहनेके कारण दिनोंदिन दोष रूपमें परिवर्तित होता जाता है। अतएव सत्यके स्वाभाविक पवित्रता-वस्थामें रहनेके लिये आम्नाय नित्य आवश्यक हैं।”

दी भागवत इट्माफलोसोफी, इट्म एथिक्म, ऐण्ड इट्म थिआलोजी।

#### तृतीय वैभव

१, मद्गुरुका लक्षण क्या है? कुलगुरुके स्वीकार करनेपर क्या मद्गुरुका आश्रय-लाभ नहीं होता?

“समयके दोषसे गुरुके सम्बन्धमें मनुष्योंके विचार अत्यन्त दोषपूर्ण हो गये हैं। इन दिनों कुलगुरुके निकट अथवा जिमी किसी साधारण व्यक्तिके निकट उपदेश ग्रहण किया जाता है, इसमें परमाराध्य गुरुदेवका आश्रय प्राप्त नहीं होता। शास्त्रों में कहा गया है कि जो गुरु शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात हैं उनके निकट आत्म-धर्मके जिज्ञासु व्यक्ति गमन करें तथा उनकी शरणागति स्वीकार करें।”

पञ्चमंस्कार, सः तो २।१

२, ‘गुरु’ पदके योग्य कौन हैं?

“परमार्थ-विपगमें जो पारंगत हैं वे ही गुरु होनेके योग्य हैं।”

‘गुरुर्वज्रा’ हः चिः।

३, उच्चवर्णका विचारं कर क्या गुरु करना

उचित नहीं है? ‘हरिभक्ति विलास’में ब्राह्मण तथा गृहस्थको गुरु स्वीकार करनेकी कथा क्यों कही गयी है?

कृष्ण तत्वका ज्ञान ही सब जीवोंका परमार्थ है। इस तत्वज्ञानके गुरु होनेके अधिकारके सम्बन्ध में यह सिद्धान्त है कि कृष्णतत्त्वके ज्ञाता चहे ब्रह्मण ही या शूद्र; चाहे गृहस्थ वा मन्यामी हों गुरु हो सकते हैं। श्री ‘हरिभक्ति विलास’में जो उच्चवर्णके योग्यपुरुषके रहते हीनवर्णके व्यक्तिके निकट कृष्णमन्त्र दीक्षा लेनी उचित नहीं है—ऐसी कथा है वह लोकापेक्षी वैष्णवके सम्बन्धकी है; अर्थात् यह कथा उस वैष्णवके सम्बन्धकी है जो संसार पचालित विधिमार्गमें रहता हुआ कर्माच्चत परमार्थ विषयक इच्छा रखता है। परन्तु जो वैधी और रागानुगा भक्तियोंके तात्पर्य को जानकर विशुद्ध कृष्णभक्ति पानेकी इच्छा करते हैं उनके सम्बन्धमें उपयुक्त कृष्णतत्त्व ज्ञाता जिस वर्णमें वा जिस आश्रय-में प्राप्त हों उन्हें ही गुरु स्वीकार करनेकी विधि कही गयी है।”

—अः प्रः भाः स ८।१०५।

४ ब्रह्मणत्व और गृहस्थत्व—ये दोनों क्या गुरुके मुख्य लक्षण नहीं हैं?

“किंवा विप्र किंवा न्यामी शूद्रकेने नय।

जेई कृष्णतत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय ॥”

(क्या ब्राह्मण, क्या मन्यामी, अथवा शूद्रही

क्यों न हो जो व्यक्ति कृष्णतत्त्वके ज्ञाता हैं वे ही गुरु हो सकते हैं।) जिनमें यह गुरुत्व का स्वरूप-

लक्षण मौजूद है उनको यदि एक या दो तटस्थलक्षण नहीं भी हैं तो वे गुरु होनेके योग्य हैं। ब्राह्मणत्व

और गृहस्थत्व—ये ही दो गुरुके तटस्थलक्षण गिने जाते हैं। गुरुकी स्वरूपयोग्यतासे युक्त व्यक्तियों



यदि ये दोनों तटस्थलक्षण मौजूद हैं तो अच्छा ही है। परन्तु जिनको कृष्णतत्त्ववेत्तृत्वरूप स्वरूप योग्यताही नहीं है, उनको इन दो तटस्थलक्षणोंसे गुरु होनेकी योग्यता नहीं हो सकती।

—तत्त्वकर्म प्रवर्तन, सः ११८

४ दुष्टगुरु और सद्गुरुके चरणाश्रय क्या है ?

“गुरु दो प्रकारके होते हैं—अर्थात् अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग। समाधिस्थ आत्मा ही आत्माका अन्तरङ्ग गुरु है। जो युक्तियोंको ‘गुरु’ कहें उनके निकट

उपासना सीखता है उसने दुष्ट गुरुका आश्रय लिया। नित्यधर्मके पापक रूपमें युक्तियोंके छलने की पृथक्ताके छलनेसे तुलना की जासकती है। राग-मार्गके उपासकगण परमार्थतत्त्वमें युक्तियोंका विसर्जनकर आत्मसमाधिका आश्रय लेते हैं। जिस मनुष्यके निकट उपासनातत्त्वकी शिक्षा ली जाता है वे बहिरङ्ग गुरु हैं। जो रागमार्गको जानकर शिष्योंके अधिकारानुसार परमार्थका उपदेश करते हैं वे सद्गुरु हैं।”

—कृ. सं ८।१४

## लोकशिक्षक ठाकुर भक्तिविनोद

नांदिया जिलेके वारनगर ग्राममें एक धनाढ्य व्यक्तिके घरमें श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर अवतीर्ण हुए थे। बचपनसे ही उनकी धीशक्ति (बुद्धिशक्ति), धर्मप्रियता, सदाचार-वैशिष्ट्य और वैष्णव शास्त्रमें विशेष रुचिका परिचय मिलता था। विभिन्न मतवाद और धर्मशास्त्रादिके आलोचना एवं तुलनामूलक विचारसे वैष्णवधर्म और शास्त्रका असमोद्धत और पूर्णताके विषयमें उनकी बहुत निष्ठा देखी जानी थी।

महाप्रभु और उनके अनुग गोस्वामीगणोंके तिरोभावके बाद शुद्धभक्तिधर्मके योग्य प्रचारकोंके अभावसे कर्म, ज्ञान और योगादिके द्वारा जीवके चित्तमें मलिनताका समावेश हो गया था।

सकल संसार मन व्यवहार-रमै।

कृष्णपूजा, कृष्णभक्ति कारो नाहि वामै ॥

चैः भाः आः रागः

कलियुगकी ऐसी अवस्थामें अबसे ठीक एक सौ वर्ष पहले ठाकुर भक्तिविनोदका आविर्भाव

हुआ था। वैष्णवोंका जन्म वा मृत्यु नहीं होती। इसीलिये, ठाकुर भक्तिविनोदके संबंधमें आविर्भाव और तिरोभाव ये दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं। बचपनसे ही वे भक्तिपथके पार्थक्य थे। भक्ति-प्रचार करनेके लिये यत्नशील रहकर विभिन्न भाषामें सौ से अधिक ग्रन्थोंकी रचना उन्होंने की है।

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा, उनके शिष्य छः गोस्वामियोंके बनाये हुए कठिन संस्कृत ग्रंथोंमें लिखे रहनेके कारण संस्कृत नहीं जाननेवालोंका उसमें प्रवेश नहीं हो पाता था अतः वे उम और आकृष्ट नहीं होते थे। इसीलिये ठाकुर भक्तिविनोद जीवोंके ऊपर बड़ी कृपा करके गोस्वामीशास्त्र समुद्रका मथन करके बङ्ग भाषामें जो नवनीत भगवन् संप्रदकर रख गये हैं, उससे आज भाग्यवान् जीवात्माका प्रचुर आहारका संस्थान हुआ है। ठाकुर भक्तिविनोदके इस संसारमें आविर्भूत नहीं होनेपर महाप्रभुके शिक्षामृतकी उपलब्धि करनेका भाग्य कितने लोगोंको होता, यह कहना कठिन है। यह उनका एक बड़ा अवदान है।

ठाकुर भक्तिविनोदने ग्रन्थ-रचनाके सिवाय संस्थापक हैं।

१८८० ख्रिष्टाब्दसे १८९८ ख्रिष्टाब्द तक पारमार्थिक पत्रिका "मज्जनतोषणी" में इन सब शिक्षाकी कथाओं-को अनेक सरल प्रबन्धों और निबन्धोंमें प्रचार किया है। महाप्रभुके प्रचारित प्रेमधर्मके मूलमें श्रीनामसंकीर्तन और श्रीनाम और श्रीनामका अभि-न्नत्व विचार है। ठाकुर महोदयने अपने आचार और प्रचारके द्वारा हमलोगोंको उसकी शिक्षा दी है। उनकी शिक्षा केवल ग्रन्थोंके पृष्ठोंमें ही नहीं। उन्होंने अपनेको श्रीनामहट्टका भाट्टदार बतलाया है। इस समय शुद्ध भक्तिपथमें वे हमलोगोंके प्रथम बन्धु, वर्त्मप्रदर्शक गुरु और सहायक हैं।

पडगोस्वामियोंमें से एक, श्रील जीवगोस्वामी पादने विश्व-वैष्णवधर्मके प्रकृष्ट प्रचार और क्रमोन्नतिके सहायकरूपसे आजसे प्रायः चार सौ वर्ष पहले 'श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभा' नामक सभा स्थापित की थी। श्रील श्रीजीवगोस्वामीपादके अप्रकट होनेके बाद वह सभा लुप्त होगई थी। गत १८७२ ख्रिष्टाब्दमें ठाकुर भक्तिविनोदने उसी "श्रीश्रीविश्ववैष्णव राजसभा" को पुनः जगाकर बहुत दिनों तक सभापतिके रूपमें प्रेमधर्मका प्रचार किया था।

श्रीसन्महाप्रभुके अप्रकट होनेके बाद उनका अविर्भावस्थल श्रीधाम मायापुर बहुत दिनों तक सर्वसाधारणके लिये अज्ञात रूपमें था। ठाकुर भक्तिविनोदने महाप्रभुके आदेश और वैष्णवमार्ग-भौम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजके निर्देशमें उसको खोजकर संसारके लोगोंका महाकल्याण किया है। वर्तमान युगमें ठाकुर भक्तिविनोद ही महाप्रभुके प्रचारित शुद्ध वैष्णवधर्म वा प्रेमधर्मके

उन्होंने सांसारिक लोगोंकी लीलाका अभिनय करके भी मुक्तपुरुषकी लीलाका प्रदर्शन किया है। कृष्णका संसार (वृद्धजीवका संसार नहीं) किस प्रकार किया जाता है उसका आदर्श उन्होंने अपने जीवनमें प्रतिफलित किया है। जीवनके शेषकालमें परमहंसवेष धारण कर नवद्वीपान्तर्गत श्रीगोदूममें अपने भजनस्थल स्वानन्दमुखदकुञ्जमें भजननिरत रहकर उन्होंने अपनी तिरोभाव लीलाका प्रकाश किया (१९१४ ख्रिः)। वहां उनके भजनगृह और समाधि मन्दिर अबतक पूजन होते आ रहे हैं।

उनके तिरोभावके बाद उनकी अमरम्पादित कार्यावलीका उनके बाद होनेवाले आचार्यवर्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गो-स्वामी ठाकुरने सम्पादित किया और उनके अप्रकट होनेपर श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाकी कार्यावली वर्तमान गौड़ीय वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्ति प्रसाद पुरी गोस्वामी महाराजके द्वारा भलि-भाँति होती आरही है।

ठाकुर भक्तिविनोदके इस संसारमें नहीं आनेमें आज भारतसे सुदूर पाश्चात्य जगत्में रहनेवाले महाप्रभुकी प्रचारित विशुद्ध प्रेम-धर्मकी कथा भली-भाँति नहीं जान पाने। वृत्ते सम्प्रदायोंके आचरणके कारण जो वैष्णवधर्म लोगोंकी दृष्टिमें घृणित समझा जाने लगा था, ठाकुर भक्तिविनोदकी कृपासे उसीका माधुर्य और मौलामौगन्ध आज विश्वमें चतुर्दिक प्रसारित हो गया है।

श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका अवदान

• श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु स्वरट्, लीलापुरुषोत्तम, और असमोद्धत तत्व हैं। ठाकुर भक्तिविनोद उनके ही मनोभीष्ट संस्थापक हैं। वेदका उद्दिष्ट (कृष्ण)

सम्बन्ध, अभिधेय (भक्ति) और प्रयोजन ही (कृष्ण-प्रेम ही) महाप्रभुका प्रचार्य विषय है। ठाकुर भक्ति-विनोदने इन विषयोंको अपने आचार और प्रचारके द्वारा और भक्तिग्रंथोंकी रचना करके जगत्में स्थापित किया है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गने विश्ववासियोंको अपनी ओर आकृष्ट किया है, किंतु पञ्चमपुरुषार्थ 'कृष्णप्रेम' सम्बन्धमें सभी नीत्य हैं। धर्मार्थ-कामियोंको किसी कालमें शान्ति नहीं। एकमात्र भगवद्भक्त ही निष्काम और शान्त हैं। जीवको जहाँ कर्तृत्वाभिमान (Egotism) होता है, वहीं उसको सत्व, रजः और तमोरूप गुणत्रयका बन्धन भी होता है। इसीलिये महाप्रभुने कहा है

मायामुग्ध जीवेरं नाहि कृष्णस्मृति ज्ञान ।

जीवेरं कृपाय प्रभु कैल वेद पुराण ॥

(चै: च: म ० १२०)

इस वेद-पुराणमें स्वराट् पुरुषोत्तम कृष्ण ही एकमात्र उपास्य हैं। श्रीमहाप्रभु उसी कृष्णके प्रच्छन्न-मूर्ति हैं। वेद-पुराणके जो वक्ता हैं, वे ही आचार्य, जगद्गुरु और महाभागवत हैं। जगत्के लोग अपने अपने इन्द्रिय तोषणमें व्यस्त हैं। किन्तु महाप्रभुके प्रचारित वैष्णवधर्म वा प्रेमधर्ममें एकमात्र कृष्ण-इन्द्रिय प्रीतिवांछा ही उद्दिष्ट है। वही प्रेम है और उसीमें जीवकी सर्वसिद्धि है। चेतनमात्रको ही कृष्णोन्द्रियतोषणरूप सेवाके सिवाय अन्य कार्य नहीं है। गद्दी महाप्रभुके शिष्यानुसार ठाकुर भक्तिविनोदका अवदान है।

भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेमें अनेक बाधाएँ (Impediments) हैं। जीवके अनर्थ भी चार प्रकारके हैं, यथा—स्वरूपभ्रम, हृद्दौर्बल्य, अमत्तृष्णा और अपराध। इन सब बाधाओंको हटानेके लिये आचार्य-

पादपद्म स्वीकार करना आवश्यक है। आचार्य शरणापत्तिके बिना इन सब बाधाओंसे छुटकारा पानेका कोई उपाय नहीं। भगवद्विच्छासे ही ठाकुर भक्तिविनोद ऐसे आचार्य पृथ्वीमें आविर्भूत हुए थे।

मनुष्यका मनः कल्पित मतवाद वा धर्म जीवका नित्य धर्म नहीं हो सकता। जीव नित्य वस्तु है। इस चेतन आत्माका धर्म ही वैष्णवधर्म, भागवतधर्म, जैवधर्म, सनातनधर्म वा प्रेम-धर्म नामसे कथित है। यह धर्म नित्य है। यह मानव कल्पित नहीं है। यह तो साक्षान् भगवत्प्रणीत है। यह वैष्णवधर्म वा शुद्ध-प्रेमधर्म ही महाप्रभुकी शिक्षाका एवं ठाकुर भक्तिविनोदके प्रचारका विषय रहा है।

भक्तिके दो मार्ग हैं—विधिमार्ग और रागमार्ग। विधिमार्गमें शास्त्रशासनके द्वारा चालित होकर साधक क्रमोन्नति प्राप्त करते हैं। और, रागमार्गमें स्वाभाविक प्रीतिके वशसे जीव कृष्ण भजनमें अग्रसर होते हैं। 'राग' कहनेसे अनुराग वा स्वाभाविक प्रीतिको ही लक्ष्य किया जाता है।

धर्मार्थ-कामोन्मोक्षको कपटता बतलाया गया है। इन सबोंके द्वारा जीवके आत्यन्तिक मङ्गल होनेकी कोई सम्भावना नहीं। श्रीमद्भागवत-शास्त्रने इस धर्मार्थकामोन्मोक्षरूप कपटतासे रहित प्रेमधर्मकी कथा विस्तृतरूपसे बतलाई है। श्रीमहाप्रभुके अनुसरणमें ठाकुर भक्तिविनोद उमी कैतववर्जित धर्मके ही विशिष्ट प्रचारक हैं। इस कपटहीन जीवके धर्मके प्रचारमें श्रीमहाप्रभुकी महावदान्यता प्रचारित और महाप्रभुके भक्तगणोंकी महा-महावदान्यता प्रकटित हुई है। ठाकुर भक्तिविनोदके समान आचार्यके अम्युदससे उसी बदान्यताका अवदान हमलोग देख पाते हैं।

## SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

## SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding--Rs 2-8-0.

## RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

## THE BHAGBAI

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick, paper bound—Twelve Ans.

( बंगलामें )

## श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन्न सध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्ययटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत ग्रन्थ व प्रतिशब्द. तथ्य व विवृत्त्यादियुक्त । प्रति स्कन्धकं आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय गारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है । श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित । प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है । भिन्ना प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र ।

## श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत । श्रीभक्तविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रमुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' अति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं । श्लोकका सान्बन्ध व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पदार्थके पूर्व संचित अभिधेय संयोजित है । प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है । श्लोक, पदार्थ, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृद्ध सूची व ग्रन्थकारकी विरचित जीवनी-समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है । उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न है । भिन्ना बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र ।

## श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रमुपाद-रचित गौडीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन—कांडन ४ पेजी मूल १०१५ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १२४० पृष्ठ भिन्ना—६) मात्र ( बिना बंधा हुआ ) ।

## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—( तृतीय खण्ड )

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले तब जाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्म-मतोंकी अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवह्रीपका परिचय व अन्य और प्रसाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सदा व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जिसद भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिन्ना ३) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ठाका ।

### सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मलसर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें पृष्ठिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिन्ना ४)

### ‘सामयिक-संख्या’—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक श्रवण व एकवर्ण चित्र-लोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकग्रन्थोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिन्ना ॥) आना ।

### ठाकुर भक्तिविनोद

अरूपाणुशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रद्धालु ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिन्ना ॥॥) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकता ( बागबाजार ) श्रीगौड़ीयमठ व ठाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

### अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूत्र, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमज्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिन्ना २) मात्र ।

वर्ष ५]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गी जयतः

Regd No P. 468

संख्या १० ]

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

५ केषव  
गौराङ्ग  
४५३



अग्रहण कृष्ण ५  
संवत्  
१८८६ वि०

प्रति संख्या ]

७५ ]

यत् वे पुंसां परा धर्मो यत्ता भक्तिरथाक्षजे ।

अहेतुव्यवर्तितया यथायथा सुखोदति ॥१॥

गणित ]

जिसमें इन्द्रिय ज्ञानार्तित श्रीकृष्णमें आकर्षण, लक्षणा, फलान्वितान्वान-रहित, ऐकान्तिकी  
स्वाभाविक निष्पेक्षा भक्ति उद्भव होता है, जो मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है  
यसमें भक्तिके बलसे शरीर शरीर शरीर दाने, आत्मा प्रयत्नता नाम करती है ।

सम्पादक— उपदेशक पंडी लखविनाम ब्रह्मचारी भक्ति शस्त्री रंग प्र :

Editor :—Upadeshak Pandit Raghunath Brahmachari,  
Bhaktishastri B. A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

## विषय सूचा

| विषय         | पृष्ठांक | विषय        | पृष्ठांक |
|--------------|----------|-------------|----------|
| जय दत्तनाम   | .... १४३ | परीक्षा     | ... १६६  |
| श्री ललितनाम | .... १४४ | विविध-संवाद | ... १६८  |
| उपदेशासूत    | .... १६० |             |          |

### भक्तिके अन्यान्य पत्र

- १ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अनन्त वामुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज सम्पादित अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका । प्रति एकादशीको कलकत्ता बागवाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होते हैं । भित्ति १॥ डाक महमूल समेत ।
- २ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला साप्ताहिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित । वार्षिक भित्ति ३) डाकखर्च समेत ।
- ३ दैनिक नदीया-प्रकाश (बंगभाषामें प्रकाशित)—भारतमें सर्वत्र प्रचारित—नदीया जिलेकी एकमात्र पारमार्थिक दैनिक पत्रिका हैं । श्रीधाम-मायापुर श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होती हैं । वार्षिक भित्ति डाक व्यय समेत ६) मात्र ।
- ४ परमार्थी—श्रीयुक्त रघुनाथ महापात्र द्वारा सम्पादित उत्कल पाक्षिक । कटक श्रीसच्चिदानन्द मठसे प्रकाशित । वार्षिक भित्ति १॥ मात्र डाक व्यय समेत ।
- ५ श्रीगौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला पाक्षिक । कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित । वार्षिक भित्ति १॥०) मात्र डाक व्ययके साथ ।

### SREE CHAITANYA MAHAPRABHU

The teachings and characteristics of Sree Manmahaprabhu have been clearly published in this book. It has been written by Tridandi Swami Sreemad Bhakti Pradip Tirtha Maharaj. Price Rs. 4/-  
To be had:—Nand Kishore Bhaktishastri,  
Sree Jogpith, Sree Mandir  
P. O. Sree Mayapur (Nadia)

### वैष्णवाचार्य श्रीमध्व

गौड़ीय सम्पादक-सम्पादित, इस ग्रन्थमें श्रीमध्वाचार्यजी जीवन चरित, सिद्धान्त और शिक्षा भली भाँतिसे आलोचित हुआ है । यह एक अपूर्व मौलिक विराट् ग्रन्थ है । भित्ति २) मात्र ।

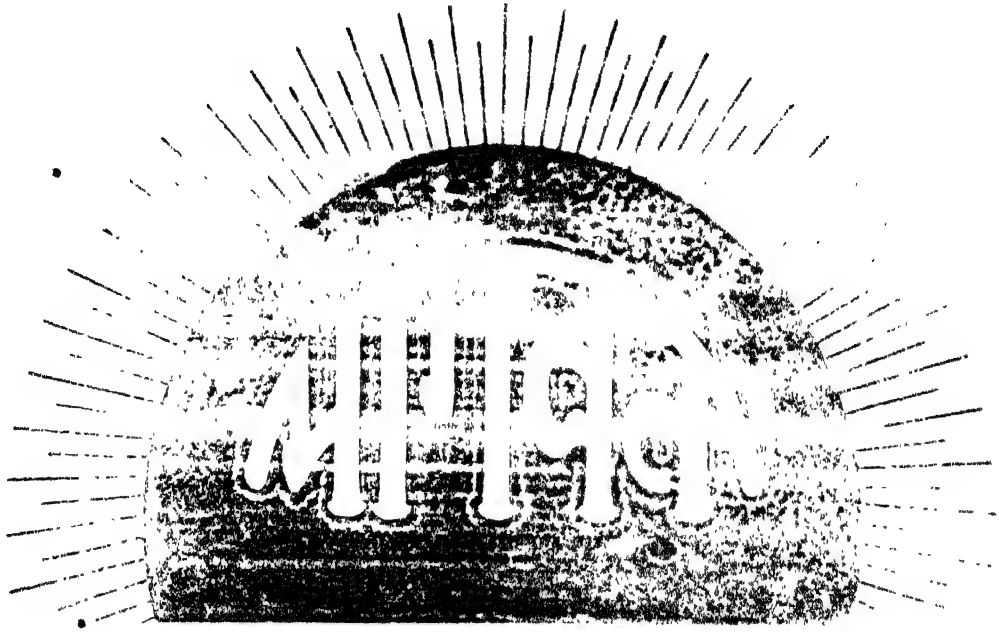
### श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी प्रभुपादरचित पद्यावली श्रील आचार्यदेव-विरचित "सौरभ" नामक भाष्यके सहित प्रकाशित हुआ है । श्रील प्रभुपादके बहुतसे अप्रकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं । भित्ति ॥०) आठ आना मात्र ।

### श्रीश्रीभक्तिविनोदवाणीवैभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंसे सम्बन्ध, अभिषेक और प्रयोजनाकारमें प्रश्नोत्तररूपसे उक्ता वाणी-सङ्कलन । भित्ति १) मात्र ।

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गो जयनः



वर्ष ५

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

अग्रहण कृष्ण ५, ४५२ स० १९९६ वि०, १ दिमम्बर मन् १९९३ ई०

संख्या ११

## जय हरिनाम

जय जय जय हरिनाम,

चिदानन्दा-मृतधामा ।

जय जय जय परतन्व,

सदा जगजन विश्रामा ॥

कारि जीवन पर दया,

अहो अक्षर आकारा ।

निज जन पर करि कृपा,

नाम रूप ही अवतारि ॥

जय जय जय हरि कृष्णनाम,

सब जन मन रखन ।

ह प्रभु नाम 'तुम्हारे' धनु,

को हें भवभञ्जन ॥

हाड अकिञ्चन, दीन जय ही,

जो तुम ही पुकारे ।

नीन हु ताप बिनाश करि,

तुम निन ही उधारें ॥

लिङ्गभङ्ग छनमाहि होत,

तुम्हरी परतापा ।

जय जय हरिनाम,

हरण संसृत संतापा ॥

(कृष्ण)



## श्री हरिनाम

परमेश्वरकी कृपाके बिना इस दुस्तर भव समुद्र-  
को पार करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

उड़मे श्रेष्ठ होनेपरभी जीव स्वभावसे ही दुर्बल  
और अधीन है, एक मात्र भगवान ही इस जीवके  
नियन्ता पाता और त्राता है ।

जीव अगुचैतन्य है अतएव परमचैतन्यके  
अधान और उसका सेवक है । परमचैतन्यरूप  
भगवान ही जीवके आश्रय है । जड़जगतमें जीवकी  
अवस्थिति केवल दण्ड पाने योग्य लोगोंके कारावास  
के तरह है ।

भगवानमें विमुखताके कारणही जीव मायाके  
बंधनमें पड़ जाता है । भगवानके सम्मुख हुए बिना  
जीवका मायासे उद्धार होना सम्भव नहीं है ।  
भगवानसे बहिर्मुख जीवही मायाबद्ध है माया और  
भगवदनुगत जीवही मुक्त है ।

वद्धजीवगण साधनके द्वारा भगवत् कृपा प्राप्त  
करके मायाके सुदृढ़ बंधनको काटनेमें समर्थ होते  
हैं । महर्षियोंने खूब विचारकर कर्म ज्ञान और  
भक्ति ये तीन प्रकारके साधन निर्णय किए हैं । वर्णा-  
श्रमधर्म, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, इत्यादि नाना  
प्रकारके कर्माङ्ग शास्त्रोंमें कहे गए हैं । इन समस्त  
कर्मोंके भिन्न २ फल उन शास्त्रोंमें वर्णित है ।

फलोंका पृथक् पृथक् विचार करनेसे देखाजायगा  
कि फलोंमें स्वर्गभोग, मर्त्यसुखभोग, सामर्थ्य, रोग-  
शान्ति, उच्चकार्य करनेका अवकाश यही सब प्रधान  
फल है ।

उच्चकार्य करनेके अवकाशरूप फलको यदि अलग  
कर दे तो बाकी फल सब केवल मायिक प्रतीत होंगे ।  
स्वर्गभोग, मर्त्यसुखभोग ऐश्वर्यादि सामर्थ्य जो

कर्म द्वारा जीव लाभ करते हैं वे सभी नश्वर हैं ।

भगवानके कालचक्रके द्वारा ये सभी बिनष्ट  
हो जाते हैं । इन मय फलों के द्वारा मायाके  
बन्धनका विनाश होना तो दूर रहे और उल्टे ये  
समय पाकर और वामनाका साथ पाकर बंधन, को  
और भी दृढ़ कर देते हैं ।

यदि अवकाश पाकर उच्चकार्य नहीं किया जाय  
तो उच्चकार्य करनेका अवकाश भी निरर्थक ही हो  
जाता है । जैसा कि भागवत में कहा है ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कयासुयः ।

नेतथादयेद्यदि रति, श्रम एव ही केवलम् ॥

वर्णाश्रमरूप धर्मका मूल तात्पर्य यही है कि  
स्वभावके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कर्म  
विभागके द्वारा अनायास ही मनुष्यका मंजार और  
शरीरयात्रा निर्वाह होवे । इससे हरिकथा की आलो-  
चनाके लिए बहुत कुछ अवकाश प्राप्त होगा । यदि  
कोई मनुष्य उत्तम रूपसे वर्णाश्रम धर्मका अनुष्ठान  
करके भी हरिचर्चा द्वारा हरिकथा में प्रीति नहीं प्राप्त  
करे तो उसका धर्मानुष्ठान काम केवल परिश्रम  
मात्र है । कर्म द्वारा भवसिन्धु पार नहीं हो सकता  
है यह निश्चित है । यह बात सत्तेपमें कहे देता हूँ ।

अब रही ज्ञान चर्चाकी बात तो यह जीवके  
लिए उच्चगति प्राप्त करने का साधन रूप कहा गया  
है । ज्ञानका फल आत्मशुद्धि है । आत्मा जड़ातीत  
वस्तु है इसके भूल जानेसे जीव जड़ाश्रित होकर  
कर्म मार्गमें घूमता रहता है ।

ज्ञान चर्चाके द्वारा विदित हो जाता है कि मैं  
जड़ नहीं बल्कि चिद्रस्तु हूँ इस प्रकारका ज्ञान  
स्वभावतः "नैषकर्म" के नाम से विख्यात है क्योंकि

चिद्वस्तुका नित्यधर्म जो चिदास्वादन है वह इस ज्ञानके इस अवस्थासे आरम्भ नहीं होता ।

इस अवस्थामें मनुष्य आत्माराम रहता है किन्तु जिस समय चिदास्वादन रूप चितक्रिया आरम्भ होता है उस समय फिरनैष्कर्म वाकी नहीं रह जाता ।

इसीलिये नारदजी कहते हैं :—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाव वर्जितम् ।

न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥

नैष्कर्म रूप निरञ्जन ज्ञान जब तक अच्युतभाव विहीन रहता है तब तक उस ज्ञानकी शोभा नहीं होती ।

यदि कहां कि तां होता क्या है तो सुनो भागवत में कहा है :—

आत्मारामश्च मुनयो नम्रान्धा अप्युरक्रमे ।

कुर्वन्त्ययहैतुकां भक्तिमित्यभूत गुणो हरिः ॥

परमर्चतन्य हरिमें इस प्रकार का एक असाधारण गुण है कि वे समस्त जड़मुक्त आत्माराम लोगोंको आकर्षण करके अपनी भक्ति रूप कार्यमें नियुक्त कर लेते हैं ।

अतएव कर्म सदवकाश देकर और ज्ञान स्वयं नैष्कर्मस्वरूप परित्याग करके जिस समय भक्तिके साधन करनेमें नियुक्त होते हैं उसी समय ज्ञान और कर्मको साधनाङ्ग कहा जाता है । उनमें अपनी कोई साधनाङ्गता की क्षमता नहीं है । इसीलिये भक्तिकोही साधन कहा गया है । कर्म और ज्ञान भक्तिके साथ होनेसे कभी कभी साधन हो जाते हैं किन्तु भक्ति स्वभावसे ही साधन रूप है जैसा भागवतके एकादश स्कन्धमें कहा है :—

न साधयति मां योगो न सां सांख्यं धर्म उद्धव ।

न स्वध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

हे उद्धव कर्मयोग, सांख्ययोग, वर्णाश्रमधर्म, वेदपाठ तपस्या वा वैराग्य मुझे को प्रसन्न नहीं कर सकते हैं किन्तु तीव्रभक्ति ही केवल मुझे प्रसन्न कर सकती है ।

भगवान की प्रसन्नता लाभ करनेके लिए भक्तिके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है । साधनभक्ति श्रवण कीर्तनादि लेकर नव प्रकारकी है । उनमेंसे श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही प्रधान साधनाङ्ग हैं । भगवानके नाम, रूप, गुण और लीला इत्यादि चार विषयों का श्रवण, कीर्तन और स्मरण होता है । इनमेंसे भी नाम ही आदि और सर्वव्याप्यस्वरूप है । अतएव हरिनाम ही सभी उपासनाओं का मूल है ।

इसके विषयमें शास्त्रमें कहा गया है कि—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्

कलौ नास्तेव नास्तेव नास्तेव गतिर्न्यथा ॥

कलिकालमें हरिनाम को छोड़ कर जीव की दूसरी गति नहीं है । कलिकाल शब्द द्वारा केवल कलिकालही नहीं समझना चाहिए । सर्वकालमें हरिनामके सिवा दूसरे उपायसे जीवकी गति नहीं है । विशेषतः कलिकालमें अन्यमंत्रादिके साधन दुरूह होनेके कारण एकमात्र केवल हरिनाम ही अवलम्बनीय है । इसका कारण यह है कि हरिनाम सबसे अधिक वीर्यवान है । हरिनाम क्या पदार्थ है यह पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा गया है :

नाम चिन्तामणिः कृष्ण चैतन्यरसविप्रहः ।

पूर्ण शुद्धो नित्यमुक्ताऽभिन्नत्वात्नाम नामिनोः ॥

इस श्लोक की व्याख्या श्रील जीवगोस्वामीने यों की है :—एक मेव सच्चिदानन्द रसादिरूप तत्त्व द्विधाविभूतमित्यर्थः ॥

श्रीकृष्ण तत्त्व अद्वय सच्चिदानन्दस्वरूप है उनका आविर्भाव दो प्रकार का है अर्थात् नामीरूपसे श्रीकृष्ण



होंगा। जो कृष्णानाम उच्चारण करकेभी इस प्रकारका बिकार लाभ नहीं करते उनके हृदय अपराध द्वारा अत्यन्त कठिन हो गये हैं।

निरपराध नाम लेनाही साधकका नितान्त कर्त्तव्य है अतएव अपराध वर्जन करने के पहले अपराध के प्रकारका है जान लेना आवश्यक है।

शास्त्रोंमें हरिनामके सम्बन्धमें दस प्रकारके अपराध बतलाए गये हैं।

(१) साधु निन्दा।

(२) शिवादि देवताओंको भगवानसे भिन्न भगवत बुद्धि।

(३) गुरुभ्रवज्ञा।

(४) सत शास्त्र निन्दा।

(५) हरिनाम की महिमा को प्रशंसा मानना।

(६) हरिनाममें अर्थ कल्पना।

(७) नामके वक्त पर पापाचरण करना।

(८) अन्य शुभ कर्मोंके साथ नामकी समानता।

(९) अश्रद्धान व्यक्तियोंको हरिनाम उपदेश करना।

(१०) नामका महात्म्य सुनकर उसमें अविश्वास।

साधुभक्तों के प्रति अश्रद्धा प्रकाश, साधु-चरित्र और अच्छे लोगकी निन्दा करनेसे हरिनामके प्रति अपराध होता है। अतएव जो नामका आश्रय करना चाहते हैं उनके लिए वैष्णवों की अवज्ञाकी प्रवृत्ति सर्वतोभाव से छोड़ना चाहिये।

वैष्णव के कार्योंके प्रति सन्देह होनेसे उनकी निन्दा नहीं करके उनके तात्पर्य का अनुसन्धान करना चाहिये। इसलिये साधुओंके प्रति श्रद्धा करनाही नितान्त आवश्यक है।

भगवान से शिवादि देवताओंको भिन्न समझना एक हरिनाम अपराध में है। भागवतत्व एक और

अद्वितीय है। भगवान विष्णु से भिन्न शिवादि देवताओं की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

शिवादि देवताओं को भगवान का गुणावतार अथवा भगवद्भक्त समझकर सम्मान करनेसे भेद ज्ञान नहीं रहता। जो लोग महादेव को एक पृथक् देवता मानकर शिव और विष्णुको पूजा करते हैं वे महादेव की भगवत्ता नहीं करते हैं इसलिए वे विष्णु और शिव दोनोंके प्रति अपराध करते हैं। जो हरिनाम का आश्रय करते हैं उनके लिए इस प्रकार के भेद ज्ञानको पूरे तरहसे त्याग करना कर्त्तव्य है।

गुरुकी अवज्ञा करना एक प्रकारका नाम अपराध है। जिनके द्वारा भगवन्त्व मालूम हो जाय वेदाचार्य तथा भगवान हैं, उनमें हृदभक्ति करके हरिनाम में अचला श्रद्धा करना कर्त्तव्य है।

सतशास्त्र निन्दन अवश्य छोड़ना चाहिए अर्थात् वेदशास्त्र और उनके अनुगत स्मृतिशास्त्र जिन से भागवत धर्म जाना जाता है उनकी निन्दा करनेसे हरिनाम अपराध होता है। वेदादि शास्त्रोंमें सदा ही हरिनाम महात्म्य कीर्तित हुआ है। जैसा कि कहा गया है :—

वेदे रामयणे चैव पुराणे भारते तथा।

आदवन्ते च मध्ये च हरि सर्वत्र गीयते ॥

इस प्रकार सब शास्त्रोंकी निन्दा करनेसे हरिनाम में कैसे प्रेम होगा ? बहुत लोग साचते हैं कि वेदादि शास्त्रोंमें हरिनामका जो महात्म्य गाया गया है वह ज्ञानका प्रशंसापत्र है। जिनकी ऐसी बुद्धि है वे नामापराधी हैं। उनका नाममें फलादय नहीं हुआ। अन्योन्य कर्मकाण्डमें जिस प्रकार रुचि उत्पन्न करनेके लिये फलों का वर्णन किया गया है वैसेही हरिनामकी फल श्रुतिको भी जो लोग समझते हैं

जो भाग्यवान हैं वे इस प्रकारके अर्थवादमें विश्वास नहीं करते ।

पतन्निर्विद्यमानानां मिद्धनम् कुनोभयम् ।

योगिनां नृप निर्मानम् हरेर्नामान् कीर्तनम् ॥

निर्विद्यमान, अकुनोभयके अभिलाषी योगियोंके लिए हरिनाम कीर्तनही एकमात्र वर्तव्य निर्णीत हुआ है । इस प्रकार का जिनका विश्वास है उन्हींको हरिनाममें फलोदय हुआ है ।

नामाभास और नामका भेद नहीं जानकर बहुत लोग समझते हैं कि नाम अक्षरमय है अतएव श्रद्धा नहीं करके भी नामादि प्रदण करनेसे फल होगा ।

वे लोग अजामिल आदिका इतिहास “साङ्केत्यम् परिहास्यम् वा” इत्यादि शास्त्र वचनोंका उदाहरण देते हैं । पहले ही कहा जा चुका है कि नाम चैतन्य रस विग्रह है और इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है ।

ऐसे स्थान में निरपराध होकर नाम का आश्रय नहीं करने में फलोदय सम्भव नहीं है ।

श्रद्धाविहीन लोगोंको नाम उच्चारण करनेका यही फल है कि कुछ दिन के बाद उनमें श्रद्धा होगी और श्रद्धाके साथ वे नाम ले सकेंगे ।

अतएव दुष्ट रूप से अर्थवाद करके जो लोग नामको जडात्मक अक्षर स्वरूप जानसे कर्मकाण्डका षड्ग समझकर उसकी व्याख्या करते हैं वे अत्यन्तही वर्हिमुख हैं और नामापराधी हैं ।

वैष्णवलोग इस नामापराधको यत्नपूर्वक वर्जन करें ?

बहुतेरे लोग नामका आश्रय करके सोचते हैं कि मुझे समस्त पाप व्याधियोंकी एक औषधी मिल गई और इस विश्वासके साथ वे लोग प्रवचना मिथ्याचार, लाम्पट्य इत्यादि नब पापोंका आचरण करने लगते हैं और फिर नाम उच्चारण कर इन

समस्त पापोंको काटनेकी चेष्टा करते हैं । ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं ।

जो नामका आश्रय करते हैं वे चिदरसका आस्वादन करके फिर जड़ीय अगद वस्तुमें प्रेम नहीं करते उनके द्वारा पापाचरण सम्भव नहीं है । पुनः पुनः पाप करके नाम लेना शठना माव है । यह अपराध अत्यन्त गुरुतर है और सदा परिहाय्य है ।

बहुत लोग सोचते हैं कि यज्ञादि कर्म दानादि धर्म, तीर्थ, यात्रादि चेष्टाएं जिस प्रकार शुभकर हैं वैसेही नामभी है । जिनकी ऐसी बुद्धि है वे नामापराधी है । नाम सदाही चिदरस स्वरूप है । अन्यान्य सभी मतकर्मही जड़मय हैं अतएव वे सभी नामके विजातीय हैं । जो नामके साथ और शुभ कर्मों की समताकी विवेचना करते हैं उनलोगोंने प्राकृत नामरसका आस्वादन नहीं किया है । हीरा और कांचमें जिस प्रकारका भेद है वैसेही हरिनाम और दूसरे २ शुभ कर्मोंमेंभी वस्तुगत भेद है ।

जो श्रद्धाहीन व्यक्तियोंके प्रति हरिनामका उपदेश करते हैं वे भी नामापराधी हैं । शूकरको जैसे मुक्ताफल देनेसे कुछ फल नहीं होता केवल अपमानही होता है वैसेही नामके प्रति जिनकी उपयुक्त श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई है उनको नाम उपदेश करना नितान्त अन्याय है ।

दूसरे जीवोंको जिस कामसे हरिनाममें श्रद्धा हो वही करना कर्तव्य है । जब श्रद्धा हो जाय तब नाम उपदेश लेना चाहिये ।

जो सब लोग अपनेको गुरु समझकर और अभिमानकर अपात्रको हरिनामका उपदेश करते हैं वे नामापराधके द्वारा गिर जाते हैं ।

नामका महात्म्य सुनकरभी जो नाम में एकान्तिक

श्रद्धा नहीं करते वे भी नामापराधी हैं।

इस प्रकार दस प्रकारके नामापराधोंके छोड़े बिना हरिनाम उद्भूत नहीं होता है। हां, वर्जन मात्र ही से नामाभास होने लगता है। नामाभास से पापक्षय होता है। पापक्षय होने से श्रद्धा होती है। श्रद्धा होनेसे यथार्थ नामरस का उदय होता है। इसीलिये शास्त्रोंमें नामाभासका महात्म्य कहा गया है।

कलिके लोगोंके निम्नार करने वाले श्रीश्री महा-प्रभु चैतन्यदेव जगतके जीवोंके नानाप्रकारके क्लेशों को देखकर दयार्द्र चित्तमें इस इस प्रकारका उपदेश किया है :—

तृणादपि मुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।

अमानिता मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

तृणसे भी अपनेको नीचा समझकर और वृक्षके समान सहिष्णु होकर स्वयं अभिमान शून्य और दूसरेको सम्मान करते हुए जीव हरिकीर्तनका अधिकारी होता है।

अपराध शून्य होकर हरिनाम ग्रहण करनेकी व्यवस्था ही इस वचनका मुख्य तात्पर्य है। जो अपनेको सबसे हीन समझते हैं वे कभी भी साधु निन्दा नहीं करते हैं, शिवादि देशताको भेद-बुद्धि द्वारा अपमान नहीं करते, गुरुके प्रति किसी प्रकारकी अवज्ञा नहीं करते, सतशास्त्रकी निन्दा नहीं करते हरिनामके महात्म्यको यथार्थ जान कर हरिनाममें अर्थवाद नहीं करते अर्थात् शुष्कज्ञान जनित तर्कों द्वारा हरिशब्दमें निगुण ब्रह्मवाद-

की कल्पना नहीं करते, नामवल पर पाप आचरण नहीं करते दूसरे सत्कर्मी के साथ हरिनामकी समानता स्थापन नहीं करते अश्रधान व्यक्ति को हरिनाम देकर नाम के प्रति उपहास की उत्पत्ति नहीं करते एवं नाम में अविश्वास नहीं करते वे स्वभावतः इन दस नामापराधों को बचा कर नाम लेते हैं।

किसीके उपहास वा अपकार करनेसे वे उसका उपकार करने से विमुख नहीं होते। वे जगतका समस्त कार्य करते हुए स्वयं कर्ता वा भोक्त बनकर कभी भी अभिमान नहीं करते। वे अपने को जगत का दास जानकर सदा जगत की सेवा में व्रती रहते हैं।

इस प्रकार अधिकारी व्यक्ति के मुख से जिस समय हरिनाम उच्चारित होता है उस समय वह नाम अन्तःस्थित चिञ्जगत् से विशुद्धाग्निके ऐसा चित्तलोकमें व्याप्त होकर जगज्जीवके मायाविकार रूप अन्धकार को शान्त कर देता है।

अतएव हे महात्मगण ! आपलोग अपराध-शून्य होकर सर्वदा हरिनाम ग्रहण करें—

हरिनाम के अलावे जीव का दूसरा कोई आधार नहीं है। इसके बिना जीव के कोई दूसरा सम्बल नहीं। इस दुस्तर भव समुद्र में आकर ज्ञान, कर्मादियोंका आश्रयग्रहण केवल तृण के सहारे महासागरके पार करनेकी अभिलाषाके समान नितान्त निरर्थक है। हरिनामरूप महानौकाका आश्रय करके उस दुस्तर समुद्रको पार किजिए।

श्री कृष्णार्पणमस्तु ।

## उपदेशामृत

श्रीभील आचार्यदेव की उपदेशामृत की सम्पूर्ण व्याख्या और उपदेशामृत का तात्पर्य  
(स्थान सारस्वत श्रवण सदन, श्री गौड़ीयमठ काल १४ कार्तिक १३४५ ४ ठी नवम्बर १९३८)

श्री राधाभावद्युति सुवलित श्रीगौर सुन्दरके प्रिय स्वरूप, दयित स्वरूप, उनके द्वितीय विग्रह श्रील स्वरूप गोस्वामी प्रभुके अभिन्न स्वरूप श्री मदरूपगोस्वामी प्रभु ही श्री गौर सुन्दर की शिष्याओं अर्थात् शिष्याष्टक को उपदेशरूपमें जगत को दान करनेमें समर्थ हैं।

श्रीरूप गोस्वामी प्रभुके अनुगत मूलमें जो उनके साथ एक चिन्त वा एक आशय विशिष्ट है वही अनुगतभिमानि समहृदय विशिष्ट मुहृद वा मित्रवर्ग-भी उपदेशामृत को जगतमें वितरण कर सकते हैं। वे रूपानुगवर्ग है।

रूपानुगवर श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने जगतके आपामर जीवोंमें वितरण करनेके लिए उपदेशामृत को भाषान्तरित करके विस्तार किया है। और श्रील प्रभुपादने ठाकुर भक्तिविनोदके अभिन्न स्वरूपसे अणुवृत्त भाष्य किया है।

(१)

श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने प्रथम श्लोकमें अन्वयभावसे उपदेशामृत वितरण कारी लोगों का परिचय दिया है। गौरानुग, उपदेशक गुरु वा आचार्य्य धीर है।

वाक्यवेग, क्रोधवेग, मनोवेग, उदरवेग और उपस्यवेग को धीरपुरुष विशेषभावसे सहन करते हैं। सहिष्णुताके साथ इन सब वेगों को धारण करते हैं। ये सब बातें श्रीरूप गोस्वामी की अपनी कपाल कल्पित नहीं है। शास्त्रोंमें भी हमलोग इन बातों को पाते हैं।

महाभारतके अन्तर्गत हंसगीतामें 'वाचावेगम' इत्यादि की बातें लिखी है। श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने हंसगीताके उपदेश को अवलम्बन करके परमहंस गीता का दान जगत को दिया है।

वर्णाश्रमके अन्तर्गत मन्याम आश्रममें कुटिचक, बहुदक, अवस्थाके बाद हंस अवस्था लाभ होता है। हंस असार वस्तु को त्यागकर सार वस्तु का ग्रहण कर सकता है नीर और जार को एक साथ मिला देने पर भी हंस नीर का टाड़ कर जार ग्रहण कर सकता है। इसी प्रकार जो सार और असार वस्तुके एकत्र रहने पर भी सार वस्तु का ग्रहण कर सकते हैं वेही सारग्राही हंस अर्थात् "सागासार विवेक चतुर" हैं।

इसी हंस गीता की कथा को परमहंस कुल चूड़ामणि श्री मदरूप गोस्वामी प्रभुने वर्णाश्रमा, वर्णाश्रम धर्म त्यागी, वर्णाश्रमांतां अर्थात् वर्णाश्रमके बाहर अनत्यज जाति इत्यादि सब किसीके उपकार के लिए और भी सुन्दर और विस्तृत भावसे विश्लेषण करके कहा है।

उपदेशामृतमें हंस गीतासे भी उच्च स्तर की बातें कही गई है। हंसके उपास्य धेय और भजनाय को बातें उपदेशामृत कहता है। परमहंस ही हंसके आश्रय, उपास्य और भजनीय है। उसी परमहंस धर्मके सोपान अर्थात् परमहंसावस्था लाभ करनेके क्रम, साधन भक्ति वा उपाय तथा परमहंस अवस्था लाभ करनेके बाद क्या २ कृत्य है अर्थात् परमहंस गण क्या क्या करते हैं यही सब बातें इसमें खोलकर कही गई है।

परमहंस मुकुटमौलि श्री मद्गुरु गोस्वामी प्रभुके अनुगतजन किस प्रकार आचारणशील है ? उनके प्रति किस प्रकार का आचार करना चाहिए ?

वे पड़वेगविजयी और दूसरोंके पड़वेग को दमन करते हैं। आश्रितों की पड़वेगवशवर्तिना देख कर भी उनके प्रति असहिष्णु नहीं होते, उनको उपदेश देते शिक्षा देते और शासन करते हैं। इसी प्रकार आचरण करते हैं।

यहां पर "शिष्यान्तुर्मे विधिनिष्ठः का प्रयोग है। इन्हीं पड़वेगविजयी पुरुष को धीर" वा गास्वामी समझ कर उनके उपदेश वा शासन को ग्रहण करना होगा।

"वाचोवेगम्" इत्यादि वाले श्लोकमें तीन प्रकारके वेगों की अर्थात् वाचिक, मानसिक, और वाचिक वेगों की बातें आई हैं। इन्हीं तीन प्रकारके वेगों को धीर पुरुष सहन करते हैं ?

शुष्कवेगस्यके द्वारा वा इन्द्रियनिग्रह का चेष्टाके द्वारा नहीं। उन छवोंको 'वेग' कहा है, केवल इच्छा-मात्र नहीं कहा है। इन छवोंमें प्रगल्भ है वेग अर्थात् दीर्घात्म्य आदि को जो सहन करते हैं वे इन तीन प्रकारसे छववेगों की गति की दिशा को फेर कर उनको कृष्णसेवाके अनुकूल कर लेते हैं।

ये छ. वेग तीन भागोंमें विभक्त हैं त्रिद्वेग, उद्वेग, उपस्थवेग ये हैं वाचिकवेग, मनकेवेग और क्रोधके वेग मानसिकवेग है और वाचोवेग ही वाचिकवेग है।

जिह्वाके द्वारा शब्द उच्चारण एवं आस्वादन ये दो क्रियामें होती है। जिह्वा की शब्दोच्चारण स्पृहा वाक्य-वेगके और आस्वादन स्पृहा वाचिकवेगके अन्तर्गत है। वाक्योच्चारण करने वालों का भगद्विमुख विषयमें प्रजल्प ही वाक्यवेग का रूप है।

श्रीरूपानुगोंमें श्रेष्ठ श्रीदासगोस्वामी प्रभु इस प्रजल्प को "असद्वार्ता" कहते हैं। ठाकुर भक्तिविनोद इसके अनुवादमें, कहते हैं

"कृष्णवार्ता बिना आन असद्वार्ता वनिजान"

कृष्ण ही 'सत्' है और उनको छोड़ और सब कुछ "असत्" है "वार्ता" शब्द का अर्थ "संवाद" है।

'असत्' विषय का 'वार्ता' ही असद्वार्ता है यही वाक्यवेग है।

कृष्णके संवादको बहन करनेके लिए यदि वाक्यको निष्कृष्ट किया जाय तो वाक्यका मत जो जीवके प्रति दीर्घ रूप प्रकाश करता है वह सम्पूर्ण रूपसे दूर हो जायगा और वह शान्ति और अभूत दान करेगा।

ऐसा नहीं होनेसे वाक्य असद्वार्ता बहन करने-वालेकी मृत्यु का कारण हो जायगा।

कृष्ण विमृति ही मृत्यु है, कृष्णमृति ही असृति है। कृष्ण कहतेसे कबल कृष्ण विषय ही नहीं समझता बल्कि वाचिक उससे कृष्ण और कृष्ण-सम्बन्धीय वस्तुओंको भी समझता चढ़ेगा। कृष्णके विलासके सभी प्रकारके उपकरणोंका सेव्य समझ कर उसकी महिमा आदिके साहित्य कोनव करने ही से त्रिद्वेग दहन होता है।

मन सदा रूप रसादिका आधार है और मायाके प्रलोभनके क्षेत्ररूप विश्वमें दौड़ लगानेमें व्यस्त है। सर्वदा इन्द्रियमुख वा भागिक अनुमन्थानमें चञ्चल है। ऐसे मनसे अर्थात् ऐसे मनन वा चिन्ताधारसे छुट्टी पानेके लिए दीक्षा गुरुके आश्रयानुगत्य, भूतशुद्धिके साथ मंत्रका आनुगत्य करना होगा।

मंत्र असद्विषयके मननसे छुट्टी करानेमें वा



कृष्ण त्रिमुख मनको दण्ड देनेमें समर्थ है ।

मन्त्रकी परिभाषा है—

“मननान् त्रायते गम्मान् तम्भान्मन्त्रः प्रकीर्तितः ।”

हरिनाम महामन्त्र वा मन्त्रभजन शिष्यागुरु वा श्रवणगुरुके द्वारा प्राप्त करनेसे चित्त शुद्ध होकर बसुदेव और धाम स्वरूप होता है यही शुद्ध रूप जीवका नित्य स्वरूप है । इसी स्वरूपमें गुरुवैष्णवों की कृपासे धामेश्वरकी सेवामें जीव नियुक्त हो सकता है ।

‘आम्वादन’ दो प्रकारका है—महाप्रसाद आम्वादन और नामाभृत आम्वादन । श्री नामाष्टकमें श्रीरूप प्रभु कहते हैं “रसने रसने सदा” नामके साथ रसना रसमयभावसे संयुक्त है । हरिनाम उच्चारणके समय रसना नये नये भावोंमें रस युक्त होती है ।

प्रश्न है कौन रसना ? सेवोन्मुख रसना ही रसमयभावसे नाम की लीला भूमि हो सकती है ।

परन्तु अविद्यापित्तोपतप्त रसना नहीं ।

श्रीमन् महाप्रभु रसमयविग्रह हैं उनके अनुगत होकर उन की कृपा का वरण करके सेवोन्मुख हाना होगा । सेवोन्मुख होनेसे ही श्रीनाम प्रभुके ‘उपद्रव’ अर्थात् निर्गुण प्रभुत्वके सहन करने का सौभाग्य होगा । नाम प्रभु उन्मत्त और पागल बना कर छोड़ते हैं ।

प्रभु उपद्रव करके क्या करते हैं ? उत्तर सुनो “कर एत उपद्रव, चिते वर्षे सुधाद्रव” वह उपद्रव उसका मधुर है अत्यन्त मधुर है । जो नाम सब घड़ी रस उदय कराता है, रसकी बाढ़ बहा ले आता है, सुधारस की झड़ी लगा देता है—वह सेवोन्मुख रसनाके साथ रसमय रूपसे ही संयुक्त है । उस समय रसमयके सेवारसके आम्वादन का विरोधीबेग

वास्तविक जीता जाता है ।

उच्चारणके साथ ही साथ रसनाके आम्वादन की विरोधनी अर्चाच का दमन होता है । अर्चाच जितना ही दवेगी उतनाही रसनासे नाम प्रभु का आम्वादन सुन्दुतर और मधुरतर होगा ।

आम्वादन दो प्रकार का है कृष्ण कथा रूपी शब्दका आम्वादन और हरि सम्बन्धी वस्तु और उसके अनुग्रह रूपी महाप्रसाद का आम्वादन ।

भगवानके प्रसाद चार प्रकारके हैं, वे सुस्वादु हैं । जिह्वाके दोनोंही कार्योंके विषय स्वादु हैं । श्रीलरूप प्रभुने इसी लिए बार बार रसना शब्दका व्यवहार किया है ।

“अनर्पितचरी चिरात करुणयावतीर्णः कलौ ।

समर्पयितुमुन्नतोऽज्वलरसां स्वभर्त्ता श्रेयम्”

हरिः पुरट सुन्दर द्युति कदम्ब सन्दीपितः ।

सदा हृदय कन्दरे स्फुरन्तुवः शचीतन्दनः ॥

श्रीमन्महाप्रभुकी जो इननी बड़ी दया है उस दया के द्वारा प्रेरित होकर उन्होंने अनर्पितचरी निज भर्त्ता का वितरण किया है । वह दया अनर्पितचरी है अर्थात् इसके पहले कभी भी किसी के द्वारा प्रकाशित नहीं हुई थी । स्वयंरूप अपनी सेव्य शोभा को दान करनेको प्रस्तुत है । वह सेवा उन्नतोऽज्वल-रसमयी है, वही चरम और परमरस है । उसी रसको वे आपामर सर्वसाधारणको यहां तक कि पामर पर्यन्तको—देने के लिए प्रस्तुत हैं ।

केवल मात्र तीन प्रकारके व्यक्तियोंको उन्होंने वह रस नहीं दिया है । पहले तो कृष्ण अभक्तों को नहीं दिया ।

“उल्ललित प्रेमवन्द्या चौदिके बेड़ाय ।

स्त्री, वृद्ध, बालक युवा सकलई डुबाय ॥”

चै० च० आ०—१-२-२५ ।

“किन्तु सबे एड़ाइल काशीर मायावादी”। काशी के मायावादी बड़े कठिन होते हैं, मरुभूमिसे भी अधिक नीरस होते हैं, वहां पर विलासका विरोध अपनेको पूर्णरूप से प्रकाश किया है। अन्यान्य मायावादीगण जड़ विलासके विरोधी हैं। किन्तु काशीके मायावादी चिद् विलासके विरोधी हैं। वे गौर प्रेमाश्रममें डूबना तो दूर रहे उसका स्पर्शभी नहीं कर सकते हैं। वे निर्भेद ज्ञानी हैं।

भोगीका भी महाप्रभुने इस रसको नहीं दिया है। ये भी दो प्रकार के हैं :—

जिह्वा लालसे येई इतिउत धाय ॥

शिखणोदर परायण कृष्ण नाही पाय ।

चै० च० अ०—६-२-२१

जिह्वा लम्पट कृष्ण है। जिह्वा की लम्पटता उन्हींकी एक मात्र monopoly है जहां पर जितना ही नवनीत है जितनीही रसमयी, प्रेममयी आराधना के सार हैं वे वही उसका चुगकर खाते हैं वे “नवनीत तस्कर सुन्दर नन्दगोपाल” हैं। यही उनका स्वभाव है। दूधके साथ प्रेमकी उपमा दी जाती है। उस के मथनसे जो सार वस्तु निकलती है वही नवनीत है।

वे माखन चोर हैं। ब्रजवासियोंकी प्रेमसेवा मन्थन करते २ जो सार वस्तु निकलती हैं—अर्थात् प्रेम, स्नेह, मान, प्रणयरस, अनुगम प्रभृति ही नवनीत हैं। उस मखनके भोग करनेवाले मालिक एक मात्र वही है।

अतएव वे डधर उधर दौड़ते रहते हैं, वे चंचल और चपल हैं। चोर को कभी आलस्य नहीं आता। चंचलता चपलता वस्तु ब्रजेन्द्रनन्दन की ही वस्तु तो है, अन्य की नहीं।

उनकी चोरीकी लीला कहां होती है? उनके ही गठनसे गठित सच्चिदानन्द सेवकगणोंके धाममें,

जहां पर वे सेवकोंके द्वारा पराजित रहते हैं। ऐसेही सेवकोंके निकट वे डधर उधर दौड़ते हैं।

उनका अनुकरण करके मायाका दासत्व करनेके लिए जो जाते हैं उनका परिणामरूपमें शक्ति, दण्ड और बन्धन मिलता है। वे कृष्णको नहीं पाते।

श्री गौर मुन्दरने जो इतनी दया करके अपनी भक्तिकी शोभा दान दी वह नहीं मिली इन्हीं तीन प्रकारके जीवोंको।

जिह्वा लम्पट कृष्णको नहीं पा सकते, स्वयं कृष्णने ही इसको कहा है। जिन लोगोंने प्रतिज्ञा की है कि चद्र उपभोगको नहीं छोड़ेंगे उनके लिए श्री मन्महाप्रभुने अपनी भक्ति शोभा दान नहीं की है

“शिखणोदर परायण”—यहां पर “परायण” शब्दका विशेष अर्थ किया है क्योंकि वेग तो सबका है।

लोकं व्यवयामिप मय मेवा,

नित्यामु जन्तोनिहित चोदना ।

व्यवस्थितस्तेषु विवाह यज्ञ

मुग प्रहैगमु निवृत्तिरिष्टो ॥

वेग, बड़ दशा प्राप्त मायाके प्रभुत्वकी कामना करनेवाले जीवोंका नैसर्गिक शासन विशेष है। यह उनका second nature हो पड़ा है।

आठ प्रकारकी स्त्रीमंगलिष्ठा एवं आरामिप प्रहण वा मद्यपान राजसिक और तामसिक व्यापार है। बलजीवके लिए रजोगुण स्वाभाविक है। उसमें मांस और मदिरा खाने पीनेको जो प्रवृत्ति है वह तामसिक है। इन सर्वोंसे निवृत्ति प्राप्त करना ही उचित है। विरजा वा रजोगुणका अतिक्रमण करना ही निवृत्ति है; यह सदा ‘इष्टा’—शुभ देनेवाला है।

नैसर्गिक अवस्थामें पुरुष अभिमान रहनेके

कारण किसीको चाहे बाह्य आकारमें वह स्त्री हो वा पुरुष पुरुषोत्तमके अनुकरण करनेकी इच्छा प्रबल रहती है।

“संभारे आसिया, प्रकृति भजिया

पुरुषाभिमाने मरि ॥”

जीवका जा शिवत्व वा ब्रह्मत्व लाभ करनेकी दुःशा है वह महामायाके पदके नीचे पड़कर चूर्ण हो जाती है। जीव तो स्वभावतः ब्रह्मजातीय वस्तु है ही, और स्वरूपको प्राप्त किया हुआ जीव माया-जयी ही है। किन्तु उस स्वभाव के विपर्यय होनेसे वह मायाके पैरके नीचे पड़ा हुआ है। उस समय उसको रुद्र अभिमान भवानीके भर्ता होनेका अभिमान होता है। यह अवस्था अन्यन्त खराब है। स्त्रीसंभोग और मयमेवा अप्राकृत कामदेवका ही केवल अधिकार अर्थात् monopoly है। इस बातको जो अस्वीकार करते हैं : जो शिष्योदर परायण हैं अर्थात् इन जीवों ही का जो परम आश्रय समझते हैं, रत्नजोगोंने गौर सुन्दरी कृपा नहीं पाई है।

जो महामायाके सम्भोगों प्रति बद्धजीवकी नैसर्गिक प्रवृत्ति रहती ही है। तब उपर जो बातें कही गई हैं वह शिष्योदर परायण जिनको उनके छोड़ने की इच्छा नहीं है उनकी ही बातें हैं। बद्धजीवकी इन सब भोगोंकी मृदा रहने पर भी उनके छोड़नेकी चेष्टा नहीं तो कम से कम लालसा रहनेकी आवश्यकता है। जिन लोगोंने इसको झाड़ दिया है वेही वैष्णव हैं। स्वयं गौरकृष्ण कहते हैं कि इस प्रकार जिह्वा शिष्योदर लम्पट होनेसे कृष्णको नहीं पावेंगे।

जो लोग कामको चरम आश्रय बनाता नहीं चाहते वे लोग क्रमशः अच्छे होते जाते हैं। किन्तु

‘शिष्योदर परायण’ अर्थात् सम्भोगको नित्य चलाता ही रहूंगा ऐसा इच्छा करने वाले उन्नति नहीं करते। इसका कारण यह है कि चौर्य, लाम्पट्य, चंचलता अप्राकृत कामदेव का ही केवल अधिकार अर्थात् monopoly है। अतएव ये सब गुण और किसी का हो नहीं सकता। इस अप्राकृत कामदेवका दूसरा कोई प्रतिद्वन्दी हो नहीं सकता है। जो कृष्ण का प्रतिद्वन्दी होनेकी चेष्टा करेगा वह प्रकृतिका दाम होकर नरकगामी होगा। चौर्य, लाम्पट्य इत्यादि कार्य जगतके लिए हेय और जवन्य हैं। किन्तु जो इन सब व्यापारोंके मूलआकर वा विम्ब हैं वह अप्राकृत परम चमत्कार और उपदेय हैं। वह अद्वयज्ञानके स्वरूपकी अनुबंधी होनेके कारण हेय नहीं हैं, इसीलिए वह अद्वयज्ञान वस्तु निर्दोष हैं; निर्दोषका आकर विधि निषेधके अर्थात् हैं। वह उनके सम्बंधमें अच्छे और बुरे होने का कोई प्रश्न नहीं आता।

ये पड़वेग जिनके बराबर हैं वे ही धार वा धैर्यशाल हैं। धार ही काँव, पण्डित, मुन्नी, भक्त और साधु होते हैं। उनका ऐसा सामर्थ्य है कि वे समस्त पृथ्वी को शिष्य कर सकते हैं।

जो लोग लीला पुरुषोत्तम गोविन्द वा गौरकृष्ण के नाम धाम और कामकी सेवामें निरत और संरत हैं वे ही श्रीरूप गोस्वामी प्रभुके अभिन्न और उनके अनुगत वृन्द हैं। उपदेशमात्रके पानेकी इच्छा होनेसे इन पड़वेगांको कृष्णान्मुख करके उनके सेवा विलासके वर्धनके लिए उनका नियोग करके उनका कृष्णाभिमुख करनेकी आवश्यकता है। जो ऐसा करते हैं वे ही गोस्वामी और गुरु हैं। गो, पृथ्वी, इन्द्रिय, श्रुति अथवा गा का अर्थ कृष्णेन्द्रिय सुख-वांछा है, जिसको वह है वे ही गोस्वामी हैं। यही

उपदेशामृतकी परमहंस गीता है। हंस गीताके प्रथम श्लोकमें भी यही बात है। सारासार और विवेकीगणों की बातें भीष्म ने कही है। परमहंसों की कथा जीवात्मा के स्वभाविक धर्मकी बातें, क्या करनेसे जीव सर्वोत्तम कृष्णसेवा प्राप्त कर सकता है इन्हीं सब बातोंको शिक्षा श्रीरूप गाम्वासी प्रभुने दी है।

(२)

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नित्यमाग्रहः।

जनसंगश्च लोलज्वर पङ्क्तिर्भक्ति विनश्यति ॥

जो लोग पारमार्थिक पथके पथिक हैं उनके लिए पहले विधि फिर राग यद्वा पथक्रम दें। छः दोषोंसे छुट्टि पाना होगा। श्री भक्तिविनाद बाणा वैभवमें इसकी विस्तृत आलोचना की गई है। इसके विषयमें मैं कुछ अधिक नहीं कहना चाहता हूँ।

पहले श्लोकमें गुरु, प्रकृत साधु, त्रिदण्ड और गांस्वामियोंको निर्देश किया है।

इसके बाद छः दोष अष्टग जातिय हैं। धन जातिय वस्तुओंका निर्देश नीचे लिखे श्लोकमें किया है—

(३)

उत्साहातलिश्चयाद्वैर्यात्

तत्तत् कर्म प्रवर्तनात्।

सङ्ग त्यागात् सतावृतेः

षड्भिर्भक्ति प्रसिध्यति ॥

ये Positive गुण हैं केवल ऋणपरिशोधसे ही नहीं होगा धन भा इकट्ठा करना होगा। श्री भक्ति विनोदबाणी वैभव ग्रन्थमें इसकी विस्तृत व्याख्या पाई जायगी।

छः प्रकार की प्रीति का नाम संग है केवल बाहर से मिलने जुलने का संग नहीं कहते। आसक्ति नहीं

होनेसे संग नहीं होता। गाड़ी, सवारी अतिथिशा-लाओंमें परस्पर साक्षात् होता है इस समय यदि प्राति आसक्ति का रुचिपैदा होवे तभी संग हो सकता है नहीं तो नहीं। प्रीति किस तरह का हाना है ?

(४)

ददाति प्रतिगृह्णाति गुरुमाग्याति पृच्छति।

मुहुक्ते भोजयते चैव पङ्क्तिविधम् प्रीति लक्षणम् ॥

प्रातिगृह्णाति का अर्थ वसूल करना। देना और लेना गोपनीय बातें कहना और जिजामा करना, भोजन करना और कराना येही छः प्रकार का क्रिया-यांमें आसक्ति रहने से संग होता है। साधु के साथ यदि यह छः प्रकार की क्रिया हो तबतो मंगल, नहीं तो नरक प्राप्त होता है। जनसंग वा बहिर्मुख संग करनेसे मृत्यु और साधु के सङ्ग करनेसे अशोक अभय, अमृताधार और कृष्ण वा श्रीरूपके पाद पदमोंका आश्रय लाभ होता है। कमपंथाको अवलम्बन करनेसे वैष्णव पदवी तक किस प्रकार पहुँच सकते हैं ?

(५)

कृष्णोति यस्य गिरितं मनसा त्रियेत।

दीक्षास्ति चेत् प्रणाति भिक्ष भजन्तमीशम् ॥

शुश्रुषया भजन विजमन्यन्य मन्य।

निन्दादि शून्य हृदयमाप्सित संग लब्ध्या ॥

साधु कितने प्रकारके हैं ? साधु कौन हैं ? उनके प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना उचित है ? जिसके मुखमें “कृष्ण इति” एकरवार कृष्णनाम विराजमान होते हैं वही कनिष्ठ अधिकारी है। “दीक्षास्ति चेत्” अर्थात् यदि उनकी दीक्षा हुई है दीक्षा क्या है ?

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्।  
तस्मादीदृशेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्व कोविदैः ॥

गुरु प्राप्त होनेसे कृष्णनामही का आश्रय करना कर्त्तव्य है उसको वे समझ सकते हैं किन्तु उनका नाम ग्रहण निरन्तर नहीं होता ।

कीर्तनकारी वैष्णवकी किस प्रकारकी अवस्था होती है वे नहीं जानते । ऐसी को कनिष्ठ-अधिकारी कहते हैं । कनिष्ठ अधिकारी का भजन नहीं होता पूजा तक हो सकती है । अर्थात् विलासोपकरणके साथ अपराध विलासी बन्धुका भजन नहीं है । उसका सम्बन्ध ज्ञान अभी ठीक नहीं हुआ है ।

कनिष्ठ अधिकारीका अज्ञान ज्ञान नाम वाक्य वे क्रमशः अच्छे हो जायेंगे । जिस समय साधु विचारकी योग्य उनकी उचित स्थिति तक पहुँचने में मध्यम अधिकारी हो जायेंगे ।

तदीयगण तत्त्वकी धारणा उन्हें नहीं है, परन्तु वे नामाश्रित और अध्याश्रित कनिष्ठ वैष्णव हैं । जहाँ पर विलासोपकरण तत्त्वविहीन केवल विष्णु तत्त्वज्ञान हैं वहाँ पर तदीय का विचार नहीं है । वह अस्मपूर्ण है । वे साधुता या भक्तिके भावतम्यको नहीं समझते और उनके व्यवहारमें भी गलतियाँ हैं ।

जिसको लेकर विष्णुका विलास है उसको निकाल देनेसे केवल ब्रह्मत्व बाकी रह जाता है । जो विष्णुको विलास करते हैं वे ही साधु हैं । इस विषयमें जिनको विचार प्राप्त नहीं है वे कनिष्ठ हैं । वे यदि तदीय विचार, नाम कीर्तनकारी के विचार

अथवा अनुकरण को बाद देकर केवल अर्चानिष्ठ हो जायें तो वे तुरन्तही दाम्भिक हो जायेंगे, और उनका पतन हो जायगा । तत्त्व होकर वे एक जगह ठहर नहीं सकेंगे ।

वे पञ्चोपायक स्मार्त हो जायेंगे नहीं तो पहले संशययुक्त होकर नास्तिक हो जायेंगे या मगुन फिर निर्गुण ब्राह्म वा मायावादी हो जायेंगे ।

मंगल वा भगवत कृपा लाभ होनेसे क्रमशः तत्त्व वा निर्गुण होने हुए बलीय, पुरुष, मिथुन, स्वकीय, पारकीय, बहुवह्म विचारोंमें प्रानिष्ठ हो जायेंगे हैं । यही है भक्ति की उन्नति वा अवतरनिके स्वर । यदि तदीयका विचार नहीं है तो क्रमशः दाम्भिक होकर विलास विरोधी हो पतित हो जायेंगे ।

विग्रहको विशेषरूपसे ग्रहण करनेका विचार जिनको नहीं है वे विग्रहके विलासके विरोधी होकर पहले संशयवादी फिर नास्तिक हो जायेंगे । साधु सावधान !

फिर कहते हैं "भजन्तमीशम्" सर्पाङ्कुर इशं भजन्तम्" विग्रह विलासी हैं । वे क्या ग्रहण करते हैं ? उत्तर है "रम" । जो उसके सामान्य शोक कर देने वाले हैं वे तदीय हैं ।

जो उसके ही उनमें निरतगता है उनको प्रणति करनी चाहिए ।

## परीक्षा

यदि हरिजनमें कपटता रहे, तो बाहरसे अनिश्चय अनाशाक्त, विरक्ति और अन्य भावों का प्रकाश करे भी तो वह प्रकृत भाव वा बेगम्य नहीं है । हरि-भजनमें यदि अकपट मतिगति रहे, तो हरि भक्तिके

प्रतिकूलबन्धुके प्रति अनाशाक्त, विरक्ति प्रभृति आपसे आप आ जाती है । जिसमें हरिभजनमें अनुराग वृद्धि हो ऐसी चेष्टा करनी चाहिये । हम-लोग जो कोई सेवा कार्य करें, उसमें हमें देखना •

चाहिये हरि, गुरु और वैष्णवमें अनुराग दिनोदिन वृद्धि हो रही है कि नहीं। यदि ऐसा ज्ञान हो कि गुरुवैष्णव, और भगवानके चरणों में प्रेम करने के उत्तरोत्तर वृद्धि होनेके बदले उनका ह्राम हो रहा है, अपनी दीनता, और अयोग्यताके कारण गुरुवैष्णव सेवा प्राप्त करनेके लिये पिपासा वृद्धित न होकर पान्थी तरह गुरु में आश्रयमें दिन बीतता जा रहा है, अयोग्य सेवाकामिमानके बदले कर्त्ताभिमान हृदयमें जाग रहा है। ऐसी हालतमें रासरसना होना कि मेरे भविष्यमें सुखका पथ खोजा जायगी होता जा रहा है। मैं तो भ्रमर हूँ, उसमें गुरुवैष्णवका सुख हो क्या है कि नहीं इसकी प्रत्येक सुदृष्टमें परीक्षा करनी आवश्यक है। यदि गुरुवैष्णवका सुख नहीं हुआ तो कहां घुटी हुई है उसकी तीव्र दृष्टिसे परीक्षा करना होगी। उसमें उदासीन होनेसे मङ्गल प्राप्त नहीं होगा। जगतके विचारमें प्रसन्न होकर मूल उद्देश्य श्रीगुरुवैष्णवकी मृगानुसन्धान गुरुका विषय भक्त करनेसे सुखका नहीं होगा। राज और समानगुणका प्रेम करना बहुत देर तक नहीं रहती। श्रीगुरुवैष्णव भगवानको अद्वैतका कृपासे हमलोगोंमें बहुतसे सर्वोत्तम श्रेय, प्रभुकी कृपा थोड़ा बहुत जान सके हैं। अनेक अन्याये, अन्याचारों, बाधाओं, और विपरिणतियोंमें भी अभीतक सद्गुरुपादपद्म नहीं छोड़ा वा छोड़नेकी वामना एकवार भी हृदयमें उदय नहीं हुई। यही भगवानकी अपार करुणा है। किन्तु मुझ कृपार्थीकी यही तो जेब कथा नहीं—करुणा प्राप्त करनेका यही तो अन्त नहीं है। करुणामयकी करुणा सर्वदा करुणाकाङ्क्षी लोगोंके ऊपर वर्गमा करती है। गुरु वैष्णव-भगवान की ओरसे मेरे ऊपर यथेष्ट कृपा वर्गमा गयी हैं। किन्तु मैं उस कृपाको प्राप्त करनेके लिये कितना

यत्न कर रहा हूँ? वर्तमान विषय समस्यामें भी गुरुपादपद्म नहीं छोड़ा। यह सत्य है, किन्तु वह हृदयमें परनेकी—गुरुत्व उपलब्ध करनेके लिये क्या योगदान दे रहा है? यदि गुरुत्व ही उपलब्धि होगी, गुरुपादपद्म ही एकमात्र रक्षाकर्त्ता पालन-कर्त्ता समस्त हृदयमें उसकी उपलब्धि कर सकना, या वागुमें कोई भय नहीं रहना, विषय देख कर आर्द्र नही होता। श्रीगुरुपादपद्म प्रदत्त औपधि, सुषम्य और व्यवस्थाको अकपट होकर प्राप्तमात्रसे ग्रहण कर सकनेसे अन्तर्योग निश्चय ही दूर होता है। किन्तु मैं वह सम्पूर्णरूपसे क्या ग्रहण कर रहा हूँ? उनका आदेश है—“सभी एक हरिभजनके उद्देश्यसे इस दो दिनके अनित्य संसारमें किसी प्रकारसे जीवन निर्वाह कर चलेंगे। सैकड़ों बाधा विपरिणतियोंमें भी हरिभजन नहीं छोड़ेंगे। संसारके अधिकांश व्यक्तिकैवल्य कृष्णसेवाकी कथा ग्रहण नहीं कर रहे हैं यह देखकर निरन्तरमाहित नहीं होंगे, निज-भजन, निज-सर्वस्व कृष्णकथा श्रवण कीर्त्तन नहीं छोड़ेंगे। तुमसे भी सुनीच और गुरुके समान सदिष्ण होकर सर्वदा हरिकीर्त्तन करेंगे।” किन्तु मेरी हरिकथा-श्रवण-कीर्त्तनमें रुचि कहां है? उनका आदेश है—एकमात्र हरिकथा श्रवण कीर्त्तन करना। किन्तु मैं चौबीस घण्टोंमें के घण्टे हरिकथा-श्रवणकीर्त्तन करता हूँ यह एक बार विचार करके देखना क्या उचित नहीं है? सड़में रहकर गुरुके अनुगत रहकर, यदि गुरुपादपद्मका आदेश जिस आदेशमें मेरा परमसङ्ग है, वह आदेश पालन नहीं किया, तब मेरा मङ्गल किस प्रकार होगा? उनका आदेश-उपदेश पालनमें सभी प्रकारसे यत्नवान नहीं रहनेसे हमें अन्तर्यक प्रबल आक्रमणसे वे क्यों बचावेंगे? हमलोग निजभजन, निज-सर्वस्व हरिकथा

श्रवणकीर्त्तन छोड़ देते हैं अतः गुरुपादपद्म का आदेश इमलिये गुरुवैष्णव लोगोंके सङ्गसे बहुत दूर छूट उपदेशके प्रति उदासीन होकर अपने मनगढ़े (मन- जाते हैं। माना) हरिभजनके पथमें चलना आरम्भ करते हैं।

## विविध-संवाद

परमहंस श्रीश्रील गौर किशोर दास बाबाजी महाराज की अप्रकट तिथि पूजा :—

### श्रीमायापुर में

गत २२ नवम्बर बुधवार उत्थानैकादशीतिथिको ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रील गौर किशोरदास बाबाजी महाराजाका विरह महोत्सव परमागन्धनम श्री श्रील आचार्यदेवके कृपाआशीर्वादसे श्री चैतन्य मठमें ब्राह्ममुहूर्तसे गत १० बजे तक पाठ, कीर्त्तन, वक्तृता, नगरसंकीर्त्तन और हरिकथा आलोचना सुचारुरूपसे सम्पन्न हुए।

दूसरे दिन २३ नवम्बरको श्री श्रील बाबाजी महाराजके सुमज्जित आलेख्यके सम्मुख एक विराट् सभाका आधिवेशन हुआ। गुरुवैष्णव बन्दना महाजनपदावली और परम गुर्वष्टक कीर्त्तनके बाद श्रीपाद अघदमन ब्रह्मचारी भक्ति सर्वस्व, भक्तिरास्त्री प्रभुने श्रीगुरुत्व एवं श्रील बाबाजी महाराजके अतिमर्त्य चरित्रके सम्बन्धमें एक वक्तृता दी सन्ध्यारात्रिकके बाद श्रीपाद किशोरीमोहन प्रभु वैष्णव-महिमा और श्रील बाबाजी महाराजके संबंध में प्रायः डेढ़ घण्टा तक एक वक्तृता प्रदान किया। फिर महाजन पदावली कीर्त्तन के बाद सभा भङ्ग हुई।

उसके बाद समागत बहु सज्जनवृन्दको विचित्र महाप्रसाद वितरण किया।

### पटना में

गत २२ नवम्बरको पटना श्रीगौड़ीयमठमें भी

वर्तमान गौड़ीय वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्वक्तिप्रसाद पुरी गोस्वामी ठाकुर के आनुगत्यमें परमगुरुदेव ॐ विष्णुपाद परमहंस अवधूत-कुलचूड़ामणि श्रीश्रील बाबाजी महाराजकी अप्रकट-तिथि पूजा हरिकथा कीर्त्तन द्वारा सम्पन्न हुई।

ब्राह्ममुहूर्तमें श्रीश्री गुरुगौंगाङ्गविनाद गोविन्दा नन्दजीके मङ्गलागाविक और कीर्त्तनके बाद परम-गुरु 'श्रीगौरकिशोर' नामक ग्रन्थ पाठ हुआ।

सन्ध्यारात्रिक तुलसीमञ्च परिक्रमा तथा महाजन पदावली कीर्त्तनके बाद श्रीपाद मुकुन्द माधव ब्रह्म-चारीजीने श्रीश्रील गौर किशोर प्रभुका अप्रकट-लोला और उनके उपदेशामृतका पाठ और उसका व्याख्या की। पुनः महाजन पदावली कीर्त्तन हुआ। सभामें बहुतसे भद्रमहोदय और महिलावृन्द उपस्थित थे।

दूसरे दिन सन्ध्यारात्रिकके बाद श्रीमठके श्रवण सदनमें एक सभाका आधिवेशन हुआ। गुरु वैष्णव बन्दना और कीर्त्तनके बाद ब्रह्मचारीजीने श्रील गौर-किशोर दास बाबाजी महाराजकी उपदेशावली पाठ और व्याख्या की। पाठके आदि और अन्तमें महाजन पदावली और महामन्त्र कीर्त्तनके बाद सभा भंग हुई। इसके बाद उपस्थित श्रावृमण्डलीमें महा-प्रसाद वितरण किया गया।

## SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Paramahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati (Goswami) with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8vo, 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

### SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs 2-8-0.

### RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

### THE BHAGBAT

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick, paper bound—Twelve Ans.

( बंगलामें )

### श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीतं मूल, श्रीमन् मध्वाचार्यकृत् तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त । प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय प्यारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है । श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान—सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित । प्रथमसे १२वां स्कन्धतक कृपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है । भिन्ना प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र ।

### श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रीज कविराज गोस्वामीकृत । श्रीभक्तविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रमुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं । श्लोककी सान्ध्य व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक प्यारके पूर्व संक्षिप्त अभिधेय संयोजित है । प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है । श्लोक, प्यार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृद्धत सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी—समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है । उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १२०० पृष्ठमें सम्पन्न है । भिन्ना बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र ।

### श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रमुपाद-रचित गौडीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन—कागज ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १२४० पृष्ठ भिन्ना—६) मात्र ( बिना बंधा हुआ ) ।



## श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—( तृतीय खण्ड )

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हृदयगत प्रत्येक मंगलकामा व सत्यका अनुपन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

### श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ नैतिक अवस्था, शिक्षा, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समयामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जितद भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिन्ना १ । प्रतिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागवाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पा० बोयारी, ढाका ।

### सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मलसर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एष्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिन्ना ४ ।

### ‘मामयिक-संग्रह’—गौड़ीय

मानयिक संग्रह (संग्रह) का नाम है । इसमें चित्र भी हैं । यह संग्रह गौड़ीय-वैष्णवोंके लिये उपयोगी ग्रन्थ है । इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिन्ना १० । आना ।

### ठाकुर भक्तिचिन्ताद

अरुणभक्तशुद्धभक्त भक्तानन्द प्रभाकर शुक्ल पुण्य १०० विष्णुपाद आर्य ठाकुर भक्तिचिन्तादका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषा में बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिन्ना १० । प्रतिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागवाजार । श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ

### अनुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकांश भागमें श्रीपद्मभाष्य-कृत श्लोकाका अर्थ बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगालीमें सर्वप्रथम संस्करण । पहले श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका प्रकाशन होकर अनेक अनुभाष्य, उनके बाद अति उपकरणके प्रतिपादना सूत्र समूह, अनुभाष्य सूत्रका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राधेचन्द्रप्रतिविरचित तत्त्वज्ञानी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिन्ना २ । मात्र ।

Reg. No. F. 408

श्रीश्रीगुरुगोविन्द जयतः

• वर्ष ५

अङ्क-१२

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

गैरान्द्र

१९४४

पोप कृष्ण ११

मं० १९९६ वि०



सवै पुंमां पंगेधर्मोयनोभक्तिरधोजने ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा मुप्रसीदति ॥

जिसमें इन्द्रिय ज्ञानार्थी श्रीकृष्ण से श्रवणादि लक्षणा फलार्थ-  
सन्धान रहित एकान्तकी और स्वाभाविक निरपेक्ष  
भक्ति उदित होती है, वही मानव जाति का  
सर्वश्रेष्ठ धर्म है उम्मी भक्ति के  
बल से अनर्थ शमन होने  
पर आत्मा प्रसन्नता  
लाभ करती है

सम्पादक—

पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी  
भक्ति शास्त्री B. A.

वार्षिक  
भित्ति १)

उद्देश्य

# शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

—प्रबन्ध सम्बन्धी—

- [१] यह पत्र प्रति पंचमी कृष्ण को प्रकाशित होता है।
- [२] इस पत्र की डाक व्यय सहित वार्षिक भिन्ना १) है।
- [३] इस पत्र में किसी प्रकार का विज्ञापन वा समालोचना नहीं दायी जाती।

## लेख सम्बन्धी


लेखक महानुभावों को केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही इस पत्र में द्वापन के लिए सम्पादक के पास भेजना चाहिए। लेख के द्वापन या वापस करने का अधिकार केवल सम्पादक को है। डाक व्यय भेजने में लेख लौटा भी दिए जा सकते हैं।

बदले में भेजे जाने वाले पत्र सम्पादक के पते से भेजना चाहिए।

सम्पादक,—भागवत. श्री गौडीय मठ, रमणा, गया।

या

अश्वीनी कृष्ण प्रकाश मिन्हा पोः औरंगाबाद, [ गया ]।

 All communications are to be addressed to:—

**Manager,**

**“ BHAGWAT ”**

SRI GAUDIYA MATH: Ramna, Gaya.

or

A. K. P. SINHA, P. O. Aurangabad, Gaya.

श्रीश्री गुरुगोरोजी जयतः

# भागवत

एकमात्र  
पारमार्थिक  
मासिक पत्र

वर्ष ५

पौष व माघ १९५३ म० जनवरी १९५०

संख्या १००

## गान ( भैरवी )

प्रभु हो ऐसे दिन कब अइहो ।

गौरवाम सुरभूनी तट पै कब लाई देह मुख, जइहो ॥  
नता विटप डारन के नीचे गोड़ गोड़ नित पछितइहो ।  
हा राधे ! हा कृष्ण कृष्ण कहि विकल पुकार मचइहो ॥  
गोड़ कहै स्वपच गृह भित्ता मरम्बती पय पइहो ।  
कृष्ण कृष्ण कहि पुलिन पुलिन तट लोटी जन्म बितइहो ॥  
ब्रजवामिन की कृपा लेश कब नत होई याचन करिहो ।  
होई अवधूत चरण-वैष्णव-रज कब मुख मोसिर धरिहो ॥  
गौर धाम औ ब्रज-कानन में जबहि भेद नहीं लइहो ।  
हैं दासी राधा रानी की सबही अनत मुख पइहो ॥

## उपदेशासूत्र

[ गताङ्क से आगे ]

इसके बाद कहते हैं भजन विज्ञ, अर्थात् जिसने भजन के विषय में विशेष रूप से ज्ञान लाभ किया है केवल वही सेवा में प्रतिष्ठित है। जो एकात्मिक है, केवल भक्ति पराधन है वे अन्य निन्दार्थिगण हर्म्यार्पणन मङ्गल लक्ष्या है उनके हृदय में दूसरे की निन्दा स्तुति नहीं है।

अपने इन्द्रियों के भोगरूप से वे किसी पदार्थ को नहीं देखते इसी कारण से वहाँ पर प्रशंसा या निन्दा नहीं है।

“पर स्वाभाव कर्मार्थिन, न प्रशमन्नगहयते।

विश्वमेकरूपं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेन च ॥”

उनको पर वृद्धि नहीं है अर्थात् केवल भक्ति में प्रतिष्ठित होने के लिए भोगवृद्धि नहीं चाहिए। उनका हृदय हरि सम्बन्धि वस्तु के संग में सज्जानीयाशयविशिष्ट है ऐसे ही हृदय भगवद्भाम है।

उनके निकट कृष्णकीर्तन श्रवण [शुश्रूषा] करना होगा अथवा शुश्रूषा अर्थात् परिचर्या (Menial service.) करनी होगी। इस प्रकार की सेवा करने में मंगल होगा।

इसको इष्टित संग समभक्त्य प्राप्त करना होगा। यदि भजन में उन्नति चाहते हो, उन्नतिकारीगणों वा मङ्गल चाहते हो, इष्टदेवता श्रीकृष्णचन्द्र का पाद-पद्म चाहते हो तो इन्हीं तीन प्रकार के भक्तों का मङ्गल करना कर्त्तव्य है। किंतु दर्शन किस प्रकार का होगा? यदि उनमें कुछ शारीरिक दोष हो तो इसका समाधान करते हैं।

[ ६ ]

द्वैतः स्वाभाव जानितैपपुपश्च दोषैर्न

प्राकृतत्वा मिह भक्तजनस्य पश्येत।

गङ्गाम्भसां न खलु बुद्धेः केन पङ्के-

ब्रह्मदेवत्वमपराच्छाति नीर धर्मम् ॥

सभी श्री रूपानुग भक्त सम्प्रदाय के लोगों को प्रभु कहते हैं। और जितने सम्प्रदाय हैं वे लोग गुरु के सेवाक को मान्य नहीं मानते हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने सिखलाया है कि जो आश्रित है उनमें आश्रय ज्ञान करना होगा। असानी होकर मान देना होगा क्योंकि उन लोगों ने तो गुरु के उपदेश का आश्रय लिया है किंतु मुझ से तो वह भी नहीं हो सका है।

गुरुवालों ने सिखलाया है कि उनको भी “प्रभु” कहो, तुच्छ समझकर अपमान मत करो, अनादर भी मत करो। प्राकृत महा-जिज्ञासु मत के माननेवाले कितने अपसम्प्रदाय वाले तर्क करते हैं कि सब किसी को “प्रभु” क्यों कहें।

श्रीमदभक्तिविनोद के अनुगतों का ऐसा विचार नहीं है। प्रभुपाद सब किसी को प्रभु कहते थे, वे गुरुदेव होकर भी क्या कनिष्ठ अधिकारी को भी बाबाजी महाराज के समान समझते थे! यह क्या potheosis है?

जिन सबों ने मंत्र ग्रहण किया था उनको वे “प्रभु” कहते थे, प्राकृत को अप्राकृत कहते थे, यह क्या apotheosis नहीं है?

“किंतु तोमार-वैष्णव, वैभव तोमार,”  
वैष्णव गुरुदेव के वैभव हैं। कनिष्ठ  
अधिकारी जिन लोगों ने नैष्णवता की ओर  
यात्रा आरम्भ की है वे भी तुम्हारी ही  
वैभव हैं।

“तोमार-वैष्णव” में वैष्णव को यहाँ पर  
वैभव कहा है जड़ को नहीं। प्राकृतभूमि  
को वृन्दावनभूमि नहीं कहते।

कनिष्ठ भी स्वरूप से कृष्ण के नित्यदास  
हैं अतएव गुरु हैं। गुरु के सेवक भी अपने  
लिए मान्य हैं। आप अमान्य तुम्हारापि सुनीच  
होकर इस प्रकार मानते हैं कि वे अज्ञी और  
गुरु अज्ञ हैं और मैं उनका सेवक हूँ। जहाँ  
पर गुरुदर्शन है वहाँ पर जड़ का विचार  
नहीं है। वालिशों का भी वे मङ्गल चाहते  
हैं वालिश लोग तदीयज्ञान से अनभिज्ञ थे  
उनको अद्वैतज्ञान के विषय में सिखलाना  
जरूरी है।

नामाश्रय के प्रति जिसको जिनकी रुची  
की गाढ़ता है उसको दूसरों के बीच में  
प्रकट कराने की उत्तनी ही चेष्टा है।

वालिशों के प्रति दया करके उसको  
तदीयत्व का सुन्दर ज्ञान देने की चेष्टा करना  
सना प्रकृत-उपकार करना है। इस प्रकार  
चेष्टा करके उनके गुरुत्व को प्रकट करने की  
चेष्टा प्रकृत-वैष्णवों में ही देखी जाती है।

“जीवे सम्मान दिवे जाति कृष्ण अधि-  
ष्ठान” प्रत्येक जीवात्मा भगवद्धाम है। जीव  
उसके ही है अतएव गुरु है, वे भगवान् के  
विलास के क्षेत्र हैं और उसके उपकरण हैं

इसलिए वे गुरु भी हैं। सबों के गठन में  
ही यह योग्यता और धर्म दिग्गुण हैं। इसी  
को प्रकट करना ही श्रीगुरुदेव का कार्य है  
और यह होता है श्रीकृष्ण संकीर्तन के द्वारा,  
इसी संकीर्तन की पराहिताई ही गुरुदेव का  
कार्य है।

“यारे देखे तारे कह कृष्ण उपदेश।”  
“आमार आज्ञाय गुरु हो उया तार येवि देश।”  
श्रीगुरुदेव का विचार है कि ये जीव कृष्ण-  
योग्य हैं उन्हें कृष्ण के पादपद्म में पहुँचावेना  
मेरा काम है वे कृष्ण योग्य हैं अतएव मेरे  
गुरु हैं।

इसी प्रकार भोगत्व का प्रकट करना गुरु-  
देव का कार्य है। तटस्थ दर्शन में परमात्मदर्शन  
एवं भेदाभेद-दर्शन में ब्रह्मदर्शन है। नित्य  
कृष्णदास दर्शन में भगवाव दर्शन है। तटस्थ  
जीव अपने को तटस्थ वा भेदाभेद दर्शन  
कर सकते हैं। किन्तु हमलोगों का प्रयोजन  
कृष्ण दासत्व प्राप्त करना ही है। जो कृष्ण-  
दास हैं वे ही हमारे गुरु हैं। यहाँ पर  
तटस्थ दर्शन नहीं है बल्कि अपने को आश्रय-  
भेदांश और शिष्य में शुद्ध जीवान्मरूप गुरु-  
दर्शन होता है।

प्रत्येक को गुरु रूप से दर्शन करने की  
चेष्टा ही सेवा है। आचार्य्य सेव को गुरु-  
वृद्धिकारी अतएव निर्गममानी और मानद है।

स्वभाव के धर्म में जो वैष्णवत्व है  
उसको शिष्यसूत्र में अपने गुरुपादपद्म के  
साथ मिलन कराना ही शिष्य का एकमात्र  
धर्म है

इस मिलन में स्वरभेद है यथा आदर प्रणति, और शुश्रूषा। गुरु के सहित मिलन कराकर कृष्ण के साथ मिलन करना ही सेवा है। वैष्णव का प्राकृत-उद्योग नहीं किया जाता उनमें वपुगत दोष भी नहीं है। कांय जिस समय बड़ा या सुलभ की आवश्यकता करने है उस समय पद्म वा कांय व्यवस्था काटे का विचार नहीं करते। माता के बाद में जगत् समय बच्चा रहता है उस समय माता की सहायस्था की चिन्ता बत नहीं करते। उसी प्रकार के जगत के गुरु वा पिता के शारीरिक दोष नहीं देखे जाते।

गङ्गा के जल में बुद्धि फेन और पद्म रहते हैं। बुद्धि सामयिक धम्म से उत्पन्न होते हैं चिन्मय वस्तु में वह किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है।

बुद्धि आदि तो प्रकृति के उपद्रव के प्रकोप से होते हैं। जलव्रम में फेन वा पद्म कहा से आ सकता है। "प्रत्यक्ष के न बाधते" आध्यत्मिक कहेंगे कि प्रत्यक्ष से देखते हैं कि जड़धर्म वर्तमान है फिर वह ब्रह्मत्वं कैसे हो सकता है?

जैसे विष्णु हैं उनका पादोत्क भी वैसा ही है। जल के धर्म में बुद्धि आदि रहता है। किन्तु इस प्रकृति के बनाये हुए धर्म के रहते हुए भी आदर करनेवाले सनातनधर्मावलम्बियों के लिए इस दोष का कुछ ध्यान नहीं रहता।

प्राकृतभक्त को कृष्ण वा गौराङ्ग के साथ मिलन कराने की चेष्टा होत ही से प्रभु के

कीर्त्तन में अधिकार होगा। जहाँ पर उत्तमता और वैष्णवता प्रग होती है वहाँ पर अस्म-द्वारता नहीं है, जिह्वा प्रशमित होती है जहाँ पर गौरनाम की भजन विज्ञता है, ऐसे लोगो की प्रतिष्ठा करनी होगी, वे हमारे गुरु हैं। जिस समय सेरी प्रवृत्ति-प्रणाम करने की, शिष्य होकर अनुसर्जन करने की होगी उसी समय संकीर्त्तन गम में योग देन की सेरी योग्यता हो जायगा।

शिष्यरूप में अमानी मानदरूप में हो चेष्टा है इसी का नाम संकीर्त्तन गम योगदान देना है।

कनिष्ठ को आदर, निरन्तर लाभपरायण को प्रणति और भजन विज्ञ की शुश्रूषा करनी चाहिए।

नाम में आठ भजनाङ्ग मिले हैं। इसलिए अभिज्ञ मुदर्शनवाले शास्त्रयुक्त मुनिपुत्र, हृदश्रद्ध भक्त की परिचर्या करने में संकीर्त्तन गम का अधिकार होगा।

यहीं तक विधि है। यहाँ तक सेवा की गति धीर है। इसके बाद acceleration फिर गम वा रुचि भक्ति के अभियान है।

[१]

रुचि रमना की चीज है। श्रीरूप रमिक-मौल है इसलिए उन्होंने रुचि, रमना प्रवृत्ति शब्दों के व्यवहार किये हैं।

यहाँ तक steady वा slow progress है यहीं से Velocity का आरम्भ होता है। आलोक की गति के समान सेवा की प्रगति आरम्भ हुई। क्रमशः

## कृष्ण और कृष्ण भजन

जगत में तीन प्रकार के पदार्थ देखे जाते हैं, इनके नाम हैं ईश्वर, चेतन और जड़। हमलोग जिस वस्तु में इच्छा-शक्ति नहीं है उसे जड़ कहते हैं। जैसे मिट्टी, पत्थर, लाल, आग, वायु, आकाश, गृह, वन, शम्य, वस्त्र, शरीर इत्यादि ये सब इच्छाहीन वस्तु हैं।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग ये सब चेतन हैं। हमलोगों में इच्छाशक्ति और विचार-शक्ति है। मनुष्यों में तीन प्रकार की विचार-शक्ति है वैसी और किसी चेतन पदार्थ में नहीं है, इसी कारण से मनुष्य को सब चेतन और अचेतन पदार्थों का राजा कहते हैं।

ईश्वर समस्त चेतन और अचेतन पदार्थों का सृष्टिकर्ता है। उसको जड़ शरीर नहीं होने के कारण हमलोग देख नहीं सकते। वह पणस्वरूप और शुद्ध चेतन पदार्थ है। वह हमलोगों का सृष्टिकर्ता, पालक और नियन्ता है। उसकी इच्छा होने से हमलोगों का सङ्गल होता है। उसी की इच्छा से सर्व नाश हो जाता है।

य भागवत-स्वरूप में निरत होकर वैकुण्ठ-धाम में रात्र करत है, वे सभी राजाओं के राजा हैं। इनकी इच्छा से जगत के सभी काम होते हैं।

जड़ पदार्थ का जगत प्रकार एक स्थूल आकार होता है वैसा ईश्वर का आकार नहीं है, इसी कारण से हमलोग उसको जड़-

इन्द्रियों के द्वारा देख नहीं पाते। इसी कारण से वह वेदों में निराकार कहा गया है।

परन्तु सभी पदार्थों का एक स्वरूप होता है, ईश्वर का भी एक स्वरूप है। जड़-वस्तु मात्र का स्वरूप जड़मय है। चेतन पदार्थ का स्वरूप चेतनमय है। हमलोग भी चेतन पदार्थ हैं किन्तु हमलोग जड़ शरीर विशिष्ट हैं, अतएव हमलोगों का चेतन स्वरूप जड़मयस्वरूप के बीच में छिप गया है।

ईश्वर विशुद्ध चेतनमय है अतएव उसको चेतनमय स्वरूप के अलावे और कोई दूसरा स्वरूप नहीं है। यही चेतन स्वरूप उसका आकार है। और वह आकार हमलोग केवल शुद्ध चेतनमयी आँखों से देख सकते हैं, जड़ आँखें उसे देख नहीं सकती।

फिरने अभागों को ईश्वर में विश्वास नहीं होता। उनकी ज्ञानमयी चक्षुः बंद है। जड़ आँखों से देख नहीं पाने के कारण वे समझते हैं कि ईश्वर है ही नहीं। जन्मान्ध जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश देख नहीं सकता उसी प्रकार नास्तिक लोग भी ईश्वर में विश्वास करने में असमर्थ हैं।

स्वभाव से ही मनुष्यमात्र ईश्वर में विश्वास करत है। केवल वही लोग जो बाल्य-काल में ही अमन्त्रांग में कुतर्क मीखते रहे हैं कुसंस्कार के वश होकर ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। इस अविश्वास से उनकी



अपनी क्षति के सिवा ईश्वर की क्या क्षति हो सकती है ?

वैकुण्ठ-धाम कहते से उसे कोई एक जड़मय स्थान नहीं समझना चाहिये । मद्रास, बंबई, काश्मीर, कलकत्ता, लण्डन, पेरिस प्रभृति स्थान जड़मय हैं । वहाँ जाने के लिए हमलोगों को अनेक जड़मयी भूमि पार करनी पड़ती है । जहाज वा रेल-गाड़ी में भी बहुत समय लगता है, जड़ शरीर के पैरों में चलना पड़ता है । किन्तु वैकुण्ठ वैसा प्रदेश नहीं है । समस्त जड़ जगत के पार एक अवस्थान विशेष का नाम वैकुण्ठ है । यह है चिन्मय, नित्य और निर्दोष ।

उस को आँखें देख नहीं सकती, मन चिन्ता नहीं कर सकता । उसी अचिन्त्यधाम में परमेश्वर विराजमान है । उसको प्रसन्न करने से हमलोग वहाँ जाकर नित्यकाल परमेश्वर की सेवा कर सकते हैं ।

हमलोग यहाँ जिसको सुख कहते हैं वह नित्य अर्थात् सदा रहनेवाला नहीं है वह थोड़ी देर के लिए रहकर पुनः लोप हो जाने वाला है । यहाँ जो कुछ है, सभा दुःखमय है । जन्म प्राप्ति बहुत कष्ट और दुःख का विषय है । जन्म होने पर अहर्गर्ह डार गरीर पुष्ट होता है, परन्तु भोजन सदा मिलन से उमड़ा अभाव क्लेशजनक होता है, पीड़ा सब जगह और सदा है । शीत, उष्ण इत्यादि नाना प्रकार के कष्ट हैं । उन समस्त कष्टों का निवृत्ति करने के लिए अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट स्वीकार कर धन उमाजन करना पड़ता है । घर द्वारा बनाए बिना रहा नहीं जाता । विवाह

करके मन्तानादि की उत्पत्ति करनी होती है । वृद्धापा आने पर कुछ अच्छा नहीं लगता । जीवन में अन्यान्य लोगों के साथ वाद-विवाद इत्यादि अनेक प्रकार के दुःख-प्रद परिस्थितियाँ आती हैं ।

संक्षेपतः संसार में “अमिश्रसुख” ऐसा कोई चीज नहीं है । दुःख और अभावों के क्षणिक निवृत्ति को लोग ‘सुख’ कहते और समझते हैं । इस संसार में रहता हमलोगों के लिये कष्टकर है ।

परमेश्वर को वैकुण्ठधाम में पान में इन अनित्य सुख दुःखों का लेश भी नहीं रह जाता और अजस्र नित्यानन्द प्राप्त हो सकता है । अतएव परमेश्वर का तुष्टभावन करना ही हमलोगों का कर्तव्य है ।

जिन समय मनुष्य का ज्ञान मय होता है, उसी समय स ईश्वर की प्रगन्नता के साधन में वृत्त होना श्रेयस्कर है ।

“आज हमें संसार में सुख-भाग करना है फिर वृद्धावस्था में ईश्वर की तुष्टि का साधन कर लूँगा ” ऐसे सोचनेवाले से कोई काम नहीं होगा । समय आति दुर्लभ है । जिस दिन में कर्तव्य-ज्ञान हो जाता है, उसी दिन में भावन करने का यत्न करना आति आवश्यक है ।

यह मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ और अस्थिर है । किस दिन मृत्यु आजायगी कुछ कहा नहीं जा सकता है ।

बालकपन में ईश्वर का साधन नहीं हो सका, इस प्रकार साधना अनुचित है । हमलोग इतिहासों में देखते हैं कि ध्रुव, प्रह्लाद ने अत्यन्त शैशवावस्था में ही, ईश्वर की कृपा

प्राप्त की थी। जब एक मनुष्य कोई काम कर सकता है तो इस में सन्देह नहीं है कि मानव-जाति भी उस काम को कर सकती है। विशेषतः जिस काम के करने का अभ्यास शुरू ही से किया जाता है वह स्वभावसे ही जाना है।

परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए अक्सर हमें इस मनुष्य जो यत्न करते हैं उसके चार कारण देखे जाते हैं भय, आशा, कर्तव्य-बुद्धि और राग।

नरकभय, अर्थाभाव, पीड़ा और मृत्युभय से जो परमेश्वर का भजन करता है वह भय-द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर आराधन करता है। जो समाज में उन्नति लाभ के लिए और विषय-गुण के प्रार्थी होकर ईश्वर भजन करता है वह आशा द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर भजन करता है। किन्तु ईश्वर साधन में इतना पवित्र सुख है कि शुरू में भय और आशा से भी किया हुआ साधन अन्त में अनेक भय और आशा में टूटकर शुद्ध-भजन में अनुरक्त कर लेता है।

जो मूर्खकर्ता के प्रति कृतज्ञता के कारण उसकी उपासना करते हैं, वे कर्तव्य-बुद्धि द्वारा चालित होकर उस काम में प्रवृत्त होते हैं। परन्तु जो लोग भय, आशा और कर्तव्य-बुद्धि द्वारा चालित नहीं होकर स्वभाव से ही ईश्वर साधन में प्रेम करते हैं वे लोग राग द्वारा साधन में प्रवृत्त होते हैं।

किसी एक विषय को देखने के लिये ही जब चित्त उसके प्रति प्रवृत्ति द्वारा चित्त

विचार किये दौड़ता है, तो उसी को राग कहते हैं। यही प्रवृत्ति जब परमेश्वर की चित्ता करने साधन से ही किसी के चित्त में उत्पन्न होती है तब वह राग द्वारा ईश्वर-भजन करता है।

भय, आशा और कर्तव्य-बुद्धि द्वारा जो सामान्य मनुष्य से उत्पन्न होता है उनका प्रवृत्ति प्रवृत्ति नहीं है। राग मार्ग द्वारा जो ईश्वर साधन में प्रवृत्त होता है वह ही अर्थात् साधक है।

जो ईश्वर साधक एक क्षण सम्बन्ध है। राग के उत्पन्न होने से उनके सम्बन्ध में परिचय मिलता है। कभी सम्बन्ध विन्य है किन्तु तद्वत्त्व जीव के लिये यह गुप्तरूप में रहता है। मूर्खता या फिर ही यह प्रकाशित हो जाता है। नियामलाई चिन्तन से अथवा अकस्मिक स्फूर्ति से जैसे अग्नि का प्रकाश होता है उसी तरह से साधन करने से यह सम्बन्ध प्रकाशित हो जाता है।

भय, आशा और कर्तव्य-बुद्धि से भजन करने वालों को यह सम्बन्ध प्रकाशित हो गया है। प्रथम पहले राग्य प्राप्ति की आशा से ही हरिभजन किया था किन्तु साधन के द्वारा हृदय में पवित्र-सम्बन्ध जनित राग के उत्पन्न हो जाने से अपने सामाजिक सुख-जनक वरदान ग्रहण कर ही किया।

जब और आशा जितान्त देय है। साधक को जब अच्छी बुद्धि होती है उस समय वह भय और आशा का परिचय करता है। और कर्तव्य-बुद्धि ही उनका एकमात्र साधन

हो जाता है। परमेश्वर के प्रति राग का तबतक उदय नहीं होता है तबतक कर्त्तव्य-बुद्धि का परित्याग नहीं करना चाहिए। कर्त्तव्यबुद्धि से विधि का सम्मान और आविध का परित्याग इन्हीं दोनों विचारों का उदय होता है।

पहले पहले महापुरुषों ने परमेश्वर के निर्मित साधन करने के लिए जितने सब पद्धतियों को विचार कर संस्थापित किया है और शास्त्रों में लिपिबद्ध किया है उन्हीं सबों का नाम विधि है। कर्त्तव्यबुद्धि के शासन होने से ही शास्त्र का शासन और विधि का आदर हो जाता है।

देश-देशान्तर और द्वाप-द्वापान्तर निवासी मनुष्यों के इतिहास और वृत्तान्त की आलोचना करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि ईश्वर से विश्वास मनुष्य का साधारण धर्म है। असभ्य लोग वन के रहनेवाले पशुओं के ऐसे पशुमांस खा कर समय बिताते हैं तथापि सूर्य, चन्द्र, और बड़े-बड़े पर्वतों, बड़ी-बड़ी नदियों एवं बड़े-बड़े वृक्षों को दण्डवत् प्रणाम करते हैं और उनको दाता नियंता कह कर पूजा करते हैं, इसका कारण क्या है?

जीव नितान्त बद्ध होकर भी जहाँतक उसका चेतन आच्छादित नहीं होता है वहाँ तक चेतन धर्म के परिचय स्वरूप कुछ ईश्वर विश्वास अवश्य ही प्रकाशित करता है।

सभ्य अवस्था प्राप्त कर के जब वह नाना प्रकार के विद्याओं की आलोचना करता है उस समय कुतर्कों के द्वारा इस ईश्वर विश्वास को

दबाकर नास्तिकता, अभेदवाद के अन्तर्गत निर्वाणवाद को मन में स्थान देता है।

ये कुल्मिन् विश्वास केवल अप्राप्तबल चेतन के अस्वस्थता के लक्षण हैं, ऐसा ही समझना चाहिए। नितान्त असभ्य अवस्था और ईश्वर विश्वास की उपयोगी अवस्थाओं में मानव जीवन की तीन अवस्थाएँ आध्यान्तर में देखी जाती हैं।

इन तीन अवस्थाओं में ही नास्तिकवाद, जड़वाद, और सन्देहवाद और निर्वाणवाद रूप भीड़ण जीव की उन्नति के प्रतिबन्ध रूप में बहनों की दुराति की ओर ले जाता है।

ऐसी बात नहीं है कि सभी मनुष्य इन अवस्थाओं में उपरोक्त रोगों में रोगी हो जाते हैं बल्कि बात यह है कि जो लोग इन सब रोगों में आक्रान्त हैं वे उन्हीं अवस्थाओं में बंधे रहकर उस जीवन के अधिकार से वञ्चित रह जाते हैं।

असभ्य वन के रहनेवाले सभ्यता नीति और विद्या नैपुण्य बल से अति शीघ्र ही वर्णाश्रम रूप धर्मा का अवलम्बन करके ईश्वर भक्ति के साध्योपयोगी भक्त जीवनात्मक होते हैं। यही मानव जाति का नैसर्गिक उन्नति का क्रम है, प्रतिवन्धकस्वरूप रोग का आ जाने से जीवन की अनेकसंगिक अवस्था हो जाती है।

मनुष्यों ने भिन्न-भिन्न रूपों में रहकर भिन्न-प्रकृति का अवलम्बन किया है। परन्तु मनुष्यों की मुख्य प्रकृति सब तरह एक ही है। गौण प्रकृति अवश्य ही भिन्न है। मनुष्य की मुख्य-प्रकृति एक होने पर भी जगत में

एक प्रकार के ऐसे दो व्यक्ति नहीं पाये जाते जिनमें सभी गौण प्रकृति एक सी हो।

जब एक गर्भसे जन्म ग्रहण करके दो भाइयों की आकृति-प्रकृति एक प्रकार की नहीं होती है तो किस प्रकार भिन्न देश के जलवायु में पैदा हुए मनुष्य एक प्रकार के हो सकते हैं। भिन्न देश के जलवायु, पर्वत, वन आदि, खान-पान, वेश-भूषा, आहारादि सभी भिन्न प्रकार के हैं। इसी कारण से उन देशों के रहनेवाले मनुष्यों का आकृति, वर्ण, व्यवहार, पाहिरावा, भोजन, निःसंशय भिन्न होते हैं। देश विशेष का मनीभाव भी प्रत्यक्ष होता है। और उसके अन्तर्गत ईश्वर शायद मनुष्यों में एक प्रकार के होने पर भी गौणत्व में भिन्न प्रकार के होता है।

इस प्रकार देश विदेश में जिन समय प्रसन्न अवस्था लाकर मनुष्यत्व का क्रमशः सम्यक् अवस्था, वैज्ञानिक अवस्था, नीतिक अवस्था, और भक्तावस्था प्राप्त होती है उसी समय क्रमशः भाषाभेद, परिच्छेदभेद, भोज्य भेद, और मनोभावभेद से ईश्वर भजन की प्रणाली भी भिन्न हो जाती है।

निरपेक्ष होकर विचारने से मालूम होगा कि इस प्रकार के गौण भेद समूहों में कोई नुकसानी नहीं है। मुख्य भजन विषय में पकड़ रहने से फल के समय कोई दोष नहीं होता। अतएव श्री मनमहाप्रभु की विशेष आज्ञा है कि विशुद्ध मन्वन्स्वरूप भगवान् का भजन करो किन्तु सामान्य भजन-प्रणाली की निन्दा करनी नहीं चाहिए।

उपराक्त कारणों से भिन्न देशों के लोगों के चलाए हुए धर्मों के नीचे लिखे हुए पाँच भेद हैं—

[१] आचार्य भेद।

[२] उपासक की मनोवृत्ति और भजन अनुभव भेद।

[३] उपासना की प्रणाली भेद।

[४] उपास्य-तत्त्व के सम्बन्ध में भाव और क्रिया भेद।

[५] भाषा भेद के अनुसार में नाम और वाक्यादि भेद।

आचार्य भेद से किसी देश में आप लोग को, किसी किसी देश में महम्मद साहब के ऐसे प्रचारक लोगों का; किसी देश में क्राइस्ट से धर्मात्माओं का और देश-विदेशों में बहूतेरे विद्वानों का विशेष सम्मान होते देखा जाता है।

इन आचार्यों का यथायोग्य सम्मान करना उनके देशवासियों का कर्तव्य है परन्तु अपने देश के आचार्यों की शिक्षा को दूसरों से, निष्ठा के कारण, श्रेष्ठ समझने पर भी दूसरे देश में इस प्रकार के विवादजनक प्रतिष्ठा का प्रचार करना उचित नहीं है। ऐसा करने से जगत का कुछ भी मङ्गल नहीं होगा।

उपासकों की मनोवृत्ति और भजन अनुभव भेद द्वारा किसी देश में आमन पर बैठ कर न्यास प्राणायाम इत्यादि प्रक्रियाओं के द्वारा भजन किया जाता है। कहीं पर मुक्त कण्ठ होकर अपने मुख्य मन्दिर की ओर मुख करके खड़े होकर गिरकर दिन-रात में

पांचवार उपासना करते हैं। कहीं पर हाथ जोड़कर दीनता प्रकाश कर ईश्वर का यशो-गान करके भजन मन्दिर में वा अपने घर में ही पूजा करते हैं। इस प्रकार भिन्न-प्रकार के वस्त्र भोग व्यवहारों के द्वारा शुद्धता और अशुद्धता के साथ पूजा करने की स्थानीय विधि देखी जाती है। भिन्न-धर्मों की उपासना देखने में उपासना-प्रणाली के भेद देखे जाते हैं।

भिन्न-धर्मों में उपास्य नत्व के सम्बन्ध में भाव और क्रिया भेद देखे जाते हैं। कोई-चिन्त में भक्तिपरिणुत होकर आत्मा में मन और जगत में परमेश्वर की प्रति-रूपरूप श्री मूर्ति का संस्थापन करते हैं। और उस में तदात्म्य बोध द्वारा पूजा करते हैं। किसी-धर्म में अधिकतर तर्क द्वारा मनही मन एक ईश्वर भाव का गठन कर उसी के द्वारा उपासना करते हैं। प्रतिमूर्ति को स्वीकार नहीं करते। किन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो सभी प्रतिमूर्ति हैं।

भाषा भेद के अनुसार कोई-कोई किसी-विशेष नाम से ईश्वर को पुकारते हैं। धर्मों का भिन्न-धर्म नाम दिया हुआ है। भजन के समय में भिन्न-भाव बोले जाते हैं। इन भेदों के कारण जगत में भिन्न-भिन्न धर्म समूह आपस में एक-दूसरे से अलग-पृथक् हो गए हैं यह बात नैसर्गिक है, किन्तु इन पार्थक्य के कारण परस्पर विवाद करना नितान्त अन्याय और हानिकारक है। दुसरे के भजन के समय में उनके भजन मंदिर में उपस्थित रहने पर ऐसा व्यवहार करना चाहिए

और इस दृष्टिकोण से देखना चाहिए कि हमारे ही उपास्यदेव की एक भिन्न प्रकार से पूजा की जा रही है। हम अपने अभ्यासवश इस प्रस्तुत प्रणाली के द्वारा पूजा करने में असमर्थ हैं किन्तु इसके देखने में अपनी भजन प्रणाली में अधिकतर भावोदय हो रहा है

स्मरण रहे परमनत्व एकही है दो नहीं। यहाँ पर जो ईश्वर चिन्ह देख रहा है वह मेरे ही ईश्वर का है और इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए कि हे इस प्रकार के चिन्ह धारण करने वाले मेरे आराध्यदेव 'मेरा प्रेम आप बढ़ावे।

तो इस प्रकार व्यवहार नहीं करके भिन्न प्रणालियों के प्रति द्वेष, हिंसा अमृशा वा निन्दा करने है वे नितान्त अस्मर और तत्ववृद्धि है। वे अपने परम प्रयोजन की उतनी परवाह नहीं करते जितना दूसरे से विवाद करने की।

इस में केवल एक बात विचारणीय है। भजन प्रणालीभेद की निन्दा करना अस्मरता है किन्तु यदि उस में कोई प्रकृतदोष देखी जाय तो उसका आदर नहीं करना चाहिए बल्कि जहाँतक हो सके तब तक उसको दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए इस में जीव का संगल होगा। इसा कारण से भी महाप्रभु ने बौद्ध, जैन, और निर्विशेषवादियों के साथ विचार करके उस लोगों को सत्य पर लाने का उद्योग किया था। प्रभु का समस्त चरित्र प्रभु-भक्तों के लिए आदर्श स्वरूप होना ही उचित है।

(जिस धर्म में नास्तिकवाद, सन्देहवाद,



जिनको सर्वार्थ लाभ की कामना है वे जीव ही विद्वत्प्रतीति प्राप्त कर लेते हैं। अविद्वत्-प्रतीति लेकर विवाद करके अपने असली स्वार्थ की हानी क्यों की जाय ?

विद्वत्प्रतीति का थोड़ा सा दिग्दर्शन यहाँ पर कराये देता हूँ। जो लोग जड़ चिन्ता को कार्यक्रम कर के चित्तवृत्त के पाने के योग्य हैं उन्हीं के लिए विद्वत्प्रतीति सम्भव है। वे ही चित्त-चक्षुओं के द्वारा कृष्ण-रूप का दर्शन करते हैं। वे ही चित्त-कर्णों के द्वारा कृष्ण-लीला श्रवण करते हैं और चिद्रस द्वारा वेदा कृष्ण को सर्वमानस में आस्थापन करते हैं। सारी कृष्ण लीला ही अप्रकृत और जड़ानीत है। कृष्ण की आधिन्य शक्ति के द्वारा वे जड़-वस्तुओं के विषय हो सकते हैं। किन्तु स्वभावतः वस्तु प्रकृति सभी जड़ेंद्रियाँ उस का साक्षात् दर्शन नहीं कर सकते हैं।

श्री कृष्ण के प्रकट समय में जो साक्ष्य भगवत् लालाएँ इन्द्रियों के द्वारा गोंचर होता है व भा विद्वत्प्रतीति के बिना वस्तुसाक्षात्-कार रूप फल के देनेवाले नहीं होते। अतएव साधारणतः अविद्वत् प्रतीति ही प्राप्त होती है। इस प्रतीति के कारण सत्त्वों को कृष्णवत् आनन्द ही साक्ष्य होता है। ये लोग कृष्ण के शरीर का जन्म, वृद्धि, पक्ष की कल्पना करते हैं। अविद्वत् प्रतीति के द्वारा निश्चिन्त अवस्था सत्य और सन्निवेश अवस्था प्रार्थनात्मक बोध होते हैं। और कृष्ण वस्तु का विशेषण भी प्रार्थनात्मक सिद्धान्तित होता है।

परम-नन्द क्या वस्तु है इसका निर्णय

करना बुद्धि का काम नहीं है। अर्थात्मेय पदार्थ में समीप नग्युक्ति क्या कर सकते हैं। अतएव जीव की सकृत्प्रति के द्वारा ही परम-नन्द का आस्थापन किया जा सकता है।

जिनको विमल प्रेम कहते हैं उन्हीं की धार्मिक अवस्था का नाम भक्ति है। कृष्ण-कृपा के बिना विद्वत् प्रतीति उद्भूत नहीं होती। क्योंकि कृष्ण-कृपा से विश्वाशक्ति जीव को गताप्रता करती है।

परमनन्द के विभिन्न प्रकार के भाव भगवत् में व्यक्त होते हैं। उन सभी में कृष्ण-स्वरूप भाव ही विमल प्रेम के लिए एकमात्र अति उपयोगी भाव है। मुसलमान शास्त्र में तो अल्लाह भाव स्थापित हुआ है उससे विमल प्रेम निश्चित नहीं हो सकता है।

अति प्रिय वस्तु पैदावार भी उसके स्वरूप का साक्षात् नहीं हो सके, क्योंकि वास्तविक स्वरूप होने पर ही वस्तु के ज्ञान उपासक में अत्यन्त दृग्गतत्व रहता है। वस्तु की तो बात ही चलानी बेकार है। नाशयुग भी जीव के महज प्रेम में प्राप्य वस्तु नहीं है। कृष्ण ही एकमात्र विमल-प्रेम के साक्षात् विषय है। और स्वरूप चिन्मय ब्रजधाम में नित्य ही विराजमान रहते हैं।

कृष्ण, ज्ञा धाम आनन्दमय है। वहाँ पुरुषार्थ के पूरारूप में रहने पर भी उसका दुःख नहीं रहता, वहाँ सभी माधुर्यमय और नित्यानन्द-स्वरूप हैं। फल-मूल, किशलय ही वहाँ की सम्पत्ति: गो-धन समूह ही नहीं। राखालगण ही सखा, गोपीगण

ही मंगिनी, नवनीत, दधि, और दुग्ध ही स्वाद्य-द्रव्य और साग-कान्त और उपवन कृष्ण-प्रेमसमय है। यमुना नदी कृष्ण सेवा में लगी हुई है। समस्त प्रकृति कृष्ण ही पारचायिका है।

जो दूसरे जगद ब्रह्मरूप में सब की सेवा और सम्मान लेता है वही हम धाम का एकमात्र प्राणिक है। कर्मी आत्मक के लिये ऊँचे उनकी अपेक्षा ही हम में देखा जाता है। प्रेम नहीं होने में क्या मुक्तिवा प्रपन्नत्व के साथ प्रेम कर सकेंगे ? परमेश्वर परमशीलामय, स्थिता-मय, नीति स्वभाव के जगद-विमल-प्रेम-लिंग ही उद्धार है। वह क्या मनुष्यों की तरह पुत्रा की जलसा करता है ? क्या वह पुत्र (या मनुष्य) होकर अपने लक्ष प्राप्त करता ? अपने गणधर्मों की साधुता द्वारा गोपन करके परम समस्कार लीलारूप के आधार भास्य होकर वह कृष्ण अपाकृत बुन्दावन में रस के अधिकारी जीवगणों के साथ ममता और हीनता स्वीकार करके आनन्द-लाभ करता है।

जो विमल और पूर्णप्रेम को एकमात्र प्रयोजन मान कर स्वीकार करते हैं व क्या कृष्ण को छोड़कर और किसी दूसरे को उस प्रेम का विषय मानकर वर्णन कर सकते हैं ? यदि आपाभेद में कृष्ण, बुन्दावन, गोप-गोपी, गो-धन, यमुना, कदम्ब प्रभृति शब्द कहीं पर नहीं भी देखे जाते तो भी विशुद्धप्रेम के समर्थकों के लिए इन लक्षणों से ललित नाम धाम, उपकर्म और

लीला समूहों का प्रकारान्तर वा वाक्यान्तर में अवश्य ही स्वीकार करना होगा। अतएव कृष्ण को छोड़कर और कहीं विशुद्ध प्रेम नहीं है।

जबतक विशुद्धप्रेम का उदय नहीं होता तबतक रागक को कर्तव्यतुष्टि में गौण और मुख्य, विधि का अवलम्बन करके कृष्ण-गुणीकरण करना ही होगा।

सादृश्य में विचार करने पर देखा जायगा कि कृष्ण-प्रेम साधन के केवल दो ही आधार हैं—स्वार्थविधि और दूसरा राग।

राग विमल है। राग के उदय होने पर विधि का चल नहीं रहता। जबतक राग का उदय नहीं होता तबतक विधि का आश्रय करना ही मनुष्यों का प्रधान कर्तव्य है। अतएव शास्त्रों में इन दो मार्गों का अर्थान रागमार्ग और विधिमार्ग का उल्लेख है। रागमार्ग निरान्त स्थित्व के इंगितिए उसकी विशेष-व्यवस्था नहीं है। जो अन्यन्त भाग्य-वार और उच्चाधिकारी हैं वही केवल इस मार्ग में चलने में समर्थ है।

दुर्भाग्यवश जो उद्धार को नहीं मानते उन लोगों के लिए भी कुछ विधियों की व्यवस्था की गई है। इस विधियों की नीति कहते हैं नीति के द्वारा परमेश्वर के वा

विचार करने की व्यवस्था नहीं है। नीति किना ही सुन्दर क्यों न हो, परन्तु वह मानव-जीवन की सार्थकता सम्पादन करने में समर्थ नहीं

वह नीति निरान्त बहिर्मुख नीति है। उद्धार विश्वास और उद्धार के प्रति कर्तव्य-कर्म की व्यवस्था में युक्त होने पर ही नीति



मानव-जीवन की विधि कही जाकर आहत होती है।

विधि दो प्रकार की है—मुख्य और गौण। जब ईश्वर की तुष्टि-साधन ही जीवन का एकमात्र तात्पर्य है तब जो विधि उक्त तात्पर्य को ठीक रूप से लक्ष्य करता है उसे विधि का नाम मुख्य विधि है और जो कुछ व्यवधान के साथ लक्ष्य करता है उसे गौण विधि कहते हैं।

एक उदाहरण देने में यह विषय साफ हो जायगा। प्रातः स्नान एक विधि है प्रातः स्नान करने से शरीर स्निग्ध और रोगशून्य होकर मन को स्थिर करता है मन के स्थिर होने से ईश्वरोपासना होती है। यहाँ पर ईश्वरोपासना जो जीवन का तात्पर्य है वह व्यवधानशून्य नहीं हुआ क्योंकि स्नान का व्यवधान-फल शरीर स्निग्धता हुई। शरीर की स्निग्धतारूप फल यदि इस विधि का चरम-फल समझा जाय तो ईश्वरोपासनारूप फल लाभ नहीं हुआ। ईश्वरोपासनारूप फल और स्नानविधि के बीच में अन्यान्य फल रहने से ये अन्यान्य फल व्यवधानरूप हैं। जहाँ पर व्यवधान है वहाँ व्याघात की भी सम्भावना है। मुख्य विधि का साक्षात् फल ही भगवदुपासना है। विधि और उपासना के बीच आवान्तर फल नहीं है। हरिकीर्तन और हरिकथा श्रवण को मुख्यविधि कहते हैं। क्योंकि इस विधि का साक्षात् फल ही भगवदुपासना है। हरिभक्ति मुख्यविधि है इसको सर्वदा स्मरण रखने पर भी शरीर-यात्रा सिर्वाह के लिए कुछ गौणविधियों का

अवलम्बन करना जरूरी है क्योंकि शरीर-यात्रा निर्वाह नहीं होने पर जीवन नहीं रहेगा। और जीवन नहीं रहने से हरिभजन रूप मुख्यविधि किस प्रकार अवलम्बित होगा।

गौणविधि के सहज लक्षण यही है कि वे नर-जीवन के अलंकाररूप समस्त पार्थिव-धिया शिल्प और कारुक्कर्म, सभ्यता, परिपाक्य और अध्यवसाय एवं शारीरिक, मानसिक और सामाजिक नीति समूहों को छोड़ीभूत करके नर-जीवन को अक्षय्यरूप से भगवत्चरणामृत का सेवन कराने हुए अङ्गीकार करते हैं।

मनुष्य वन्तुतः मुख्यविधि के अनुचर होकर अपना आदिश्वरी की कृपा से उस चरणामृत के द्वारा नर-जीवन को साधनमय और फल-काल में परमानन्दमय कर देता है।

वन्य-जीवन, सभ्यजीवन, जड़विज्ञान सम्पन्न जीवन, निर्गेश्वर नैतिक-जीवन, सेश्वर नैतिक-जीवन वैधभक्त-जीवन, प्रेमभक्त-जीवन इस प्रकार नाना प्रकार के नर-जीवन देखे जाते हैं। इस पर भी सेश्वर नैतिक जीवन से ही प्राकृत-नरजीवन का आरम्भ स्वीकार किया जाता है। आत्मिक नहीं होने से नरजीवन पशु-जीवन से अच्छा नहीं हो सकता। प्रकृत-जीवन सेश्वर-जीवन की विधि और निषेध को लेकर काम करता है। सभ्यता, जड़विज्ञान-सम्पत्ति और नीति-सेश्वर नैतिकजीवन किस प्रकार भक्त-जीवन से परिणत होकर नरजीवन लाभ करता है।

जीव का धर्म ही जैवधर्म है। मानव अवस्था में जैवधर्म को मानवधर्म कहते हैं। वह धर्म दो प्रकार का है:—

• गौण और मुख्य वा साम्बन्धिक और स्वगत। गौण का साम्बन्धिक धर्म जड़ है क्योंकि यह जड़ का गुण और सम्बन्ध का आश्रय करके विद्यमान है। मुख्य वा स्वगत धर्म शुद्ध जीव का आश्रय करता है। मुख्यधर्म ही जैवधर्म है। गौणधर्म केवल जड़ गुण के वश होने के कारण मुख्यधर्म की गूणी भूत अवस्था मात्र है। जड़ गुण के दूर होने में जैवधर्म केवली भूत होकर मुख्य धर्म हो जाता है। गौणधर्म को उपाधियुक्त धर्म भी कहते हैं। और उपाधि दूर होने में यही मुख्य धर्म हो जाता है। गौण विधि और गौण निषेध अर्थात् पुण्य और पाप गौण धर्म के अन्तर्गत है। गौण धर्म जीव को परिन्यास नहीं करता केवल जीव की गुण-युक्त अवस्था में मुख्य धर्म के रूप में बदल जाता है।

जड़वृद्धावस्था में मुख्यधर्म के बदले हुए नकली रूप में गौण धर्म का जन्म होता है।

गौणधर्म का यथाभूत परिणामि से मुख्यधर्म पनः उद्भूत हो जाता है।

इस लेख में पहले 'ईश्वर' फिर भगवान् शब्द अन्त में 'कृष्ण' शब्द व्यवहृत हुआ है। पाठ्यवर्ग ऐसा नहीं समझे कि 'ईश्वर' 'भगवान्' और 'कृष्ण' प्रथक अन्वय है। कृष्ण ही परमात्र स्वरूपतन्त्र और जीव के प्रिमल उपामना के विषय है। कृष्ण ही भाग्यतन्त्र का पूर्ण माधुर्य्य प्रकाश है। जिस समय अन्यान्यतन्त्र वा पदार्थ के साथ साम्बन्धिक रूप में कृष्ण का विचार किया जाता है उस समय उसको ईश्वर भाव में देखा जाता है एवं ईश्वर नाम का व्यवहार किया जाता है। इस लिये इस लेख के प्रथम में पदार्थमय कृष्ण नाम से परिचरित होकर 'ईश्वर' नाम से व्यवहृत हुआ है। ईश्वर भाव केवल स्वरूपतन्त्र कृष्ण की बनावट हुई पदार्थों के ऊपर स्वभाविक ईशिता के परिचय के अलावे और कुछ नहीं है। पदार्थ संख्या के जगह पर 'ईश्वर' नाम ही सर्वत्र व्यवहार हुआ है:— जैसे चित् अचिन्त और ईश्वर।

## विविध प्रसंग

गया श्री गौड़ीय मठ

गत ३० दिसम्बर शनिवार को श्रीवृष्ण-पादं परमहंस श्रीश्रीलभक्ति सिद्धान्त परमवता गोस्वामी प्रभुपाद का विरहमहोत्सव परम-गन्धितम श्री श्री गौरीचरणों के कृपाशोभाद में श्रीगौड़ीय मठ गया में पाठ्य विनोद-वक्तृता

हार्दिकता, आलोचना के साथ मुचारुरूप में सम्पन्न हुआ और उसके बाद समागत बहु-सज्जन वृन्द को विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

# श्रीधाम मायापुर में

## त्रिपुरा की महामान्या राजमाता

स्वार्धान त्रिपुरा के महाराजा की राजमाता श्री युक्ता अरुन्धती देवी महोदया ने राजपरिवार के गृह चिकित्सक और कई एक सम्मानित देवियों के साथ गत १५ दिसम्बर १९३९, शुक्रवार को मोटर के द्वारा श्रीधाम मायापुर में शुभागमन किया। उनलागा न शोचनन्य मठ, श्रयागपाठ श्रीमान्दर आर चादकाजा की समाधि प्रभृति के दर्शन के बाद श्रीदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिमन्त्राल भागवत महाराज

अवदमन ब्रह्मचारीभक्तिशास्त्री भक्तिठाकुरविनोद इन्सर्जन्यूट के प्रधान शिक्षक श्रीयाद किशोर-मोहन भक्ति बान्धव बी० एल श्रीयाद नन्द-गापाल ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री इत्यादि प्रमुख वैष्णववृन्द के श्रीमुख में श्रीधाम महिमा के सम्बन्ध में हारकथा श्रवण किया। इस के बाद महाप्रसाद की सेवा कर करीब ३ बजे कलकत्ते की ओर यात्रा की।

॥ श्री हरि नाम प्रचार ॥

## युक्त प्रदेश

हर्ष का विषय है कि युक्त प्रदेश के मितापर जिलान्तर्गत मुकाम मिश्रख में ता. १८-१-४० को एक सभा आयोजन किया गया जिसमें जनता की उपस्थिति लगभग ४०० से अधिक थी। इस सभा में कलकत्ता श्रीगौड़ीय मठ के सेवक श्रीमन्मनागयण दामाधिकारी जी कई ब्रह्मचारियों के साथ पधार कर दो घंटे तक हरिकीर्तन की व्याख्या किया कि श्रोतागण आप के कीर्तन को सुनकर बहुत आनन्दित हो गये।

सभा के आरम्भ और अन्त में महाजन पदावली और महामंत्र का कीर्तन आपने अपूर्व और सुललित स्वर से किये। जिसे श्रवण कर उपस्थित भक्तवृन्द आनन्द विभोर होगये।

उसके दूसरे दिन भी जनता की आप्रत से आपने एक और वक्ता देने की स्वीकृति दी। तदनुकूल नवादा ग्राम के रहने वाले पंडित श्री लोकनाथ मिश्र जी का निमंत्रण तथा जनता के अनुरोध पर मिश्र जी के घर पर जाकर पाठ कीर्तनादि किये।

ता. २०-१-४० को उक्त पंडित जी की आगमन में भी एक सभा हुई। उसमें द्वायाचित्र द्वारा श्री भगवान की लीला दिखाई गई। तदुपरान्त ब्रह्मचारी जी का सुललित और मार गर्भित व्याख्यान हुआ, जिसे सुन जनता मुग्ध हो गई और इनके शब्दों में हरिकीर्तन पुनः श्रवण करने का अपेक्षा इच्छा प्रकट की।



तृणापि मुनीयेन तरोर्गपि सद्रिष्णुना ।  
अस्मानिना मानदेन कीर्तनीयः सदाह्वरि ॥

श्री चैतन्य दिक्षाष्टक

Printed by A. K. Narayan,  
at the LAKSHMI PRESS, GAYA  
and

Published by Sree Satya Govind Brahm Satya,  
GODIYA MATH, GAYA.





